ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क २८

ध्वनि और संगीत

प्रो० ललितकिशोर सिंह M. Sc.

प्रोफेसर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
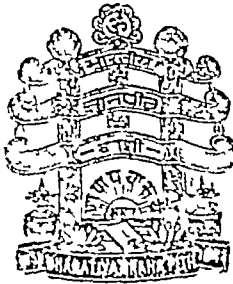
भारतीय ज्ञानपीठ काशी

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक
श्री० लक्ष्मीचन्द्र जैन, एम० ए०

प्रकाशक

अयोध्याप्रसाद गोयलीय

मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ

दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

प्रथम संस्करण

१९५५

मूल्य चार रुपया

मुद्रक

काशीप्रसाद भार्गव

सुलेमानी प्रेस,

मछोदरी पार्क, बनारस
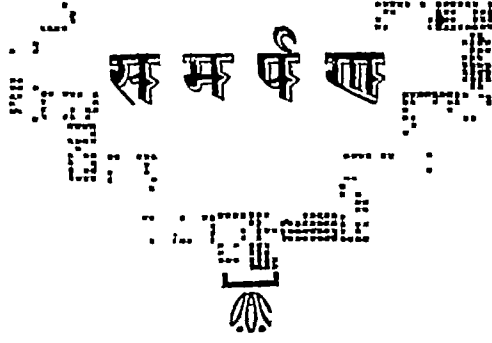
भारतीय संगीतके आदि आचार्य

भरतको

पुण्य स्मृतिमें

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक दो भागोंमे बाँटी जा सकती है। इनमेंसे पहले भागका विस्तार बारहवें अध्यायतक होगा, जिसमें ध्वनि-विज्ञानके तथ्योंका वर्णन और मौलिक सिद्धान्तोंका स्पष्टीकरण है। दूसरे भागका क्षेत्र तेरहवें अध्यायसे अततक होगा, जिसमें नये-पुराने, सभी भारतीय स्वर-ग्रामोंका वैज्ञानिक विश्लेषण है। पहले भागमें सवाद, संघात, ग्राम-रचना-विधि आदिका वर्णन अपेक्षाकृत विस्तारसे दिया गया है, इसलिए कि ध्वनि-विज्ञानकी सामान्य पाठ्य-पुस्तकोंमें इनका स्पर्शमात्र पाया जाता है।

ध्वनि-विज्ञानवाले भागकी रचना प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंकी कृतियोंके आधारपर हुई है। पर भारतीय संगीतवाले भागमें बहुतेरे ऐसे सिद्धान्तों और परिणामोंका निरूपण है, जिनका उत्तरदायित्व पूरे तौरसे लेखकपर ही है। जैसे—वेद, भरत और शाङ्‌र्गदेवके स्वर-ग्रामका निरूपण; श्रुति, मूर्छना, न्यास आदि पारिभाषिकोंका तात्पर्य्य-निर्णय; रामामात्यके ग्राम-संस्थान और 'स्वयभू स्वर' की व्याख्या; संवाद और यमकत्वके आधारपर भातखण्डेके दश ठाट-विधानकी निष्पत्ति; इत्यादि। ये परिणाम विवाद-ग्रस्त हो सकते हैं। विवाद वैज्ञानिक आधारपर हो तो इससे नये अनु-संधानको प्रश्रय ही मिलेगा। पर यदि बद्धमूल धारणा और जड़ीभूत संस्कारसे विवाद खड़ा हो जाय तो इससे कोई लाभ नहीं। नये परिणामोंकी निष्पत्तिमे यथाशक्ति तर्क और प्रमाणका उपयोग किया गया है। फिर भी परम वाक्यके अधिकारी होनेकी स्पर्धा विज्ञानके विद्यार्थीके लिए निषिद्ध है।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि इस कृतिका प्रधान विषय हिन्दुस्तानी या उत्तरीय पद्धति है। यह अन्तिम अध्यायमें स्पष्ट हो

जाता है। प्रसंगवश आधुनिक दाक्षिणात्य-पद्धतिपर भी विचार किया गया है और जहाँ-तहाँ पाश्चात्य-पद्धतिका भी स्पर्श है। पर इन पद्धतियोंके साथ व्यावहारिक सम्पर्क न होनेसे इनकी विवेचनामें प्रमाणिकताका दावा नहीं किया जा सकता। अंतिम अध्यायमें हिन्दुस्तानी-पद्धतिकी विशेषताओंको अधिक स्पष्ट करनेके लिए दाक्षिणात्य-पद्धतिके साथ तुलना आवश्यक जान पड़ी। इस प्रसंगमें दाक्षिणात्य पद्धतिकी कई त्रुटियोंकी ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। यह आक्षेप जैसा लग सकता है, पर इसमें अपमानकी भावना नहीं है। दोनों पद्धतियोंका विभेद यदि तथ्यत भ्रान्त सिद्ध हो जाय तो यह सतोष ही की बात होगी; क्योंकि परिणाममें दोनों पद्धतियोंकी एकता ही चरम लक्ष्य है।

ध्वनि-विज्ञानका स्वतन्त्र समावेश हेल्महोज़, ब्लसेर्ना, जीन्स आदि प्रमुख वैज्ञानिकोंके लिखे हुए संगीतविषयक ग्रन्थोंके ढाँचेपर हुआ है। नाद और संगीतमें समवाय सम्बन्ध है; इसलिए नाद-विज्ञानके द्वारा ही संगीतका भौतिक संस्थान समझा जा सकता है। इसके अतिरिक्त यहाँ इसकी विशेष आकाक्षा है। आये दिन अनुसंधानकी धुन सभी क्षेत्रोंमें दिखाई पड़ती है। आपातत संगीत-प्रेमी भी अनुसंधानके लिए उत्तेजित हो उठे हैं। यह नि सन्देह ही शुभ लक्षण है। पर अभी उनकी दृष्टि भारतीय-संगीतके अतिलौकिक, अतिप्राकृतिक और आध्यात्मिक पक्षपर ही केन्द्रित है। इसीलिए, वनस्पतियोंपर रागोंका प्रभाव या भिन्न-भिन्न रोगोंकी चिकित्सामें भिन्न-भिन्न रागोंकी उपयोगिता जैसे विलक्षण, पर उत्तेजक, विषयोंमें ही उनका मनोयोग है। अनुसंधानका क्षेत्र चुनना व्यक्तिगत रुचिपर निर्भर है, पर यह बता देना आवश्यक है कि भारतीय संगीतके भौतिक पक्षमें भी अनुसंधानका बहुत बड़ा क्षेत्र है; और ऐसे अनुसंधानके लिए ध्वनि-विज्ञानका ज्ञान अनिवार्य है। इसलिए जो संगीत-प्रेमी भौतिक अनुसंधान मे रुचि रखते हों, उनके लिए यह ध्वनि-विज्ञानका अंश बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा। अनुसंधानका यह मार्ग न

तो नूतन है और न विलक्षण। शार्ङ्गदेव, मतंग आदिने संगीतका उद्देश्य जनसाधारणको यथारुचि आनन्द देना ही बताया है। शार्ङ्गदेवने संगीतके लिए 'अनाहतनाद' का निराकरण किया है। वस्तुत संगीतमें रहस्यवाद कवियोंकी देन है, संगीत-शास्त्रियोंकी नहीं।

परिशिष्टमें संगीतके संस्कृत ग्रन्थोंका उद्धरण विस्तारसे दिया गया है। वह इसलिए कि ये ग्रन्थ सभी जगह नहीं पाये जाते। इसी उद्देश्यसे मिश्री, फारसी आदि स्वरग्राम भी दे दिये गये हैं। तीक्ष्ण दृष्टिवाले संगीत-प्रेमी इनमें कुछ-न-कुछ कामकी बातें निकाल ही सकते हैं।

पाठ्यपुस्तक न होनेसे इस पुस्तकके प्रकाशनमें बहुत विलम्ब हुआ। इसी अपराधके कारण इसकी पाण्डुलिपि एक प्रमुख संस्थाके कार्यालयमें सालों पड़ी रही। धन्यवाद है भारतीय ज्ञान-पीठके अधिकारियोंको, जिन्होंने इसके प्रकाशनका गुरु भार मुक्त हृदयसे ग्रहण किया। ज्ञान-पीठके कार्यकर्ता भी प्रशंसाके पात्र हैं; जिनकी तत्परतासे ही यह पुस्तक शीघ्र प्रकाशित हो सकी।

अंतमें उन मित्रोंको धन्यवाद है जिनकी शुभकामना पुस्तकके निर्माण-कालमें निरन्तर लेखकके साथ रही है। लेखकपर सबसे अधिक आभार आचार्य रं० कृ० आठवलेका है, जिनका प्रोत्साहन, सहयोग और सत्परामर्श लेखकको सदा मिलता रहा है।

हि० वि० वि०
काशी

—ललितकिशोरसिंह

१. प्रवेश

१—यद्यपि ध्वनिका बोध कानोंसे ही होता है, पर इतनेसे ही ध्वनिकी धारणा पूरी नहीं होती। जब हम ध्वनि सुनते हैं तो यह ख़याल होता है कि यह किसी-न-किसी द्रव्यमें पैदा हुई है और एक विशेष दिशासे, कुछ दूरी तै कर, हमारे पास आ रही है। अर्थात् ध्वनि-बोधके लिए उत्पादक, माध्यम और ग्राहक, इन तीनोंका अस्तित्व अनिवार्य है। कभी-कभी कानोंमें आप-से-आप गूँज उठा करती है। इसका कारण कान और मस्तिष्कका विकार है। ऐसी गूँजकी उत्पत्तिमें न तो किसी उत्पादक द्रव्य और न किसी माध्यमकी सहकारिता है, इसलिए इसे 'ध्वनि' नहीं कह सकते। संगीतके प्राचीन शास्त्रकारोंने इसीलिए योगके 'अनाहत नाद' को संगीतका आधार नहीं माना है। वे द्रव्यके आघातसे उत्पन्न 'आहतनाद' से ही संगीतका उद्भव मानते हैं।

तात्पर्य यह कि संगीत और विज्ञानकी परिभाषामें वह भौतिक ध्वनि ही आती है जो किसी भौतिक द्रव्यमें उत्पन्न होती है, किसी भौतिक माध्यममें चलकर कानोंतक पहुँचती है और उनके ज्ञान-तंतुओंको छेड़ती है, जिससे मस्तिष्क उसका अनुभव करता है।[१]

---

१. यों तो अब द्रव्यके कम्पनसे, द्रव्यके माध्यममें उत्पन्न सभी आंदोलनों या तरंगोंको ध्वनि कहते हैं, चाहे वह कानोंको सुनाई दे या न दे। आजकल भौतिक विज्ञानमें एक नये विभागकी वृद्धि हो रही है जिसका सम्बन्ध उन 'अतिध्वनिक' तरंगोंसे है जिनको ग्रहण करना कानोंकी क्षमताके बाहर है। पर संगीतमें उसी ध्वनिका समावेश है जिसे कान ग्रहण कर सके।

२—ध्वनि द्रव्यमे कैसे उत्पन्न होती है, इसपर विचार करना आवश्यक है। किसी काँसेके कटोरेको ठोकर लगनेसे या किसी तने हुए पीतलके तारको छेड़नेसे आवाज़ सुनाई पड़ती है। वैसे ही टेबलपर हाथ मारनेसे भी शब्द सुनाई देता है। कटोरे, तार या टेबलके पटरेको ध्यानसे देखनेपर वे हिलते हुए मालूम होंगे। तबलेके पर्देपर बालूके कण फैला दिये जायँ, तो तबलेको अँगुलियोंसे ठुकराते ही बालूके कण नाच उठेंगे। इसलिए यह अनुभव सिद्ध है कि उत्पादक द्रव्यके कम्पनसे ध्वनिकी उत्पत्ति होती है।

पर हाथको धीरे-धीरे वायुमे हिलानेसे ध्वनि सुनाई नहीं देती। वैसे ही एक मोटी लाठी या एक चाबुकको हाथमें लेकर उसे अपने चारो ओर धीरे-धीरे घुमावें तो पहले कोई ध्वनि सुनाई न देगी। पर यदि उसके घूमनेकी गतिको धीरे-धीरे बढावे तो एक अवस्थामे धीमी आवाज सुनाई देगी; और जैसे-जैसे गति बढ़ती जायगी वैसे-वैसे आवाज़ तेज़ होती जायगी। मतलब यह कि हर तरहके कम्पनसे ध्वनि पैदा नहीं होती। कम्पनकी एक सीमा है जिससे धीमा होनेसे द्रव्यमे कम्पन होनेपर भी वह ध्वनि उत्पन्न नहीं करता।

३—कम्पन काफी तेज़ होनेसे ध्वनि पैदा होती है। पर वह कानोंतक कैसे पहुँचती है? साधारणत कान और उत्पादकके बीच वायु रहती है और इसी वायुमें ध्वनिका सचार होता है। पर इससे यह न मान लेना चाहिए कि वायु ही ध्वनि-गमनका एकमात्र आश्रय या माध्यम है। कोई पानीके भीतर ईंट बजावे तो पानीके भीतर ही दूसरा व्यक्ति ईंट बजनेकी आवाज काफी दूरीतक सुन सकता है। एक लम्बी सूखी लकड़ीके लम्बे कुन्देके एक सिरेपर कोई कान रखे तो दूसरे सिरेपर धीरे-धीरे चाकूसे कुरेदनेकी खर-खराहट साफ़ सुनाई देगी। रेलवे लाइनपर कान रखनेसे बहुत दूरपर लगती हुई धीमी ठोकर या गाड़ीकी आवाज़ स्पष्ट सुनाई देगी। इन सब अनुभवोंसे यह मानना पड़ेगा कि ध्वनि-गमनका माध्यम वायुकी तरह गैस, जलकी तरह द्रव या लोहे-लकड़ीकी तरह ठोस—इनमेंसे कोई भी द्रव्य हो सकता है।

४—अब प्रश्न यह उठता है कि किसी द्रव्यके अभावमें अर्थात् शून्यमें ध्वनिका संचार संभव है या नहीं। इस प्रश्नका निर्णय एक साधारण प्रयोगसे हो सकता है। एक बड़ी काँचकी बोतलके साथ वायु निकालनेवाला पंप लगा दिया जाय। उस बोतलमें एक बिजलीकी घंटी लटका दी जाय जिसके तार और बटन बाहर हों। बोतल इस तरह बंद कर दी जाय कि हवा आ-जा न सके। अब बटन दबानेसे बिजलीकी घटी बजने लगेगी और ध्वनि बाहर सुनाई देगी। पर पंपके द्वारा हवा जैसे-जैसे बाहर निकलेगी वैसे-ही-वैसे ध्वनि धीमी पड़ती जायगी। यहाँतक कि एक अवस्थामे आँखोंसे घंटी बजती हुई दिखाई देगी पर कोई ध्वनि सुनाई न पड़ेगी। इस साधारण प्रयोगसे, जिसका प्रबन्ध किसी भी प्रयोगशालामें आसानीसे हो सकता है, यह सिद्ध होता है कि ध्वनि-सचार द्रव्यके अभावमें, या शून्यमे, नहीं हो सकता। उसके लिए किसी द्रव्यका माध्यम, चाहे वह गैस, द्रव या ठोस अवस्थामें हो, आवश्यक है।

इस प्रकार उत्पादक द्रव्यमे उत्पन्न कम्पन गैस, द्रव या ठोस माध्यमके द्वारा कानोंतक पहुॅचता है। इस आगत कम्पनके वेगसे कानके पर्दे भी कम्पित हो उठते हैं और फिर इस पर्देके कम्पनसे, हड्डियों, पर्दे और द्रवके जटिल पर सूक्ष्म यंत्रके द्वारा, श्रुति-तन्तुओंमे स्पन्दन पैदा होते हैं। इन्हीं स्पन्दनोंसे मस्तिष्कको ध्वनिका बोध होता है।

२. कम्पन और आवृत्ति

५—यह साधारण अनुभवकी बात है कि कुछ ध्वनियाँ कानोंको ख़ास तौरसे प्रिय मालूम होती हैं; जैसे, बाँसुरीकी आवाज़ या तारोंकी झनकार। ऐसी ध्वनियोंको सगीत-ध्वनि या 'नाद' कहते हैं। इनके अतिरिक्त सारी ध्वनियोंको 'शोर' कहते हैं। इसे पारिभाषिक अर्थमें 'राव' कहेंगे। 'राव' का प्रयोग यहाँ बहुत ही व्यापक अर्थमें हुआ है। वैज्ञानिक परिभाषामें टेबलपर हाथ मारनेसे या साधारण बोलचालसे जो ध्वनियाँ निकलती हैं वे सब राव कही जाती हैं। रावसे अभिप्राय संगीतेतर-ध्वनिसे है।

यह बताया जा चुका है कि ध्वनिकी उत्पत्ति द्रव्यके कम्पनसे होती है। राव और नादका भेद इस कम्पनकी प्रक्रियामें ही प्रत्यक्ष हो जाता है। रावके उत्पादकका कम्पन क्षणिक और अनियमित होता है और वह माध्यमको क्षणिक अभिघातसे आदोलित कर देता है। इसीसे कान भी एक आकस्मिक अभिघात या धक्के का ही अनुभव करता है। इसके विपरीत, नादके उत्पादकका कम्पन नियमित और लगातार होता है। इससे माध्यम और कानके पर्देमें भी नियमित स्पदन पैदा होता है। मनुष्यके गलेसे, या सामान्यत सभी जीवोंके गले से, दोनों प्रकारकी ध्वनियाँ निकलती हैं।

यह सम्भव है कि अनुभवकी दृष्टिसे कहीं नाद राव-सा जान पड़े और राव नाद-सा। किसी ऐसे कमरेमें, जहाँ दीवारोंसे ध्वनिका परावर्तन अधिक होता हो, मधुर सगीत भी राव-सा ही जान पड़ेगा; और किसी झरनेकी आवाज, जो कठिन पत्थरपर जलके अभिघातसे पैदा होती है, मधुर सगीत-सी मालूम होगी। पर इससे ऊपर दिया हुआ नाद और रावका पारिभाषिक भेद उपयुक्त ही सिद्ध होता है।

आजकल नगरोंका राव एक सामाजिक समस्या हो गया है, इससे वैज्ञानिकोंका ध्यान रावके अध्ययनकी ओर आकर्षित हुआ है। पर सगीतका सम्बन्ध नादसे है, रावसे नहीं।

६—नाद द्रव्यके नियमित कम्पनसे पैदा होता है। किसी सितारे या तमूरेके तारको छेड़कर उसे ध्यानसे देखनेपर इस कम्पनके रूपकी कुछ धारणा
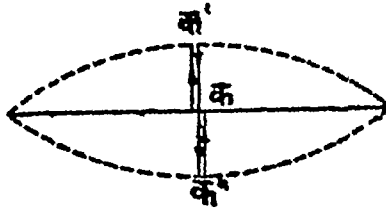
आकृति १

हो सकती है। तारको छेड़नेपर वह अपनी स्थिति क (आ० १) से वक्र होकर ऊपर को क' पर आता है। यहाँ इसकी गति शून्य हो जाती है और यह क की ओर लौटता है। पर क पर अब यह अपने वेगके कारण ठहर नहीं पाता इससे दूसरी ओर क'' तक जाता है। क'' पर इसकी गति शून्य हो जाती है और यह पहले ही की तरह क की ओर लौटता है। इस बार भी यह क पर ठहर नहीं सकता। इससे फिर पहले कम्पनकी आवृत्ति होतीहै। कम्पनकी इस लगातार और नियमित आवृत्तिसे ही नाद पैदा होता है।

पर नादोत्पादक द्रव्यकी गति इतनी तीव्र होती है कि उसे आँखोंसे परखना कठिन है। इसीसे दोलकके द्वारा, जो इस नियमित कम्पनका स्थूल रूप प्रत्यक्ष कर देता है, इसकी विवेचना की जा सकती है। एक हलके और दृढ़ धागेमे किसी धातुकी भारी गोली लटकाकर दोलक बनाया जा सकता है जैसा राजमिस्तिरीका साहुल होता है। इसे स्थितिके स्थान क (आकृति २) से हिलाकर छोड़ दें तो यह बहुत देरतक डोलता रहेगा। गोली क से क' पर जायगी और वहाँ क्षणिक स्थितिके बाद इसकी दिशा बदलेगी।
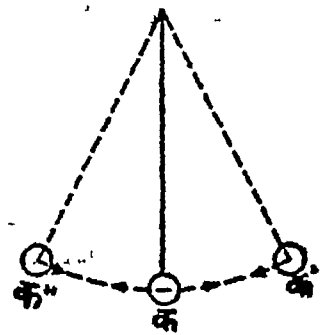
आकृति २

यह फिर लौटकर क पर आवेगी। पर यहाँ अपने वेगके कारण ही यह रुक

न सकेगी और क″ तक पहुँचेगी। वहाँसे फिर पहलेकी ही तरह लौटकर क पर पहुँचेगी। इसी कम्पनकी आवृत्ति बहुत देरतक होती रहेगी।

इस दोलकके कम्पनमें और तारके कम्पनमें कोई अंतर नहीं है। नादके सभी उत्पादकोंमे इसी प्रकारका कम्पन पाया जाता है।

७—(आ० १, २) क से क′, क′ से क, क से क″ और फिर क″ से क तककी गतिको एक 'कम्पन' कहते हैं। यह एक ऐसा टुकड़ा है जिसकी आवृत्ति होती रहती है। क—क′—क″—क का चक्र पूरा करनेमें जितना समय लगता है उसे 'कम्पन-काल' या संक्षिप्त रूपमें 'काल' कहते हैं। क—क′ या क—क″ की दूरीको 'कम्प-विस्तार' कहते हैं। एक सेकेण्डमें किसी दोलक या तारका जितना कम्पन होता है उसे उस दोलक या तारकी 'आवृत्ति' कहते हैं। संगीतकी दृष्टिसे यह 'आवृत्ति' सबसे अधिक महत्त्वकी परिभाषा है।

८—ऊपरकी परिभाषासे काल और आवृत्तिका सम्बन्ध बड़ी सरलतासे निकाला जा सकता है। यदि काल क है और आवृत्ति आ है, तो

$$आ = \frac{१}{क} \quad \cdots (१)$$

अर्थात्, यदि काल $\frac{१}{१०}$ सेकेण्ड हो तो आवृत्ति १० कम्पन प्रति सेकेण्ड होगी।

९—आकृति १ के अनुसार तारका कम्पन आड़ी दिशामें होता है। पर यदि अँगुलियोंमें रालकी बुकनी लगाकर उनसे तारको रगड़े तो एक बहुत ही महीन आवाज सुनाई पड़ेगी। इस अवस्थामें कम्पन तारकी लंबाईकी दिशामें ही होता है (आ० ३)।
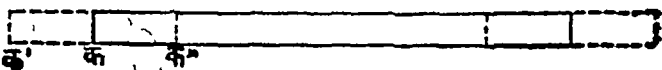
आकृति ३

पहले प्रकारके कम्पनको 'अनुप्रस्थ' कहते हैं और दूसरे प्रकारके कम्पनको 'अनुदैर्घ्य'। किसी कपड़े या चमड़ेके टुकड़ेपर रालकी महीन बुकनी छिड़क-

कर उससे किसी धातुके छड़को तेजीसे रगड़े तो अनुदैर्घ्य कम्पनकी ध्वनि काफी तेज़ सुनाई पड़ेगी। कभी-कभी इसराज या वेला बजानेमें जब कमानी आड़ी न चलकर तिरछी हो जाती है और तारकी लम्बाईकी दिशामें रगड़ा देती है तो इसी तरहके शब्द निकलते हैं।

१०—धातुके डंडे या छड़में, तारकी तरह, अनुप्रस्थ कम्पन भी होता है। एक डडेके दोनों सिरोंके नीचे दो तिकोनी गिट्टियाँ रख दे और बीचमें काठकी हथौड़ीसे ठोकर मारे तो डंडेसे अनुप्रस्थ कम्पनकी ध्वनि निकलेगी। इस कम्पनकी आवृत्ति, मामूली तौरसे, डंडेके अनुदैर्घ्य कम्पनकीसे बहुत ही कम होती है। (आ० ४)

आकृति ४

(क)

आकृति ५
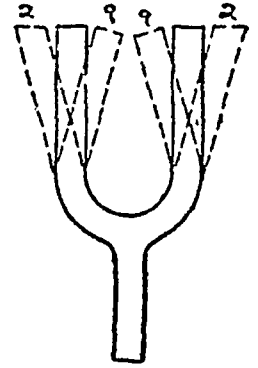
(ख)

अनुप्रस्थ कम्पनके लिए एक चौकोर लोहेके डंडेको आ० ५ (ख) की तरह मोड़कर एक यन्त्र बनाया जाता है जिसे द्विभुज कहते हैं। इसके नीचे बीचोबीच लोहेकी डंठी लगी रहती है, जिसे अँगुलियोंसे पकड़कर द्विभुजको ठुकरानेसे इसकी दोनों भुजाओंमें कम्पन होने लगता है। इसी अवस्थामें द्विभुजको टेबलपर डंटीके सहारे खड़ा कर दे तो इसके कम्पनसे उत्पन्न ध्वनि साफ सुनाई पड़ेगी। नादके अध्ययनके लिए यह द्विभुज बड़ा ही उपयोगी यन्त्र है। यह आगे बताया जायगा कि इसमेंसे शुद्ध स्वर निकलता है और इसीलिए इसका स्वर तुलनाके लिए प्रमाण माना जाता है (आ० ३४)।

इसके कम्पनका ढंग आ० ५ (ख) में दिखाया गया है। किसी एक भुजाको ठुकरानेसे, पहले दोनों ही भुजाएँ एक-दूसरीकी तरफ झुकती हैं, फिर एक-दूसरीसे दूर हटकर फैल जाती हैं। यह क्रिया बार-बार होती रहती है।

११—हम देखते हैं कि तार या दोलकको छेड़ देनेपर, वह थोड़ी देर तक हिलता रहता है; फिर धीरे-धीरे हिलना बंद हो जाता है। यदि दोलककी एक आवृत्तिके समयको घड़ीसे नापें तो पता चलेगा कि यह समय सदा बराबर ही रहता है। उसका विस्तार ज़रूर घटता जाता है जो अंतमें शून्य हो जाता है पर कालमें कोई अंतर नहीं पड़ता। थोड़ी देर हिलनेके बाद दोलककी गोलीकी चाल सुस्त मालूम होती है, इससे बहुधा यह धारणा होती है कि दोलकका आवृत्ति-काल बढ़ गया। अर्थात् आवृत्ति घट गई। पर चालकी सुस्तीके साथ-साथ विस्तार भी घट जाता है; इसलिए आवृत्ति-काल सदा बराबर रहता है। मामूली तौरसे यह कहा ज़ा सकता है कि किसी भी कम्पमान वस्तुकी आवृत्ति विस्तार पर निर्भर नहीं है। विस्तार बहुत अधिक बढ़ जानेपर आवृत्तिके ऊपर कुछ असर अवश्य पड़ता है। पर साधारण अवस्थामें विस्तार और आवृत्ति एक-दूसरेसे स्वतन्त्र हैं। जैसे, तार चाहे अ से अ′ (आकृति १) तक ही हिले या इससे अधिक या कम, पर तारकी आवृत्ति ज्यों-की-त्यों रहेगी।

किसी वस्तुकी आवृत्ति उसकी लम्बाई, मोटाई, घनत्व, स्थिति-स्थापकत्व,[1] आकार आदि अनेक भौतिक गुणोंपर निर्भर है। जबतक इन गुणोंमें कोई अंतर नहीं होता तबतक वस्तुकी एक सेकेण्डकी कम्पन-संख्या या आवृत्तिमें भी कोई अंतर नहीं पड़ता। एक पीतलके तारकी लंबाई-मोटाई और खिंचाव बराबर एक-सा रहे तो जब कभी भी छेड़नेपर उसकी प्रति-सेकेण्ड कम्पन-संख्या एक ही निकलेगी।

---

१. जो वस्तु दबानेसे जितना कम दबती है या मड़ोरनेसे जितना कम मुड़ती है, वह उतनी ही अधिक स्थिति-स्थापक मानी जाती है।

१२—आगे कुछ मुख्य-मुख्य वस्तुओंकी आवृत्तिका उनके भिन्न-भिन्न भौतिक गुणोंके साथ सम्बन्ध दिखाया जाता है —

(१) तारः—

तारकी आवृत्तिके सम्बन्धमें मर्सनेने नीचे दिये हुए नियम निकाले हैं–

(क) आवृत्ति तारकी लबाईकी व्युतक्रम (उलटा) अनुपाती होती है। अर्थात्, तारको दूना लंबा कर देनेसे आवृत्ति आधी हो जाती है ।

(पायथागोरसने इस सम्बन्धका आविष्कार किया था) ।

(ख) यदि लंबाई बराबर रखे और खिंचावका बल बढ़ावे तो कम्पनकी आवृत्ति इस बलके वर्गमूलके अनुपातसे बढ़ती है ।

काठके पर्देपर बैठाई हुई दो तिकोनी घोड़ियोंपर तार फैला दे और उसके एक छोरसे १ सेरका बाट लटका दे तो तार तन जायगा (आ० ६)। इस तारको छेड़नेपर एक निश्चित आवृत्तिकी ध्वनि निकलेगी । अब यदि एक सेरके बदले चार सेरका बाट लटकावे तो तारकी आवृत्ति दूनी हो जायगी।
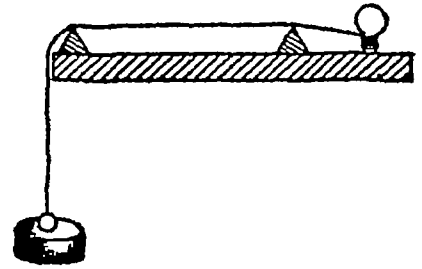
आकृति ६

(ग) लबाई और खिंचाव समान रहे तो आवृत्ति तारके भारके वर्गमूलकी व्युतक्रम अनुपाती होती है । अर्थात् कुल तारका भार चौगुना हो जाय तो आवृत्ति आधी हो जायगी ।

यहाँपर यह ध्यानमें रहना चाहिए कि तारका भार दो तरह से बढ सकता है–एक तो, तारकी मोटाई बढ़नेसे; दूसरे तारकी धातुका घनत्व अधिक होनेसे । जैसे, बराबर लबाई, मोटाई और खिंचावके लोहे और पीतलके तारमें लोहेवालेकी आवृत्ति ज्यादा होगी, क्योंकि लोहा पीतलसे हलका होता है ।

(२) डडा:—

(क) अनुप्रस्थ कम्पन—डडेके अनुप्रस्थ कम्पनकी आवृत्ति स्थिति-स्थापकत्वके वर्गमूलकी अनुपाती, उसके घनत्वकी व्युतक्रम अनुपाती और लम्बाईके वर्गकी व्युतक्रम अनुपाती होती है।

यदि एक ही डडेका विचार करें तो उसकी आवृत्ति लबाईके वर्गकी व्युतक्रम अनुपाती होगी। अर्थात्, अगर किसी डडेकी लम्बाई आधी कर दी जाय तो उसकी आवृत्ति चौगुनी हो जायगी और लम्बाई तिहाई कर देनेपर आवृत्ति नौगुनी बढ जायगी। डडा जितना छोटा होगा आवृत्ति उतनी ही अधिक होगी। मोटाई बढनेसे डडेकी आवृत्ति बढती है।

(ख) अनुदैर्घ्य कम्पन—डंडेका अनुदैर्घ्य कम्पन लम्बाईका व्युतक्रम अनुपाती होता है। अर्थात् लम्बाई आधी करनेसे आवृत्ति दूनी और लबाई तिहाई करनेसे आवृत्ति तिगुनी हो जाती है। इसपर मोटाईका कोई असर नहीं होता। (अनुप्रस्थ कम्पनसे तुलना करो।)

(३) द्विभुज:—

द्विभुजकी आवृत्ति लम्बाईके वर्गकी व्युत्क्रम अनुपाती और कम्पनकी दिशामें चौड़ाईकी अनुपाती होती है। कम्पनकी आड़ी दिशाकी चौड़ाईका आवृत्तिपर कोई असर नहीं पड़ता। अर्थात्, द्विभुज जितना नाटा और मोटा होगा, इसकी आवृत्ति उतनी ही अधिक होगी। आ० ७ में कम्पनकी दिशामें चौड़ाई 'च' और लम्बाई 'ल' दिखाई गई है।
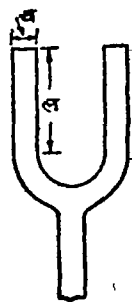
आकृति ७

(४) पर्दा (जैसे, चमड़ेका):—

(क) चौखूटा पर्दा—पर्देकी लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई या घनत्व बढ़ता है तो आवृत्ति घटती है और जब तनावका ज़ोर बढता है तो आवृत्ति भी बढ़ती है।

(ख) गोल पर्दा—व्यास घनत्व या मोटाई बढ़नेसे आवृत्ति घटती है और तनाव बढ़नेसे आवृत्ति बढ़ती है।

(५) चदरा (जैसे, पीतलका):—

चौखूटे चदरेमें लंबाई-चौड़ाई बढ़नेसे और गोल चदरेमें व्यास बढ़नेसे आवृत्ति घटती है और मोटाई बढ़नेसे आवृत्ति बढ़ती है।

आकृति ८

(६) घंटी:—

गोल चदरेकी तरह ही घंटीकी दीवारकी मोटाई बढ़नेसे आवृत्ति बढ़ती है और मुँहकी गोलाईका व्यास बढ़नेसे आवृत्ति घटती है।
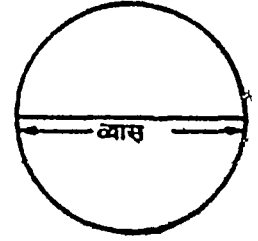
(७) वायुः—जैसे बाँसुरीकी नलीके भीतरकी वायु—

अवच्छिन्न वायु या गैसकी लंबाई बढ़नेसे आवृत्ति घटती है और उसमें ध्वनिका वेग बढनेसे आवृत्ति बढ़ती है।

---

३. तरंग और वेग

१३—जब किसी वस्तुमें कम्पन होता है तो उसमे चारो ओरकी वायुमें एक प्रकारका आन्दोलन पैदा हो जाता है। यह आन्दोलन वायुमे मण्डलाकार होकर फैलता और हमारे कानोंके छिद्र होकर भीतरके पर्देको कम्पित कर देता है। इस आन्दोलनका प्रसार तरंगके रूपमें होता है ठीक उसी तरह जैसे जलके ऊपरी तलको कहीं बीचमें हिला देनेपर चारों ओर छोटी-छोटी लहरें फैल जाती हैं।

ढेहू, तरंग या लहरके रूपसे तो सभी कोई परिचित हैं। पर वह कम्पनसे कैसे पैदा होता है, यह जाननेकी बात है। जलकी तरंग-राशिको हम प्राय देखा करते हैं। कहीं हम बड़े-बड़े समुद्री ढेहुओंको देखकर डरते हैं और कहीं शान्त नदीके किनारे छोटी-छोटी लहरोंकी श्रेणी देखकर प्रसन्न होते हैं। ये लहरें कभी हमारी ओर दौड़ती हुई नजर आती हैं, कभी दूर भागती हुई मालूम पड़ती हैं। पर ध्यानसे देखने पर पता चलेगा कि आन्दोलनके केन्द्रसे जलका कोई खण्ड टूटकर हमारी ओर नहीं आता। जलका छोटे-से-छोटा खण्ड भी अपना स्थान नहीं छोड़ता। वह अपने स्थान पर ही ऊपर-नीचे हिलकर अपने आगेके खण्डको आन्दोलित कर देता है। इस प्रकार आन्दोलन आगे बढ़ता और फैलता जाता है। जलके ऊपर हलके काठका कोई टुकड़ा उतराता हो, तो यह प्रत्यक्ष हो जायगा कि जब उस टुकड़ेको तरंग पार करता है तो वह तरगके साथ सिर्फ ऊपर-नीचे हिलता है। हरे धानके खेतकी मेंडपर खड़े होकर देखो—हवाके मामूली झोंकेसे खेतमे एक लहर-सी चलती हुई दीख पड़ेगी। लहरके साथ कोई पौधा नहीं चलता। हरएक पौधेका सिरा, एकके बाद एक, झुकता जाता है। सिराके इस प्रकार नियमित अतरपर झुकनेसे ही लहर बनती है जो चलती हुई मालूम पड़ती है। इस तरह अनेक दृष्टान्त दिये जा सकते हैं जिनसे तरंगका फैलना स्पष्ट होता है।

मतलब यह कि जब किसी माध्यमका प्रत्येक खण्ड या कण, एकके बाद दूसरा, कम्पित होता है तो यही कम्पन या आन्दोलन तरंगका रूप लेकर आगे फैलता है।

१४—आ० ९ में तरंग-निर्माणकी प्रक्रिया बताई गई है। इस समस्याको स्थूल रूप देनेके लिए पहली पंक्तिमें जलके ऊपरी तलके १७ कण दिखाये गये हैं। कणोंपर क्रमानुसार ०,४,८,१२ और
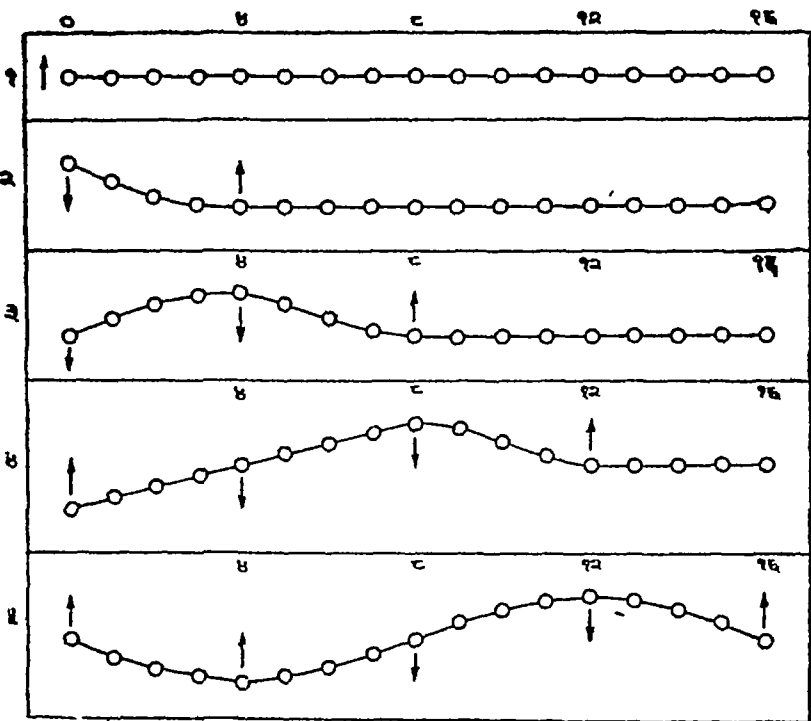
आकृति ९

१६ के अंक लगा दिये गये हैं। शून्य अंकवाला कण दोलककी गोलीकी तरह कम्पित होता है, और इस प्रकार अपने कम्पनसे तरंग पैदा करता है। पहली पंक्तिमें सभी कण एक समतलमें है। दूसरी पंक्तिमे कण ० अपने पूरे विस्तार तक पहुँच जाता है। कण ० के साथ लगे हुए कणोंकी श्रेणी भी इसके साथ-ही-साथ ऊपरको खिंच आई है। इस खिन्चावका असर कण ४

तक पहुँच गया है जो ऊपर चलनेको तैयार है। गतिकी दिशा तीरसे बताई गई है। जितने समयमें कण ० ऊपरतक पहुँचा उतने समयमें इसके खिंचावका असर कण ४ तक पहुँच गया। तीसरी पंक्तिमें जब कण ० लौट-कर फिर अपने पहले समतलके स्थान पर पहुँचता है तो कण ४, पहले खिंचावके कारण, अपने पूरे विस्तार तक जाता है। यहाँ पर जैसे कण ० के साथ ० और ४ के बीचवाले कण, आगे-पीछे, नीचेकी ओर चले वैसे ही कण ४ के साथ ४ और ८ के बीचवाले कण ऊपरको खिंच आये और इस खिंचावका असर कण ८ तक पहुँच गया। चौथी पंक्तिमें कण ० नीचेकी ओर अपने विस्तारके अन्तमें पहुँच गया है। इतने समयमें ४ पहलेके समतलमें और ८ ऊपरकी ओर अपने विस्तारके अन्तमें पहुँचा है। ८ के खिंचावका असर १२ पर पड़ा जो अब ऊपरकी ओर विचलित हो रहा है। ५ वीं पक्तिमें ० अपने पहलेके समतलमें, ठीक आरम्भ की दशामें पहुँच गया है इस समय ४ नीचेकी ओर अपने विस्तारके अन्तमें, ८ समतलमें और १२ ऊपरकी ओर अपने विस्तारके अन्तमें पहुँचा है। १२ के खिंचावका असर अब १६ पर पड़ रहा है। १६ अब ठीक उसी तरह ऊपरको जायगा जिस तरह ० कण। दोनोंकी दशा एक है।

५ वीं पक्तिपर ध्यान देनेसे पता चलता है कि जितने समयमें कण ० ने एक पूरा कम्पन समाप्त किया उतने समयमें आन्दोलन कण १६ तक पहुँच गया, और बीचके सारे कणोंका एक वक्र बन गया। ऊपरका तल अब सम न रहा—० से १६ तकका आधा नीचेको धस गया और आधा ऊपरको उभर आया (आ० १०)। इस

आकृति १०

प्रकार एक खाल और एक उभारसे बने हुए ० से १६ तकके सारे वक्रको एक तरंग कहते हैं। इसकी सीधी लबाई 'ल' को तरंगमान कहते हैं। समतलसे उभारकी ऊँचाई,या खालकी गहराई 'वि' को तरंगविस्तार कहते हैं।
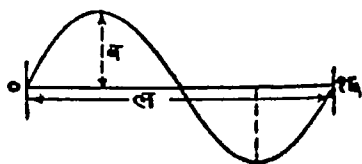
आ० ६ की सारी पंक्तियोंको देखनेसे पता चलेगा कि कण ० के एक कम्पनमें एक पूरा तरंग बन गया और आन्दोलन तरंगमान ल दूरी तक पहुँच गया। अब ० के दूसरे कम्पनके साथ-साथ १६ का पहला कम्पन शुरू होगा और वह अपने एक कम्पनमें अपने आगे पहले जैसा ही तरंग बना देगा। अर्थात् ० के दो कम्पनमें दो तरंग बनेंगे और आन्दोलन २×ल तक पहुँच जायगा। इस प्रकार, यदि कण ० १ सेकेण्डमें १० कम्पन पूरा करता है तो आन्दोलन, तल के ऊपर, एक सेकेण्डमें १० ल तक पहुँचता है। एक सेकेण्डमें तरंग जितनी दूर चलता है वही उसका वेग माना जाता है। मान लो कि हम कण ० के ऊपर कम्पित द्विभुजकी एक भुजा रखते हैं जिसकी आवृत्ति 'आ' है। द्विभुजकी प्रेरणासे कण ० मे १ सेकेण्डमे 'आ' कम्पन होंगे और आन्दोलन एक सेकेण्डमें आ×ल तक पहुँचेगा। यही तरंगका वेग हुआ। अर्थात् आवृत्ति और तरंगमान मालूम हो तो तरंगका वेग आसानीसे निकाला जा सकता है। जैसे—

वे=आ×ल। ....(२)

१५—ऊपर जलके तरंगकी चर्चा की गई है। पर वायुके तरंगमे एक विलक्षणता है। जलके अणु एक-दूसरेसे प्राय चिपके हुए होते हैं। इसीलिए जब एक अणु ऊपर उठता है तो उसके अगल-बग़लके अणु भी उसके साथ बँधे-से ऊपरको खिंच आते हैं। पर वायु या किसी भी गैसके अणु एक-दूसरेसे स्वतन्त्र होते हैं। इसलिए जलके अणुकी तरह ऊपर उठकर ये अपने अगल-बग़लके अणुओंको विचलित नहीं कर सकते। ये तो अपने सामनेके अणुको धक्का मारकर ही आन्दोलनको आगे बढ़ा सकते हैं। इसलिए जहाँ जलके तरंगकी दिशा इसके अणुओंके कम्पनकी दिशाके साथ समकोण बनाती है अर्थात् आड़ी होती है वहाँ वायु या गैसके तरंगकी दिशा अणुओंके कम्पनकी दिशामे ही होती है। इस प्रकार, तारके कम्पनकी तरह ही तरंग भी दो प्रकारके होते हैं। पहला अनुप्रस्थ तरंग और दूसरा अनुदैर्घ्य तरंग। ऊपरके विचारसे यह स्पष्ट है

कि गैसोंमें केवल अनुदैर्घ्य तरंग पैदा किया जा सकता है; किन्तु द्रव या ठोसमें दोनों ही प्रकारके तरंग पैदा हो सकते हैं।

१६—वायुके अणुके कम्पनसे अनुदैर्घ्य तरग कैसे पैदा होता है, यह आ० ११ मे बताया गया है। एक सीधी रेखामें १३ अणुओंके स्थान
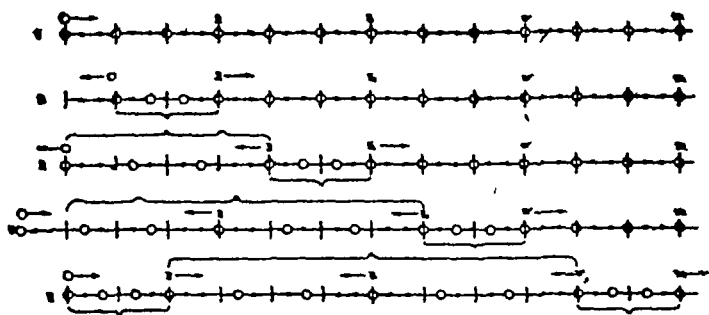
आकृति ११

खड़ी रेखाओंसे चिह्नित किये गये हैं। दो अणुओंके बीचकी दूरी, दो बिन्दुओंके द्वारा तीन बराबर हिस्सोंमें बाँटी गई है। पहली पंक्तिमें सभी अणु अपने-अपने स्थानपर हैं। दूसरी पंक्तिमे अणु ० कम्पित होकर अपने विस्तारके अततक पहुँचता है, जो दो अणुओंके बीचके अतरके बराबर मान लिया गया है। अणु ० अपने आगेके अणुको धक्का देकर कम्पित कर देता है और इस प्रकार कम्पन आगे बढता है। यह कम्पन आगेके अणुओंमें क्रमश कुछ समयके अतरसे पहुँचता है। इसलिए जिस समय अणु ० अपने पूरे विस्तार पर पहुँचता है, उस समय अणु १ अपने आगे दूसरे बिंदुपर, और अणु २ बिंदु १-पर पहुँचता है। अणु ३ चलनेको तैयार है। अर्थात् अणु ० के कम्पनका असर अब अणु ३ तक पहुँच गया। दूसरी पंक्तिको पहलीके साथ देखनेसे पता चलेगा कि ० से ३ तकके अणु एक-दूसरेके पास आ गये हैं। अणुओंके इस प्रकार पास-पास आजानेसे 'सघनता' पैदा होती है। तीसरी पंक्तिमें, जब अणु ० अपने पहले स्थानपर पहुँचता है तो

'सघनता' की दशा ३ से ६ तक पहुँचती है। अब तीसरी पंक्तिको पहलीके साथ देखनेपर मालूम होगा कि ० और ३ के बीचके अणु एक-दूसरेसे दूर-दूर पर हैं। इस प्रकार यहाँ 'विरलता' पैदा हो गई है। ४ थी पंक्तिमें 'सघनता' ६ से ६ तक पहुँची है और 'विरलता' ० से ६ तक। ५ वीं पक्तिमें सघनता ६ से १२ तक और विरलता ३ से ६ तक फैल गई है। इस प्रकार ० के एक पूरे कम्पनमें सघनता १२ तक पहुँच गई और अणु १२ अब ठीक ० की दशामें कम्पन आरम्भ करनेको तैयार है। इससे आगे ० दूसरी सघनता और १२ अपनी पहली सघनता पैदा करेगा।

५ वीं पंक्तिसे यह स्पष्ट है कि सघनताके पीछे विरलता लगी रहती है। इस एक सघनता और एक विरलताको मिलाकर एक अनुदैर्घ्य तरंग माना जाता है—ठीक उसी प्रकार जैसे एक उभार और एक खाल मिलकर एक अनुप्रस्थ तरग बनता है। यदि सघनताकी मात्राको उभारसे और विरलता की मात्राको खालसे प्रकट करें तो दोनों प्रकारके तरंग एक ही रूप ले लेते हैं। इसलिए अनुदैर्घ्य तरंग भी आ० १० के वक्रसे ही प्रकट किया जा सकता है। यहाँपर एक सघनता और एक विरलताके योगकी दूरी तो तरंग-मान होगी और १ ली पंक्ति (आ० ११) की अपेक्षा अंतिम सघनता जितनी अधिक होगी वही तरंग-विस्तार होगी।

अनुप्रस्थ तरंगकी तरह ही, अगर तरगमान मालूम हो और अणुओंकी आवृत्ति मालूम हो तो अनुदैर्घ्य तरगका वेग भी निकाला जा सकता है।

१७—अनुच्छेद ११ में आवृत्तिका सम्बन्ध वस्तुके आकार-प्रकारके साथ दिखाया गया है और यहाँ आवृत्तिका सम्बन्ध तरंगवेग और तरंग-मानके साथ दिखाया गया है। विचार करने पर पता चलेगा कि इन दोनों बातोंमें कोई भेद नहीं है। उदाहरणके लिए तारकी आवृत्तिको लें। यह बताया जा चुका है कि तारकी आवृत्ति उसकी लम्बाई, खिंचाव और तौलपर निर्भर है। यहाँ लंबाईका सम्बन्ध तरंगमानसे है और खिंचाव और तौलका

सम्बन्ध तरंगवेगसे है। खिंचाव जितना अधिक और तौल जितना कम होगा, तारमें अनुप्रस्थ तरंगका वेग उतना ही अधिक होगा। इसी प्रकार डंडेमें उसके स्थिति-स्थापकत्व और घनत्वके अनुसार अनुदैर्ध्य तरंगका वेग घटता-बढ़ता है। वायुमें तरंगका वेग वायुका दाब बढ़नेसे बढ़ता है और घनत्व बढ़नेसे घटता है। मतलब यह कि अनु० ११ में हर एक वस्तुकी आवृत्ति निकालनेके लिए जिन-जिन माप-तौलोंकी आवश्यकता है वे दो भागोंमें बाँटे जा सकते हैं। पहला भाग तो स्थिति-स्थापकत्व, घनत्व आदि भौतिक गुणोंका है जिसका सम्बन्ध वेगसे है और दूसरा भाग आकारके मापका जैसे लंबाई, चौड़ाई, व्यास आदि जिसका सम्बन्ध तरंगमानसे है।

१८—किसी वस्तुमें घनत्व आदि निश्चित और स्वाभाविक गुण हैं, इसलिए उस वस्तुमें ध्वनिका वेग भी निश्चित है। डंडे और चदरेमें, स्थिति-स्थापकत्व उनके अणुओंके आपसके खिंचाव पर निर्भर है। तार और पर्देमें यह खिंचाव कृत्रिम बल लगाकर पैदा किया जाता है। इसलिए इस कृत्रिम खिंचावको यदि बदला न जाय, तो यह भी स्वाभाविक गुणकी कोटिमें ही डाला जा सकता है। इस प्रकार, यह मानना पड़ता है कि किसी वस्तुमें ध्वनिका एक बँधा हुआ वेग होता है, जो उसकी स्वाभाविक दशाओं पर निर्भर है। अब यदि वस्तुकी लंबाई आदि, आकारके मानको बदलें तो यह सिद्ध है कि उस वस्तुकी आवृत्ति बदल जायगी। और यदि आकारको भी निश्चित कर दें तो उस वस्तुकी एक अपनी आवृत्ति होगी जो उस वस्तुके लिए स्वाभाविक समझी जायगी। इसे ही वस्तुकी 'सहज आवृत्ति' कहते हैं। अनु० ११ में जो आवृत्तिकी गणना या सम्बन्ध बताया गया है वह असलमें 'सहज आवृत्ति' की ही गणना है। क्योंकि प्रेरणाके द्वारा किसी वस्तुमें कोई भी आवृत्ति पैदा की जा सकती है (अनु० ३६) जिसका सम्बन्ध वस्तुकी दशाओंसे नहीं है।

१६—घन, द्रव या गैसमें ध्वनिका संचार अनुदैर्ध्य तरंगके द्वारा ही होता है। इस तरंगका वेग माध्यम (जिसमें होकर ध्वनि चलती है) के

स्थिति-स्थापकत्व और घनत्व—मुख्यत. इन्हीं दो गुणोंसे बँधा होता है। इसलिए जबतक इन दो गुणोमें कोई अंतर नहीं पड़ता तबतक माध्यममें ध्वनिका वेग निश्चित होता है। भिन्न-भिन्न द्रव्योंमे ध्वनि-वेगका मान वैज्ञानिकोने अनेक प्रयोगोंसे निकाला है। उन प्रयोगोंका परिणाम, कुछ सामान्य द्रव्योंके लिए, नीचे दिया गया है।

सारिणी १

द्रव्य	तापक्रम	वेग
वायु	०° (डिग्री सेण्टीग्रेड)	१०८७ } फुट प्रति
हाइड्रोजन	०° ,,	४१६३ } सेकेण्ड
जल	१५° ,,	४७१४ ,,
ताँबा	२०° ,,	११६७० ,,
लोहा	२०° ,,	१६८२० ,,
लकड़ी, ओक (आँस के साथ)	१०°–२०° ,,	१२६२० ,,
काँच	१०°–२०° ,,	१६४००-१६७००,,

इस सारिणीको देखनेसे पता चलता है कि ध्वनिका वेग गैसोंकी अपेक्षा, द्रवोंमें अधिक और द्रवोकी अपेक्षा घनोंमें अधिक होता है। हाइड्रोजनका घनत्व वायुसे कम होता है इसीलिए इसमें ध्वनिका वेग बढ़ जाता है। द्रव या घनका घनत्व गैसोसे अधिक होता है इसलिए इनमें वेग घटना चाहिए। साथ-ही-साथ इनका स्थिति-स्थापकत्व गैसोसे बहुत ज़्यादा होता है इसलिए वेग बढना चाहिए। पर पहले कारणसे वेगमे उतनी कमी नहीं होती जितनी दूसरे कारणसे वेगमे वृद्धि होती है। इसलिए दोनो मिलकर घन और द्रवके तरंगका वेग गैसोंकी अपेक्षा बहुत अधिक हो जाता है।

ऊपरकी सारिणीमें वेग निश्चित तापक्रमपर बताया गया है। यह इसलिए कि माध्यमका तापक्रम बदलनेसे वेगमें भी अंतर आ जाता है; क्योंकि तापक्रमका असर स्थिति-स्थापकत्व और घनत्व, दोनों ही पर पड़ता है। तापक्रम या गरमी बढनेसे गैसोंमें ध्वनिका वेग बढ जाता है। वायुमें हर एक डिग्रीकी बढतीपर वेग लगभग २ फुट प्रतिसेकेण्ड बढ जाता है। घनोंमें प्राय तापक्रम बढनेसे वेग घटता है। किन्तु लोहे और चाँदीमें २०° से १००° तक तो वेग बढता है और १००° से २००° के बीच और घनोंकी तरह घटता है।

४. तरंग-संयोग और स्थावर तरंग

२०—किसी माध्यममें दो तरंग एक ही साथ और एक ही मार्गसे एक-दूसरेके ऊपर चलें तो माध्यमका हर एक कण दोनों ही तरंगों-द्वारा विचलित होगा। ऐसे कणोंका विस्तार, अलग-अलग दोनों तरंगोंके कारण
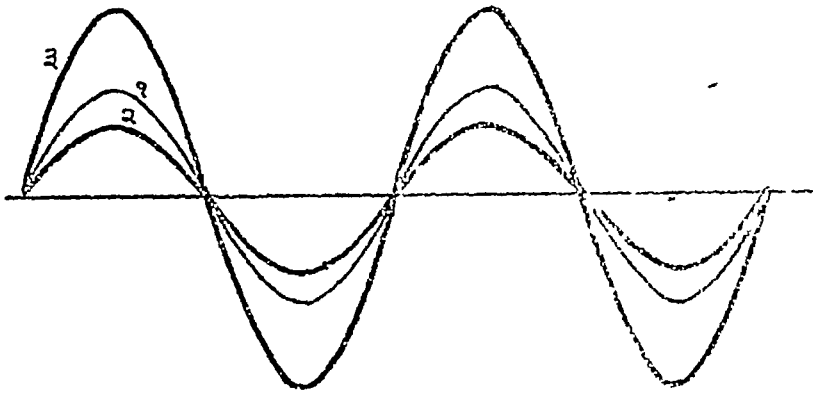
आकृति १२ (१)

जो विस्तारके मान होंगे, उन्हींके योगसे बनेगा। जब प्रत्येक कणका विस्तार इन दोनों तरंगोंके प्रभावसे बदल जायगा तो एक नया तरंग तैयार होगा और पहलेके दोनों तरंगोंका अस्तित्व इस नये तरंगमें ही लुप्त हो जायगा।

आ० १२ (१) में दो तरंग एक-के-ऊपर-एक दिखाये गये हैं। इनमें तरंग २ का विस्तार तरंग १ के विस्तारमें आधा है और दोनोंका तरंगमान बराबर है। दोनों तरंग माध्यममें इस दशामें चल रहे हैं कि एकको उभार दूसरेकी उभारपर और एककी खाल दूसरेकी खालपर पड़ती है। जब दोनों की उभार एक साथ माध्यमके किसी कणको ऊपर खींचेगी तो उस कणका विस्तार ऊपरकी दिशामें तरंग १ के विस्तारका डेओढ़ा हो जायगा। यही दशा खालकी भी होगी। दूसरे कणोंका नया विस्तार भी इसी तरह बनेगा।

इस प्रकार तरंग ३ बनता है जिसका तरंगमान तो पहले ही जैसा है पर विस्तार तरंग १ से डेओढा है।
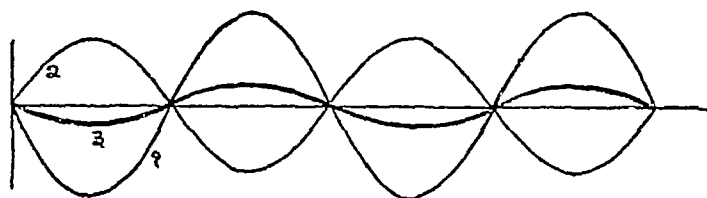
आकृति १२ (२)

तरंग १ और तरंग २ माध्यममें ऐसी दशामे भी चल सकते हैं कि एककी उभार दूसरेकी खालपर और एककी खाल दूसरेकी उभार पर पड़े। ऐसी दशामें माध्यमके किसी कणको जिस समय तरंग १ की उभार ऊपर खींच रही है उस समय तरंग २ की खाल उसे नीचे खींच रही है। अब चूँकि तरग २ का विस्तार तरंग १ के विस्तारका आधा है इसलिए कणका विस्तार तरग १ के विस्तारका आधा रह जायगा। अब दोनों तरगोंके सयोगसे तरंग ३ बन जायगा [आ० १२ (२)] जिसका तरगमान तो पहले ही जैसा रहेगा पर विस्तार तरंग १ का आधा होगा।

अगर माध्यममे दोसे अधिक तरंग चलते हों, तो ये सारे तरग मिल-कर एक ऐसा तरग बनावेंगे जिसका विस्तार इन तरगोंके विस्तारोंको जोड़-घटाकर निकाला जा सकता है।

२१—जब कई तरंगोंके मेलसे एक नया तरंग बन जाता है तो जिस समय हम किसी तरगका अनुभव करते हैं उस समय यह कैसे कहा जा सकता है कि वह दूसरे तरगोंके मेलसे नही बना है? हम ऐसे अनेक तरंगोकी कल्पना कर सकते हैं जिनके विस्तारको जोड़-घटाकर अनुभृत तरंग तैयार किया जा सकता है। मतलब यह कि जैसे अनेक तरंगोंका अस्तित्व मालूम होनेपर उनसे कैसा तरंग बनेगा यह जाना जा सकता है; वैसे ही, इसके उलटा, अगर किसी तरगका अस्तित्व मालूम हो तो वह किन-किन

तरंगोंसे बन सकता है यह भी मालूम किया जा सकता है । इनमें पहला तरंगोंका 'संश्लेषण' हुआ और दूसरा तरंगोंका 'विश्लेषण' ।

आ० १२ में दोनों तरंग बराबर तरंगमानके लिये गये हैं । किन्तु यदि हमने तरंगोंके संयोगका नियम समझ लिया है तो चाहे तरंग किसी भी मानके हो या किसी भी दशामें हों, उनका संयोग आसानीसे निकाला जा सकता है ।

आ० १२ (२) में यदि दोनो ही तरंगोंको बराबर विस्तारका मानें तो एककी उभार और दूसरेकी खाल मिलकर शून्य हो जायगा । परिणाम यह होगा कि माध्यममें दो तरंगोंका सञ्चार होते हुए भी माध्यम शान्त रहेगा । यह दशा केवल काल्पनिक नहीं है । अनेक प्रयोगोंसे इस दशाके अस्तित्वको प्रमाणित किया गया है ।

२२—अगर माध्यम दूरतक फैला हुआ हो तो उसमें तरंग प्रतिक्षण आगे बढता हुआ नज़र आएगा और यदि तरंगका ग्राहक जैसे कान, और प्रेक्षक जैसे द्विभुज, माध्यमके भीतर ही हों तो ग्राहकपर इस बढ़ते हुए तरंगकी गतिका ही असर होगा । इस प्रकारके तरंगको 'जंगम तरंग' कहते हैं । इसी तरंगके द्वारा हम ध्वनि सुनते हैं ।

जब माध्यम छोटा और सीमित होता है जैसे लोहेका छोटा डंडा या बाँसुरी, तो तरंग एक किनारेसे दूसरे किनारेपर पहुँचकर वहाँसे लौटता है और फिर पहले किनारेपर पहुँचकर लौटता है । इस प्रकार तरंग एक किनारेसे दूसरे किनारेतक घूमता रहता है । रस्सीके दृष्टान्तसे यह बात अच्छी तरह समझमें आ जायगी ।

क —— त —— ख

क —— त —— ख
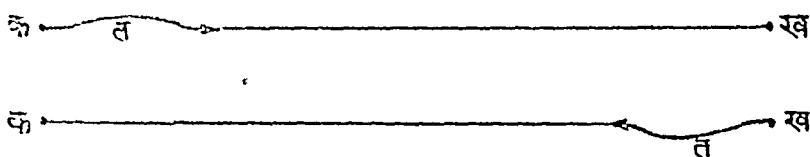
आकृति १३

किसी पतली रस्सीका एक छोर खूंटी ख में बाँध दो (आ० १३) और दूसरे छोरको हाथमें पकड़ो जिसमें रस्सी तनी रहे । अब हाथ हिलाकर

रस्सीमे उभार पैदा कर दो। यह उभार ख तक जायगी और वहाँसे परावर्त्तित होकर उलट जायगी और खालके रूपमें क की ओर आवेगी। इस स्थूल प्रयोगसे तरंगका परावर्त्तन या लौटना मालूम होता है।
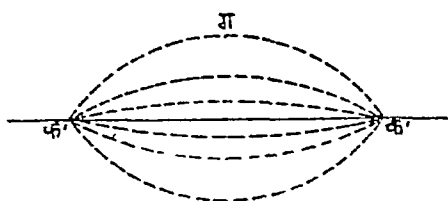
आकृति १४

इसे सूक्ष्म बनानेके लिए रस्सीकी जगह रेशमका पतला धागा लो और हाथकी जगह द्विभुजकी एक भुजा लगा दो जिसका कम्पन धागेके आड़े हो। धागेका खिंचाव और लम्बाई ऐसी रक्खो कि द्विभुजके एक कम्पनके समयमे तरग दूसरे छोरसे लौटकर द्विभुजके पास पहुँच जाय। अब धागेमें बड़ी शीघ्रतासे तरगका संचार होगा और थोड़े समयमें ही धागेमें आ०१४ की तरह कम्पन होने लगेगा जिसका रूप ठीक-ठीक आ० १ में दिये हुए तारके कम्पन सरीखा है। इसमे नीचे-ऊपरकी खण्डित रेखाएँ भिन्न-भिन्न समयपर धागेकी स्थिति बताती हैं।

इस तरंगको, जो आगे बढता हुआ नही मालूम पड़ता, स्थावर-तरंग कहते हैं। वेबरने पहले-पहल रस्सीके साथ प्रयोग करके स्थावर-तरंगका अध्ययन किया था। पीछे मेल्डीज़ने पतले रेशमी धागे और द्विभुजका उपयोग करके स्थावर-तरंगके सम्बन्धमें बड़े ही रोचक प्रयोग किये। फिर टिंडलने रेशमी धागेकी जगह, बिजलीकी धारासे गर्म किये हुए प्लैटिनमके तारसे मेल्डीज़के सारे प्रयोगोंको दिखाया। स्थावर-तरंगके कारण जो माध्यममें क्रिया होती है उसकी कई विशेषताएँ हैं। पहली तो यह कि इसमें माध्यमके कुछ बिन्दु या स्थान अचल होते हैं जैसे क, और ख, (आ०१४)। इन स्थानोंको 'ग्रन्थि' या 'गाँठ' कहते हैं। इसी प्रकार कुछ बिंदु

ऐसे होते हैं जिनका विस्तार सभी स्थानोसे अधिक होता है; जैसे ग बिंदु। इन स्थानोंको 'प्रतिग्रन्थि या फंदा' कहते हैं। दूसरी यह कि प्रतिग्रन्थिके दोनों ओर हर बिंदुका विस्तार नियमित रूपसे घटता जाता है जो ग्रन्थितक पहुँचते-पहुँचते शून्य हो जाता है। तीसरी यह कि सभी बिंदुओंकी आवृत्ति समान होती है।

अब यह समझना आसान है कि तार आदि जिन वस्तुओंमे कम्पन होता है उसका कारण यह स्थावर तरंग ही है। जब हम तारको बीचमे छेड़ते हैं तो बीचके बिन्दुसे दोनों ओर तरंग चलते हैं और ये दोनो तरंग दोनो बंधे हुए छोरसे उलट कर लौटते हैं। ये बीचमें एक-दूसरेको पारकर फिर अपनी-अपनी राहपर चल देते हैं। इसीसे कम्पन पैदा होता है। बीचमे, जहाँ दोनों तरंग आपसमे मिलते हैं वहाँ सबसे अधिक विस्तारवाली प्रतिग्रन्थि बनती है। यह तरंग-संयोगके नियमसे स्पष्ट है। (अनु० २०)।

ऊपरके द्विभुजकीसे दूनी आवृत्तिवाले द्विभुजके द्वारा भी आ० १४ के धागेमे स्थावर-तरग पैदा किया जा सकता है। पर इस बार एक नई बात पैदा हो जायगी।
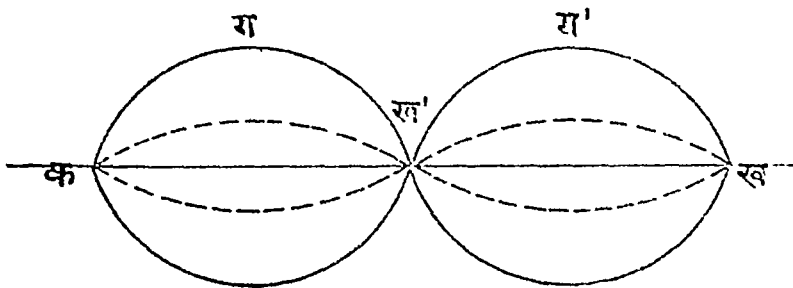
आकृति १५

पहले बताया जा चुका है कि जितने समयमे द्विभुज एक कम्पन पैदा करता है, उतने समयमे तरंग दूसरे छोरसे लौटकर द्विभुजतक पहुँच जाता

है। इस बार द्विभुजकी आवृत्ति दूनी है। इसलिए जितने समयमें द्विभुज एक कम्पन पूरा करता है उतने समयमें तरंग दूसरे छोरतक पहुँचता है, क्योंकि तरंगवेग पहले-जैसा ही है। जिस समय पहला तरंग दूरके छोरसे लौटता है उस समय द्विभुजसे दूसरा तरंग निकलता है। अब ये दोनो तरंग ठीक बीचमें एक-दूसरेसे मिलेंगे। किन्तु, जैसे आ० १३ में बताया गया है, पहला तरंग खालकी दशामें होगा तो दूसरा उभारकी दशामें, क्योंकि पहला तरंग दूसरे छोरसे उलटकर लौटा है। इस प्रकार एककी खाल दूसरेकी उभारसे मिलकर सम हो जायगी क्योंकि दोनोंका विस्तार बराबर है (अनु० २१) और बीचमें, दोनों छोरकी तरह ही, एक और ग्रन्थि बन जायगी। बीचकी ग्रन्थिके कारण धागा दो बराबर खण्डोंमें कम्पित होगा जैसा कि आ० १५ में दिखाया गया है। इन दोनों खण्डोंकी आवृत्ति अब दूनी अर्थात् इस दूसरे द्विभुजके बराबर हो जायगी क्योंकि कम्पवाले खण्डकी लम्बाई आधी हो गई (अनु० १२)। इसी प्रकार तिगुनी आवृत्तिका द्विभुज लेकर धागेको तीन खण्डोंमें विभक्त किया जा सकता है जिसमें दो अंतिम ग्रन्थियोंको छोड़, दो ग्रन्थियाँ और बीचमें बन जायँगी।

यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि ग्रन्थि पूरी तरह अचल या निष्पन्द नहीं होती। उसमें कुछ-न-कुछ स्पन्दन होता ही है। केवल इसका मान माध्यमके और बिन्दुओंकी अपेक्षा बहुत ही कम होता है।

ऊपरकी विवेचनासे यह बात मालूम होती है कि एक आगे जाते हुए और दूसरे परावर्तित होकर लौटते हुए तरंगोंके संयोगसे बना हुआ स्थावर-तरंग वस्तुमें कम्पन पैदा करता है, और इस प्रकार एक सीमित माध्यमका स्थावर-तरंग दूसरे विस्तृत माध्यम, जैसे वायु आदिमें जंगम तरंग पैदा कर देता है जो अगर हमारी ओर आवे तो हमारे कानोंके पर्दोंको विचलित करता है।

———

५. ध्वनिवक्र और उनका विश्लेषण

२३—द्विभुजकी एक भुजाके छोरपर एक हल्की सूई ऐसी चिपकाओ कि यह भुजाके कम्पनकी दिशा और भुजा, दोनोंके साथ समकोण बनाती
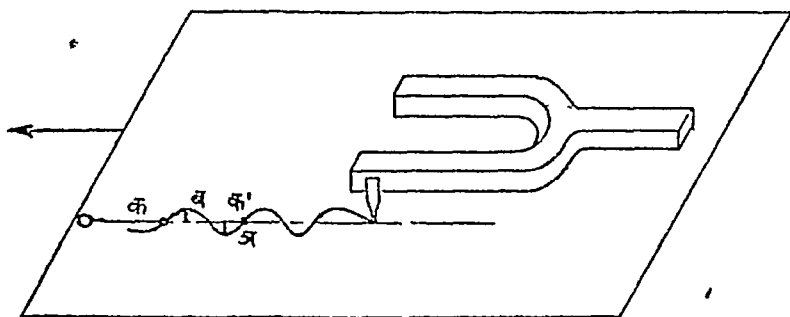
आकृति १६

हो। एक काँचकी चौड़ी पटरीपर कालिख जमाओ और उसप काँपते हुए द्विभुजकी नोकको इस प्रकार रखो कि सूई पटरीपर खड़ी पड़े। यह दीख पड़ेगा कि नोककी चालके कारण कालिखपर एक आड़ी रेखा खिंच जाती है। अगर द्विभुजमें कम्पन न होता तो पटरीपर सिर्फ विंदुका निशान पड़ता। जिस समय द्विभुज काँप रहा है उसी समय पटरीको भी आ० १६ मे दिखाई हुई दिशामे बराबर वेगसे सरकाओ। अब यह दीख पड़ेगा कि पटरीकी कालिखपर तरंगकी तरह एक निशान पड़ गया है। सूईकी नोकके द्वारा खिंचे हुए इस वक्रपर ध्यान दो। मान लो कि ० रेखा नोक होकर उस समय खींची गई है जब द्विभुज स्थिर था। वक्रको देखकर यह समझना आसान है कि क से क' तकका वक्र सूईकी नोक या द्विभुजके एक पूरे कम्पनसे बना है; और रेखासे ख की ऊँचाईका मान द्विभुजका कम्प-विस्तार है। अगर पटरीके सरकनेका वेग ठीक-ठीक नाप सके तो यह हिसाब लगाया जा सकता है कि क से क' तक सरकने मे कितना समय लगा। यह

द्विभुजके कम्पनका काल होगा। काल मालूम होनेसे द्विभुजकी आवृत्ति आसानीसे निकाली जा सकती है (अनु० ७)।

सूईकी नोकका कम्पन द्विभुजके कम्पनके साथ और ठीक उसी की तरह होता है और यह नोक अपने कम्पनसे वक्र बनाता है। इसीलिए द्विभुजके कम्पनके साथ वक्रका इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि उसकी सारी विशेषताएँ वक्रसे जानी जा सकती हैं। अगर द्विभुजके कम्पनमें कोई व्याघात पड़ जाय, किसी कारणसे कोई अन्तर आ जाय, तो वह ज्यों-का-त्यों वक्रमें प्रकट हो जायगा। इसलिए यह वक्र द्विभुजके कम्पनकी सच्ची रूपरेखा है।

द्विभुजके वक्रकी तरह ही नाद पैदा करनेवाले सभी वस्तुओंके अनेक विधियोंसे वक्र खींचे जा सकते हैं। हरेक वस्तुका वक्र उसके कम्पनका रेखा-चित्र है और हर वक्रमें वस्तुके कम्पनकी विशेषता मौजूद रहती है। साथ-ही-साथ एक वस्तुका वक्र दूसरी वस्तुके वक्रसे भिन्न होता है।

२४—ये सारे वक्र इतने सरल नहीं होते जितना कि आ० १६ में दिखाया गया है। यहाँतक कि द्विभुजका भी सच्चा वक्र दिये हुए वक्रसे कुछ भिन्न होता है। इन वक्रोंके भेद और जटिलताका कारण तारके कम्पनपर ध्यान देनेसे समझमें आ सकता है। अगर तार एक खण्डमें काँप रहा
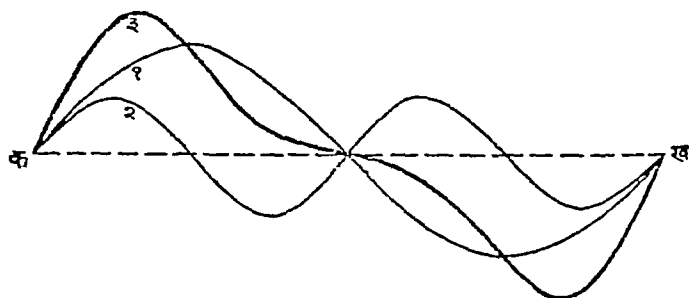
आकृति १७

हो तो उसके किसी भी विन्दुके कम्पनका वक्र आ० १७ के वक्र १ सरीखा होगा। अगर वह आ० १५ की तरह दो खण्डोंमें काँपता हो तो उस

बिन्दुका कम्पन-वक्र ऊपर दिखाये हुए वक्र २ सरीखा होगा। पर जब तार में ये दोनों कम्पन साथ-साथ हो तो दोनोंके संयोगसे बना हुआ कम्पन (अनु० २०) वक्र ३ से मिलते-जुलते वक्रसे प्रकट किया जायगा। अगर तार ३ खण्डोंमें भी काँपता हो तो संयोजित वक्र ३ का रूप और भी बदल जायगा। इस प्रकार तारके एक खण्डवाले कम्पनके साथ अधिक-से-अधिक खण्डवाले कम्पन जितने मिलते जायँगे इसके कम्पन-वक्रका रूप उतना ही बदलता जायगा।

यह अनुभव सिद्ध है कि जब तारमें कम्पन होता है तो वह एक ही खण्डमें नहीं होता। २ खण्ड, ३ खण्ड, ४ खण्ड आदि कम्पनके जितने ढंग हैं तारमें ये सारे साथ-ही-साथ चलते हैं। परिणाम यह होता है कि तारका असल कम्पन एक-खण्डी कम्पनसे बहुत बदल जाता है। ऊपर केवल दो कम्पन लेकर परिणाम दिखाया गया है। कम्पनके इस अन्तिम रूपपर भिन्न-भिन्न कम्पनोंके विस्तारका भी असर होता है। इतना ही नहीं। तरंगमान, विस्तार आदि बराबर रहनेपर भी अगर एक तरंग दूसरेकी अपेक्षा थोड़ा खिसका हुआ हो अर्थात् थोड़ा आगे-पीछे हो, तो भी रूप बदल जाता है। आ० १७ में वक्र २ को सिर्फ बाईं ओर थोड़ा खिसका दें इतनेमें वक्र ३ का आकार बदल जायगा। अभी तो वक्र १ और वक्र २ एक ही स्थानसे शुरू होते हैं। अर्थात् दोनों एक ही कलामें हैं। एक वक्रको खिसका देनेसे कलामें अन्तर आ जाता है। इस कला-भेदसे भी वक्र बदल जाता है। अर्थात् किसी तारके कम्पनके अनेक रूप हो सकते हैं।

२५—यह बताया जा चुका है कि जब तार दो खण्डोंमें काँपता है तो इसकी आवृत्ति एक-खण्डी कम्पनकी आवृत्तिसे दूनी हो जाती है। इसी प्रकार तीन-खण्डी कम्पनकी आवृत्ति तिगुनी और चार-खण्डी कम्पनकी चौगुनी होती है। आ० १७ से यह मालूम होता है कि वक्र ३ का काल वक्र १ के कालके बराबर ही है। इसलिए इस संयोजित कम्पनकी आवृत्ति वही होगी जो एक-खण्डी कम्पनकी है। पर इस वक्रका विश्लेषण

(अनु० २१) करने पर इसमें दूनी, तिगुनी, चौगुनी आदि आवृत्तियोंके कम्पनका भी अस्तित्व निकलेगा। मतलब यह कि तारके कम्पनकी एक सबसे कम आवृत्ति होती है जो मुख्य है और इसके साथ-साथ अनेक आवृत्तियाँ होती हैं जो इस मुख्य आवृत्तिकी दोगुनी, तिगुनी, चौगुनी हैं। पहली आवृत्तिको 'मौलिक' कहते हैं और दूसरी आवृत्तियोंको 'आवर्त्तक' कहते हैं।

नादोत्पादक सभी वस्तुओंके कम्पन-वक्रका विश्लेषण करके यह बताया जा सकता है कि वह किन-किन आवृत्तियोंकी ध्वनिसे बना है।

२६—किसी वस्तुमें जैसा कम्पन होता है वह वायुमें भी वैसा ही कम्पन पैदा कर देता है। इसलिए यदि वायुके अणुका कम्पन-वक्र उतारा जा सके तो पता चलेगा कि यह वस्तुके कम्पन-वक्रकी ही नक़ल है। इससे और आगे बढो। वायुके अणुओंका कम्पन तरंगके रूपमें चलकर जब हमारे कानोंके पर्देपर पड़ता है तो उसका कम्पन भी ठीक वैसा ही होगा जैसा वस्तुका। और इसलिए अगर कानके पर्देका वक्र उतारा जा सके तो वह भी वस्तुके कम्पन-वक्र-सा ही होगा। मान लो कि कानके पर्देकी जगह अबरखका पतला पर्दा, जैसा कि ग्रामोफोनमें रहता है, रखे तो उसका कम्पन भी ठीक उसी तरह होगा जैसा वस्तुका। और अगर इस पर्देका कम्पन-वक्र खींचे तो वह वस्तुके कम्पन-वक्र सरीखा ही निकलेगा। इसलिए नादवाले वस्तुका कम्पन-वक्र न खींचकर, उससे निकली हुई ध्वनिको किसी पतले और हलके पर्देपर डालकर उसका कम्पन-वक्र खींचे तो एक ही परिणाम निकलेगा। किन्तु अब यह ध्वनि-वक्र कहा जायगा कम्पन-वक्र नहीं।

सभी वस्तुओंका कम्पन-वक्र तैयार करना आसान नहीं है; हो सकता है कि उनके आकार उनके स्थान आदि सुभीतेके न हों। पर ध्वनि-वक्रमें यह कठिनाई नहीं है। कहींसे भी कोई ध्वनि आ रही हो, उसे पर्देपर लेकर, उसका वक्र निकाला जा सकता है। इसी कामके लिए मीलरने फोनोडाइक नामक एक उपकरण तैयार किया है। इसके चोंगेमें ध्वनि प्रवेश करके

काँचके एक हलके और पतले पर्देपर पड़ता है। उस पर्देसे पतले तारके द्वारा जुटा हुआ दर्पण पर्देके साथ-साथ कम्पित होता है। उस दर्पणसे प्रकाश परावर्तित होकर एक सरकते हुए फोटोके प्लेटपर पर्देके कम्पनका चित्र खींच देता है। यही चोंगेमें प्रवेश करनेवाली ध्वनिका वक्र है। इस उपकरणसे मीलरने बहुतेरे नादों और रावोंका विश्लेषण करके नई-नई बातोंका पता लगाया है।

२७—फोनोडाइकसे नाद और राव दोनोंके ही वक्र खींचे जा सकते हैं। नादके गुणोंसे ही स्पष्ट है कि इसका वक्र एक तरंगराशिकी तरह उतरेगा (आ० ५)। पर रावका वक्र एक अनियमित वक्र रेखाकी तरह, थोड़ी जगहमें खिंचकर रह जायगा।

नादके वक्रमें भी दो भेद दीख पड़ते हैं। एक तो ऐसा वक्र होता है जिसके सभी तरंग एकसे ही होते हैं। आ० १७ में सिर्फ एक कम्पनका एक तरंग उदाहरणके लिए दिया गया है। अगर लगातार कम्पनका सच्चा वक्र दिया जाय तो ख से आगेका तरंग भी ठीक क ख सरीखा ही होगा। इसी तरह उससे आगेके तरंग भी होंगे। अर्थात् इस प्रकारका वक्र एक ही तरंगकी नियमित आवृत्तिसे बनता है। दूसरे प्रकारके वक्रमें यह बात नहीं होती। यह वक्र पहलेकी ही तरह लगातार तो होता है, रावकी तरह क्षणिक नहीं होता; पर इसके तरंगोंका रूप बदलता जाता है।

पहले प्रकारके वक्रको 'सामकालिक वक्र' और दूसरे प्रकारके वक्रको 'वैकालिक वक्र' कहते हैं। इसी तरह जिस कम्पनसे पहला वक्र पैदा होता है उसे 'सामकालिक कम्पन' और जिससे दूसरा वक्र पैदा होता है उसे 'वैकालिक कम्पन' कहते हैं।

उदाहरणके लिए यह याद रखना चाहिए कि नाद पैदा करनेवाले तार और वायुके कम्पन सामकालिक होते हैं, और घण्टे, धातुकी पत्ती आदिके कम्पन वैकालिक होते हैं।

इसमें संदेह नहीं कि राव भी एक वैकालिक ही कम्पन है। पर इसमें लगातार होनेका गुण भी नहीं है; इसीसे यह नादसे भिन्न है।

२८—कम्पन-वक्र या ध्वनि-वक्र खिंच जानेपर इन वक्रोंके विश्लेषणकी समस्या उठती है। यह जाननेकी ज़रूरत पड़ती है कि ये वक्र किन-किन वक्रोंके मेलसे बने हैं या इन वक्रोंको पैदा करनेवाली ध्वनिमें कौन-कौन-सी ध्वनियाँ मिली हैं। इस विश्लेषणका एक तरीक़ा गणितका है। फ्रांसीसी गणितज्ञ फोरियरने एक सिद्धान्त निर्धारित किया है जिसका भाव यह है कि प्रत्येक सामकालिक वक्र ऐसे अनेक सरल आवर्त्तक वक्रोंके (जैसे, आ० १७ का १ या २ वक्र) मेलसे बना है जिनका तरंगमान क्रमश १, $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{३}$, है; या ध्वनिका विचार करते हुए कह सकते हैं कि जिनकी आवृत्तिका अनुपात क्रमश- १, २, ३, ४. . . है। साधारण विचारसे भी यह सिद्धान्त ठीक जॅचता है। उदाहरणके लिए आ० १७ के वक्र ३ को ले लें। यह वक्र सामकालिक है; अर्थात् ख से आगे और क से पहलेके वक्र भी ठीक इसी आकार के हैं। यह तभी सम्भव हो सकता है जब इसके बनानेवाले वक्र १, २, आदि सभी सरल वक्रोंके पूरे तरंग क से ख तक ख़तम हो जायॅ। मान लो कि वक्र ३ का तरगमान, क से ख तक १२ इंच है। अगर यह १२, ६, ४ और ३ इन्चके सरल तरंगोंसे बना हो तो क से ख तक क्रमश १, २, ३ और ४ तरंग पूरे आ जायॅगे। ख से आगे भी १२, ६, ४ और ३ इंच के १, २, ३ और ४ तरगोंसे ठीक क ख जैसा ही वक्र तैयार होगा। पर यदि इसमें एक ५ इन्च तरंगमानका वक्र साथ कर दें तो इस वक्रके २ तरग और तीसरे तरंगका २ इन्च लम्बा टुकड़ा तो क ख में पड़ेंगे और ख के बादके वक्रमें एक तरंगका ३ इंच, दूसरा पूरा तरग और तीसरे तरंगका ४ इंच पड़ेंगे। अब यह स्पष्ट है कि ख के बादवाले वक्रका आकार बदल जायगा। और वक्र सामकालिक न रहकर वैकालिक हो जायगा।

इस प्रकार, फ़ोरियरके गणितका उपयोग करके किसी भी सामकालिक

वक्रके विश्लेषणसे यह बताया जा सकता है कि उस वक्रको पैदा करनेवाले सामकालिक नादमें कौन-कौनसे आवर्त्तक हैं।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि फोरियरकी विधिसे किसी अनियमित वक्रका भी विश्लेषण किया जा सकता है। पर तब यह कल्पना करनी होगी कि इस अनियमित वक्रकी बार-बार आवृत्ति होगी। इसलिए सामकालिक वक्रका फोरियर-विश्लेषण सच्चा और यथार्थ होता है और वैकालिकका काल्पनिक होता है।

पर गणितकी विधि एक तो जटिल है, दूसरे गणितज्ञोंके लिए ही सुकर है। इसीलिए वैज्ञानिकोंने ऐसे यन्त्र बनाये हैं जिनसे वक्रका विश्लेषण बड़ी आसानीसे और मिनटोंमें होता है। ऐसा एक यन्त्र प्रोफेसर हेनरिसीका विश्लेषक है, जिसका उपयोग, कुछ सुधारके साथ, मिलरने किया है। फोनोडाइकसे खींचे हुए वक्रको पहले रोशनी और लैंसोंके द्वारा बड़े आकारमें बदला जाता है। फिर इस बड़े वक्रको विश्लेषककी सूईके नीचे रखते हैं और सूईको धीरे-धीरे ठीक वक्रपर चलाते हैं। वक्रके एक पूरे तरंगपर जब सूई चल चुकती है तो वक्रके सारे आवर्त्तकोंके विस्तार यन्त्रमें अंकित हो जाते हैं। इस रीतिसे किसी सामकालिक ध्वनिमें कौन-कौन आवर्त्तक हैं, हर आवर्त्तकका कितना विस्तार है, ये सारी बातें निकल आती हैं।

२६—ध्वनि-वक्रके विश्लेषणसे यह सिद्ध है कि प्रत्येक ध्वनि अनेक सरल ध्वनियोंका मिश्र होता है। अगर दूसरी किसी ध्वनिका मेल न हो तो ध्वनि-वक्र आ० १७ के १ या २ वक्र सरीखा सरल होगा जिसे गणितमें ज्या-वक्र कहते हैं। पर ऐसी ध्वनि बहुत ही विरल है। मिश्र-ध्वनिको बनानेवाली सरल ध्वनियोंमेंसे पहलीको, जिसकी आवृत्ति मिश्रके बराबर ही होती है, 'मौलिक' और दूसरी, तीसरी आदिको 'उपस्वर' कहते हैं। दूसरे शब्दोंमें, हर सरल ध्वनिको 'आंशिक' कहते हैं और इसलिए मौलिकको पहला आंशिक माना जाता है।

इस तरह यह स्पष्ट है कि सामकालिक मिश्रनादके सभी उपस्वर आवर्त्तक

होते हैं; अर्थात् पहला, दूसरा, तीसरा ·· ··उपस्वर मौलिककी आवृत्तिसे दूनी, तिगुनी, चौगुनी · आवृत्तिका होता है। और वैकालिक मिश्रनादके उपस्वर अनावर्त्तक होते हैं, अर्थात् उनके उपस्वरोंकी आवृत्तियोंमें ऐसा सरल सम्बन्ध या अनुपात नहीं होता। तुलनाके लिए नीचे तीन नादोत्पादक वस्तुओंके आंशिकोंकी आवृत्तियाँ दी जाती हैं।

सारिणी २

नादोत्पादक	मौलिक	उपस्वर			
		१	२	३	४
तार, वायु	२५६	५१२	७६८	१०२४	१२८०
चमड़ेका पर्दा	२५६	४०९.६	५३७.६	५८८.८	६६१.२
द्विभुज	२५६	१६००	—	—	—

इस सारिणीसे यह पता चलता है कि तार और वायुके उपस्वर आवर्त्तक हैं क्योंकि इनका अनुपात १ २ ३ ४ ५ ···है। पर चमड़ेके पर्देके उपस्वर अनावर्त्तक हैं क्योंकि इनका अनुपात १ १.६· २·१ २.३ २.७ .. है। इसी प्रकार द्विभुजका उपस्वर भी अनावर्त्तक है।

ऊपर, ध्वनिवक्र खींचकर उनका गणित या विश्लेषक यन्त्रद्वारा विश्लेषण करके उपस्वरोंका पता लगानेकी विधि बताई गई है। पर ऐसे भी अनेक उपकरण हैं जिनके द्वारा, बिना ध्वनिवक्रके ही, सीधे ध्वनिसे उपस्वर पकड़े जा सकते हैं। इनमें सबसे पहला उपकरण हेलमहोल्ज़का अनुनादक (अनु० ३८) है। इसीकी उन्नति करके गर्म तारका माइक्रोफोन बनाया गया है। अब वेगेल और मूरने बिजलीके वॉल्वसे ऐसा उपकरण तैयार किया है जिससे सभी उपस्वर, आवर्त्तक या अनावर्त्तक, बड़ी आसानीसे पकड़े जा सकते हैं। पर ये सारे उपकरण अनुनाद (अनु०३७) के सिद्धान्त पर बने हैं, इसलिए यहाँ इनका विवरण नहीं दिया जाता है। इनकी संक्षिप्त चर्चा अनुनादके अध्यायमें मिलेगी।

६. तारता, तीव्रता और गुण

३०—नादके तीन लक्षण होते हैं—(१) तारता, (२) तीव्रता और (३) गुण। इन्हीं तीनो लक्षणोंके न्यूनाधिक्यसे एक नाद दूसरेसे भिन्न समझा जाता है।

(१) तारता:—स्त्री और बच्चोंकी बोली प्राय महीन समझी जाती है और मर्दोंकी मोटी। स्त्री चाहे धीमे-धीमे बोले, पर उसकी आवाज़का महीनपन नहीं जाता; और पुरुष चाहे लाख चिल्लाए, पर उसकी आवाज़ मोटी-की-मोटी बनी रहती है। चिड़ियोंके चहचहाने और घोड़ेके हिन-हिनानेमें भी यही भेद है। जिस आवाज़को हम महीन कहते हैं उसे गवैया ऊँचा स्वर कहता है और हम जिसे मोटी कहते हैं गवैया उसे नीचा स्वर कहता है। नादकी एक-दूसरेकी अपेक्षा इस नीची-ऊँची स्थितिको ही 'तारता' कहते हैं। हार्मोनियममें बहुत-सी पटरियाँ होती हैं। बाईंसे दाहिनी ओर पटरियोंको एकके-बाद-एक दबाते हुए चलो। मालूम होगा कि आवाज़ महीन होती चली जाती है। वैसे ही, दाहिनेसे बायें जानेमें आवाज़ मोटी होती जाती है। अर्थात् दाहिनी ओर बढ़नेमें स्वर ऊँचा होता चला जाता है और बाईं ओर बढ़नेमें नीचा। संगीतकी भाषामें, स री ग म प ध नी नामके सात स्वर माने जाते हैं। हार्मोनियमकी बायें किनारेकी पहली पटरी स है; इसके बाद क्रमशः और स्वर आते हैं। आठवीं सुफेद पटरीको भी स ही नाम दिया जाता है और फिर बाकी स्वर पहले की ही तरह आगे बढ़ते जाते हैं। ऊपर जो बताया गया है उस हिसाबसे री स से ऊँचा होता है और ग री से। मतलब यह कि स से आगे हर एक स्वरकी तारता बढ़ती जाती है।

यह तारता केवल कानोंका अनुभव ही नहीं है—वह, जिस वस्तुके कम्पनसे स्वर निकलता है उसका भौतिक धर्म है। अनेक प्रयोगोंसे यह सिद्ध

किया जा सकता है कि स्वरकी तारता स्वरोत्पादक वस्तुकी आवृत्तिपर निर्भर है। आवृत्ति जितनी अधिक होगी स्वर भी उतना ही ऊँचा होगा। नित्यकी घटनाओंपर थोड़ा ध्यान रखनेसे ही इस बातकी सच्चाई प्रकट हो जायगी। जब बिजलीका पंखा घूमता है तो उसमेंसे एक प्रकारकी ध्वनि निकलती है। यह ध्वनि पंखेकी आवृत्तिसे ही पैदा होती है। अब बिजलीकी धारा बढ़ाकर पंखेकी गतिको तेज़ कर दो। तुरन्त यह मालूम होगा कि ध्वनि कुछ ऊँची हो गई है। यह समझना आसान है कि ध्वनिकी तारतामें यह अतर आवृत्तिके बढ जानेसे ही हुआ। ऐसे ही जब आरीसे लोहे या लकड़ीको चीरते हैं तो ध्वनि सुनाई पड़ती है जो आरीके दाँतोंके लकड़ीमें लगनेसे पैदा होती है। आरीकी गति बढा देने पर, यह ध्वनि भी ऊँची हो जाती है। एक डंडा या बेत अपने चारों ओर घुमाकर भी यह देखा जा सकता है कि मामूली गतिपर एक गंभीर ध्वनि निकलती है। पर जैसे गति बढाते हैं, ध्वनि ऊँची होती चली जाती है।

हार्मोनियमका री स्वर स से ऊँचा है, इसका कारण यह है कि री की पटरीके साथकी रीड या पत्तीके कम्पनकी आवृत्ति स के साथवाली पत्तीकी आवृत्तिसे अधिक है। हार्मोनियम खोलकर देखनेसे पता चलेगा कि री की पत्ती स की पत्तीसे छोटी है। और यह बताया जा चुका है कि लम्बाई कम होनेसे आवृत्ति बढ जाती है। इसलिए री की आवृत्ति स की अपेक्षा बढ जाती है।

तारता और आवृत्तिका सम्बन्ध एक साधारण उपकरणसे दिखाया जाता है जो संकेत रूपसे आ० १८ मे दिया गया है। इसमें, एक पीतलके बराबर चक्केपर चार छोटे-बड़े वृत्तोंमे सूराख़ बने हुए हैं। पहले वृत्तमें ८ सूराख़ हैं, दूसरेमें १०, तीसरेमें १२ और चौथेमे १६। भाथीमें लगी हुई रबरकी नलीमें काँचका एक पतले सूराख़का मुखनल बैठाया गया है। चक्केके किसी सूराख़के सामने इस मुखनलको रखकर भाथी चलानेसे दूसरी ओरकी हवामें सघनता पैदा हो जाती है। यदि चक्का घूमता हो तो

जब-जब चक्केका सूराख़ मुखनलके सामने आवेगा तब-तब दूसरी ओर सघनता चलेगी। मान लिया जाय कि मुखनल पहले वृत्तके सूराख़के सामने रखा गया है जिसमें ८ सूराख़ हैं। अब अगर चक्का एक सेकेण्डमें १० बार
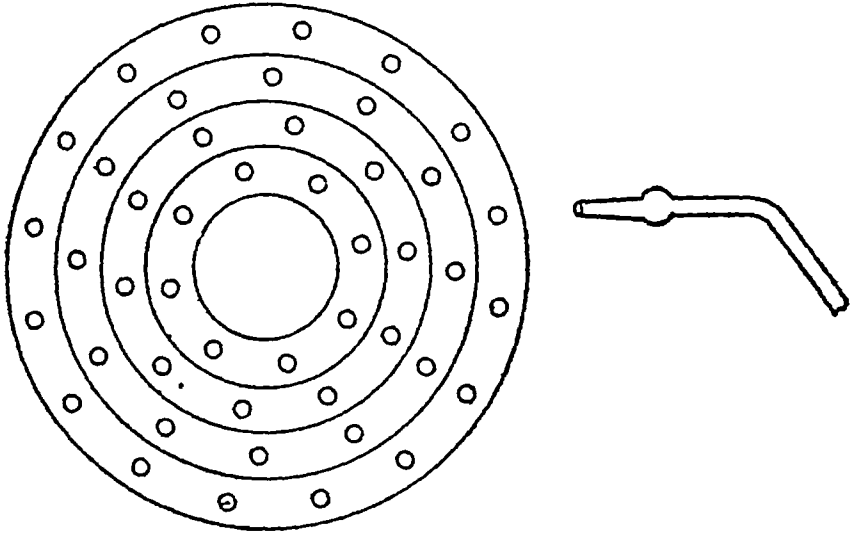
आकृति १८

घूमता है तो एक सेकेण्डमें ८० सूराख़ मुखनलके सामने आयेंगे और इसलिए दूसरी ओर एक सेकेण्डमें ८० सघनताएँ बनेंगी। इन सघनताओंके कारण जो ध्वनि पैदा होगी उसकी आवृत्ति ८० होगी। चक्केकी इसी गतिके साथ अगर मुखनलको दूसरे वृत्तके सूराख़के सामने रखें तो इस ध्वनिकी आवृत्ति १०० होगी। इस प्रकार नली ऊपरके वृत्तोंके सामने उठाते जानेसे ध्वनिकी आवृत्ति बढ़ती जाती है। पर साथ-ही-साथ यह भी मालूम होगा कि मुखनल जैसे-जैसे ऊपर चढ़ता है स्वरकी तारता भी बढ़ती जाती है; सिर्फ इतना ही नहीं। अगर हार्मोनियमकी पटरीसे मिलाकर देखें तो पता चलेगा कि जब पहले वृत्तका स्वर स होता है तो दूसरे वृत्तका स्वर तीसरी पटरीवाला 'ग', तीसरे वृत्तका स्वर पाँचवीं पटरीवाला 'प' और चौथे वृत्तका स्वर ८ वीं पटरीवाला दूसरा स होता है। अर्थात् जैसे-जैसे आवृत्ति बढ़ती है वैसे ही वैसे स्वर भी तार होता चला जाता है।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि सभी आवृत्तिके ध्वनिको कान ग्रहण नहीं कर पाता। जिस ध्वनिकी आवृत्ति १६ से कम या ३८,००० से अधिक हो उसे कान सुन नहीं सकता। कानोंको उनके अस्तित्वका ही बोध नहीं होता। कानोंकी क्षमताकी सीमा १६ से ३८,००० तककी आवृत्ति है। पर जिन नादोंका उपयोग सगीतमें होता है, उनके लिए तो कानोंकी क्षमता और भी सकुचित है। संगीतके स्वर कम-से-कम ४० और ज्यादा-से-ज्यादा ४००० आवृत्तिके होने चाहिये, तभी कान उन्हें सगीतके रूपमें ग्रहण कर सकता है।

३१—**(२) तीव्रताः**—नादका दूसरा लक्षण 'तीव्रता' है। 'तीव्रता' और तारताके अंतरको प्राय लोग नहीं समझते। इसीसे देखा जाता है कि कोई गवैया किसी नये चेलेको जब स्वर ऊँचा करनेको' कहता है तो वह ज़ोरसे बोलने लगता है और जब वह ज़ोरसे आवाज़ निकालनेको कहता है तो वह स्वर ऊँचा कर देता है।

तीव्रतासे मतलब आवाज़के ज़ोरसे है। किसी तारको आहिस्तेसे छेड़ें तो धीमी आवाज़ निकलेगी और यदि उसे ज़ोरसे छेड़ें तो आवाज ज़ोरकी निकलेगी। उसी तरह हार्मोनियमकी किसी पटरीपर अँगुली रखकर भाथी जितने ज़ोरसे चलावेंगे स्वर भी उतने ही ज़ोरका निकलेगा। इन सभी हालतोंमे स्वरकी तारता या आवृत्तिमें कोई अतर नहीं पड़ता। ऐसे ही, एक ही स्वरपर मुँह पूरा खोलकर फेफड़ेसे पूरी हवा निकालनेसे स्वरकी तीव्रता बढ जाती है। स्वर जहाँसे निकलता है उस स्थानसे दूर हटते जायँ तो वह धीमा मालूम होता है पर उसकी तारतामें कोई अंतर नहीं पड़ता।

जैसे तारता नादोत्पादक वस्तुकी आवृत्ति पर निर्भर है वैसे ही तीव्रता उसके कम्प-विस्तार पर निर्भर है। विस्तार जितना ही बड़ा होगा तीव्रता भी उसी हिसाबसे बढेगी। असल बात यह है कि वस्तुका कम्प-विस्तार जितना अधिक होता है, वह वायुमे उतनी ही अधिक सघनता पैदा कर देता है। ऐसी घनी सघनता जब कानोंके पर्देपर पड़ती है तो कानका पर्दा

अधिक दबावका अनुभव करता है। यही ध्वनिकी तीव्रताका अनुभव है। एक सेकेण्डमें जितनी सघनता पर्देपर पड़ती है उसीसे तारताका अनुभव होता है। यही दोनोंका भेद है। सघनता जितनी घनी होती है पर्देपर आघात करनेकी शक्ति भी उसमें उतनी ही अधिक होती है। असलमें यह शक्ति ही तीव्रताका आधार है। यह शक्ति विस्तारके वर्गकी अनुपाती होती है। अर्थात् अगर विस्तार दूना बढ़ जाय तो शक्ति चौगुनी हो जायगी। ध्वनिकी इस शक्तिका प्रत्यक्ष अनुभव वहाँ होता है जहाँ कोई भारी बम फूटता है या किसी विस्फोटकके गोदाममें आग लग जाती है। विस्फोटकी आवाज इतनी तेज़ होती है कि यह बीसों कोसतक सुनाई पड़ती और आस-पासके मकानोंके तो काँचके जँगले तक चूर-चूर हो जाते हैं।

किसी काँपते हुए वस्तुसे ध्वनि-तरंग मंडलाकार होकर चारो ओर फैलता है। वस्तुसे दूरी बढनेपर मंडल बड़ा होता चला जाता है। इसलिए वायुको जो शक्ति वस्तुके कम्पनसे मिलती है वह बड़े-से-बड़े क्षेत्रपर फैलता जाता है। नतीजा यह होता है कि किसी एक दिशामें दूर हटनेपर तरंगकी शक्ति कम होती जाती है। इसका नियम ऐसा है कि दूरी दूनी हो जानेपर तरंगका विस्तार आधा रह जाता है और इसलिए शक्ति चौथाई रह जाती है पर यदि तरंग मंडलाकार न फैलकर एक ही दिशामें सीधे चले तो शक्तिका ह्रास बहुत ही कम होगा। इसीसे किसी नलीमें ध्वनि चले तो वह बहुत दूरतक सुनाई देती है। इसी नियमपर डाक्टरोंका स्टेथस्कोप (आकरणन) बना हुआ है। जलके ऊपरी तलके कुछ नीचे ध्वनि बहुत दूरतक चल सकती है क्योंकि जलके भीतरका ध्वनि-तरंग ऊपरके तलसे बाहर नहीं जा सकता, इसलिए आधे मंडलमें ही फैलता है।

जहाँ बराबर विस्तार और बराबर आवृत्तिकी दो वस्तुएँ पास-पास काँपती हों वहाँ वायु-मण्डलमें कहीं-न-कहीं दोनोंके तरंग एक-दूसरेपर अवश्य पड़ेंगे। अगर दोनोंकी उभार एक-दूसरेपर पड़ी तो उस स्थानपर विस्तार दूना हो जायगा (अनु० २०) अर्थात् शक्ति चौगुनी हो जायगी। यहाँ

यह प्रश्न उठता है कि दोनों वस्तुओंकी शक्ति मिलकर सिर्फ दूनी होनी चाहिए। बाकी शक्ति कहाँसे पैदा हुई? बात यह है कि वायुमें जहाँ एक स्थानपर एक तरंगकी उभार दूसरेकी उभारपर पड़ती है वहाँ दूसरे स्थानपर एककी खाल दूसरेकी उभारपर पड़ती है। इसलिए इस दूसरे स्थानपर विस्तार शून्य हो जाता है अर्थात् शक्ति विलीन हो जाती है। ऐसे स्थानों पर कान रखनेसे ये नीरव मालूम होंगे। इस प्रकार दोनों वस्तुओंके चारों ओरके सारे मंडलकी शक्ति जोड़ी जाय तो वह दूनी ही निकलेगी।

जैसे तारताके लिए कानकी क्षमताकी एक सीमा होती है वैसे ही तीव्रताके लिए भी एक सीमा होती है। पर यह सीमा उतनी निश्चित नहीं होती। तीव्रताका माप भी उतना सरल नहीं है जितना तारताका। फिर भी वैज्ञानिकोंने इसकी जाँच की है और आज भी कर रहे हैं। तीव्रताके मापके लिए भी बिजलीके अनेक उपकरण बने हैं। यह बताया जा चुका है कि कानके पर्दे पर सघनताके दबावसे ही तीव्रताका बोध होता है। इसलिए इस दबावसे ही तीव्रताका अनुमान लगाया जा सकता है। कम-से-कम तीव्रता, जिससे नीचे शब्द सुनाई नहीं देता, तारतापर भी निर्भर है। साधारणत स्वर अधिक तार हो तो थोड़ी तीव्रता होनेपर भी कान इसे सुन लेता है। अनेक प्रयोगोंसे यह अनुमान लगाया गया है कि यदि २७३४ आवृत्तिका स्वर हो तो कानके पर्देपर कमसे कम वायुमण्डलके दबावके १० अरबवाँ हिस्सेके बराबर सघनताका दबाव होनेसे कान इस स्वरको सुन लेता है। इससे कम दबाव होनेसे कान काम नहीं करता। वायुमण्डलका दबाव एक वर्ग इंचपर लगभग ७ सेरके बराबर पडता है। इससे यह पता चलता है कि कानकी ग्राहकता कितनी सूक्ष्म है। कानोंको सुनाई देनेवाली कम-से-कम तीव्रताको 'श्रुति-देहली' कहते हैं। ऊपर दी हुई आवृत्तिसे जितना नीचे उतरेंगे देहलीकी तीव्रता उतनी अधिक बढ जायगी; साथ-ही-साथ ऊपर चढनेसे भी सुननेके लिए स्वरको अधिक तीव्र होनेकी आवश्यकता होगी।

किसी स्वरकी तीव्रता कितनी बढाई जाय कि कान इस अंतरको जान ले, यह स्वरकी पहली तीव्रतापर निर्भर है। साधारणत. किसी स्वरकी तीव्रताको सवाया कर देनेपर कानको इस अतरका बोध हो जाता है। इसके ऊपर तारताका भी कुछ असर अवश्य होता है।

जिस तरह 'श्रुति-देहली' नीचेकी सीमा है जिससे नीचे ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती, उसी तरह तीव्रताकी एक ऊपरली सीमा भी है जिससे ऊपर तीव्रता बढनेसे कानोको पीड़ा होने लगती है। इसे 'पीड़ा-देहली' कहते हैं। सगीतमे व्यवहार किये जानेवाले सारे स्वरोंके लिए यह देहली लगभग बराबर तीव्रताकी होती है। १/१० छटाँक प्रतिवर्ग इञ्चका दबाव इसके मानका अंदाज है। इससे अधिक दबाव बढ़नेपर स्वरसे कानोको पीड़ा होती है और कभी-कभी हानि भी होती है। ऊपर दी हुई तीव्रतापर, जहाॅ कानकी ग्राहकता सबसे अधिक सूक्ष्म है, 'पीड़ा-देहली' का दबाव और भी कम होता है।

३२—(३) गुणः—नादका तीसरा लक्षण गुण है। हम देखते हैं कि एक आदमीकी आवाज़ दूसरेकी आवाज़से नहीं मिलती। एक यन्त्रका स्वर दूसरे यन्त्रके स्वरसे नहीं मिलता। कोई बाजा बजता हो तो अनुभवी आदमी सिर्फ आवाज़ सुनकर कह सकता है कि सितार बज रहा है या हार्मोनियम। जहाॅ दस तरहके बाजे बज रहे हों, वहाँ सभीके स्वरोंकी तारता एक होनेपर भी तबलेकी आवाज़, सितारके स्वर, इसराजके स्वर आदि सब अलग-अलग पहचाने जा सकते हैं। यहाँतक कि आदमीको भी प्राय हम उसके स्वरसे पहचान लेते हैं। स्वरकी इस विशेषताको ही स्वरका गुण कहते हैं। जब यह कहा जाता है कि तबला हार्मोनियमकी किसी पटरीसे मिल गया तो उसका मतलब इतना ही होता है कि दोनोंकी आवृत्ति या तारता एक हो गई, यह नहीं कि दोनोंकी अलग-अलग पहचान मिट गई। तारता एक हो जानेपर भी दोनोंके गुण अलग-अलग रहते हैं।

तारता और तीव्रताकी तरह ही गुणका भी भौतिक आधार है। यह केवल मानसिक अनुभूति नहीं है। पाँचवें अध्यायमें कम्पन-वक्र और ध्वनि-वक्रकी चर्चा की गई है। इसी वक्रके रूपसे नादके गुणका सम्बन्ध है। अगर सितारके तारका और तबलेके पर्देका कम्पन-वक्र या ध्वनि-वक्र ठीक-ठीक उतारें तो मालूम होगा कि जैसे इन दोनोंके नादके गुण अलग-अलग हैं वैसे ही इन दोनोंके वक्रके रूप भी दो तरहके हैं। यह बताया जा चुका है कि वक्रका आकार मौलिक आवृत्तिके साथ अनेक आवर्त्तकोंके मिलनेसे बदलता है। ये आवर्त्तक मौलिक आवृत्तिके क्रमश पूर्णाङ्क गुने होते हैं। जैसे अगर मौलिक आवृत्ति १०० हो तो इसके आवर्त्तक २००, ३००, ४०० आदि होंगे। जब वक्रके आकारके भेद आवर्त्तकोंके कारण पैदा होते हैं तो यह भी निश्चित है कि स्वरोंके गुण भी इसी कारणसे बदलते हैं। आवर्त्तक किस प्रकार गुण-भेद पैदा करते हैं, यह सकेत रूपमें नीचे दिया जाता है —

(१) दो स्वरोंके आवर्त्तकोंकी सख्या भिन्न-भिन्न हो; जैसे एकमें १००, २००, ३००, ४०० और दूसरेमें १००, २००, ३००,४००, ५०० आवर्त्तक हों।

(२) आवर्त्तकोंकी सख्या बराबर होनेपर भी भिन्न-भिन्न आवर्त्तक हों; जैसे एकमें १००, २००, ३००, ४०० और दूसरेमे १००, ३००, ५००, ७०० आवर्त्तक हों।

(३) आवर्त्तकोंकी तीव्रतामे अतर हो; जैसे दोनों स्वरोंमें १००, २००, ३००, ४०० आदि बराबर सख्यामें रहनेपर भी अगर एकमें २००, ४०० आदिकी तीव्रता थोड़ी है तो दोनों स्वरके गुण भिन्न-भिन्न होंगे। साधारण दशामें आवर्त्तकोंकी तीव्रता एक क्रमसे घटती है। यह आवर्त्तकोंके क्रमाकपर निर्भर है। अगर मौलिकसे लेकर आगे सभी आवर्त्तकोंपर १,२,३,४ आदि अक बैठा दें तो यह आवर्त्तकोंका क्रमाक होगा। जैसे —

१	२	३	४	५
१००	२००	३००	४००	५००

यहाँ जैसे-जैसे क्रमाक बढ़ता है वैसे-वैसे आवर्त्तकोंकी तीव्रता मौलिककी अपेक्षा कम होती जाती है। अगर मौलिककी तीव्रताको १ मानें तो २ क्रमाकवाले आवर्त्तककी तीव्रता $\frac{१}{२^२}$ अर्थात् मौलिककी तीव्रताका $\frac{१}{४}$ अश होगी। इसी प्रकार ३रे आवर्त्तककी $\frac{१}{३^२}=\frac{१}{९}$ और ४ थे की तीव्रता $\frac{१}{४^२}=\frac{१}{१६}$ होगी।

पर यह नियम सभी जगह लागू नहीं होता। जैसे, अगर किसी बाजेके तारको अँगुलियोंसे या मिजराफसे छेड़े तो आवर्त्तककी तीव्रता ऊपर दिये हुए नियमसे घटेगी और छठे-सातवें आवर्त्तकके बाद नहींके बराबर रह जायगी। पर यदि तारपर किसी नोकीली और भारी चीज़से मारें तो उसमें बहुतसे आवर्त्तक निकलेंगे जो सब-के-सब बराबर तीव्रताके होंगे। आवर्त्तकोंकी तीव्रताके इस भेदके कारण ही इन दो तरीकोंसे उत्पन्न तारके स्वर दो भिन्न-भिन्न गुणोंके हो जायँगे। एककी आवाज़ चिकनी और कोमल होगी, दूसरेकी आवाज़ खनकती हुई होगी।

जिस तरह तारको कम्पित करनेके तरीक़ेसे स्वरका गुण बदल जाता है उसी तरह छेड़नेके स्थानको बदल देनेसे भी तारके स्वरका गुण बदल जाता है। थोमस यंगका यह सिद्धान्त है कि छेड़नेके स्थानपर जिन आवर्त्तकोंकी ग्रन्थि (अनु० २२) पड़ती है वे आवर्त्तक स्वरसे ग़ायब हो जाते हैं। आ० १५ से यह स्पष्ट है कि २ रे आवर्त्तककी ग्रन्थि तारके बीचोबीच पड़ती है। ४,६,८ आवर्त्तककी ग्रन्थि भी वहीं पड़ेगी। इसलिए यदि तारको बीचमें छेड़े तो २रा, ४था, ६ठाँ, ८वाँ आदि आवर्त्तक ग़ायब हो जायँगे और स्वरमें १ला, ३रा, ५वाँ, ७वाँ आदि आवर्त्तक रह जायँगे। इसी प्रकार यदि तारको एक तिहाई दूरीपर छेड़े तो ३, ६, ९, आदि आवर्त्तक ग़ायब हो जायँगे। इन आवर्त्तकोंकी कमीके कारण स्वरका गुण बदल जायगा।

यंत्रके ऊपर दिये हुए नियमका उपयोग करके कृत्रिम उपायसे भी जिन आवर्त्तकोंको चाहें गायब कर सकते या उनकी तीव्रता घटा-बढा सकते हैं।

३३—पिछले अध्यायमें यह बताया गया है कि सामकालिक ध्वनिमें आवर्त्तक उपस्वर और वैकालिक ध्वनिमें अनावर्त्तक उपस्वर होते हैं। इसी भेदके कारण इन दोनों प्रकारकी ध्वनियोंके दो रूप हो जाते हैं। अनुच्छेद १२में दी हुई वस्तुओंकी आवृत्ति पर ध्यान देनेसे पता चलता है कि नाद पैदा करनेवाले इन सारे वस्तुओंको दो भागोंमें बाँटा जा सकता है। पहले भागमें तार, वायु (बाँसुरी) आदि हैं। इनके आंशिकोंका पारस्परिक सम्बन्ध १ : २ : ३ : ४ जैसा है। इसलिए इनमें आवर्त्तक उपस्वर होते हैं। दूसरे भागमें डंडा, चदरा, पर्दा आदि। इनके आंशिकोंका पारस्परिक सम्बन्ध साधारणतः $१^२ : २^२ : ३^२ : ४^२$ जैसा है। इसलिए इनमें अनावर्त्तक उपस्वर होते हैं। चदरे या पर्देमें तो उपस्वरोंका सम्बन्ध और भी जटिल हो जाता है, क्योंकि लंबाई-चौड़ाई दोनों ओर विस्तार होनेसे इनका कम्पन पेचीला होता है। इनके उपस्वरोंका पता इनके सतह पर ग्रन्थि-रेखा मालूम करके लगाया जा सकता है। चदरे या पर्दे पर बालूके महीन कण फैलाकर इनमें कम्पन पैदा करनेसे बालूके कण ग्रन्थि-रेखा पर जमा हो जायँगे क्योंकि यह निःस्पन्द स्थान है। भिन्न-भिन्न स्थानोंको अँगुलीसे दबाकर ग्रन्थि-रेखाओंके भिन्न-भिन्न चित्र बनाये जा सकते हैं। इन्हें 'क्लेडनीके चित्र' कहते हैं। ग्रन्थि-रेखाओंको देखकर ही चदरे या पर्देके भिन्न-भिन्न उपस्वरोंका पता लग सकता है। उदाहरणके लिए चमड़ेके पर्देके उपस्वरोंका सम्बन्ध बताया जाता है। गोल पर्देके मौलिक स्वरकी आवृत्ति अगर १ मानी जाय तो इसके अन्य उपस्वरोंकी आवृत्ति क्रमशः १·६, २·१, २·३, २·७, २·९, ३·२, ३·५, ३·६, ३·७, ४, ४·२ होगी। ये सारे उपस्वर अनावर्त्तक हैं। घोषने यह दिखाया है कि हिन्दुस्तानी तबलेकी ध्वनिमें प्रायः आवर्त्तक उपस्वर होते हैं। इसका कारण है खरनका

प्रयोग जिसकी मोटाई बीचमें सबसे अधिक होती है और किनारेकी ओर नियमित रूपसे घटती जाती है।

आवर्त्तक उपस्वरोंके कारण ही पूर्व, पश्चिम सभी देशोंमे सगीतके लिए मुख्यत तार और वायुके बाजे ही उपयुक्त समझे जाते हैं। अनावर्त्तक उपस्वरवाले बाजे तो सिर्फ़ ताल देनेके कामके होते हैं। संगीतके प्राचीन शास्त्रकारोंने भी दो प्रकारके वाद्यको सगीतके लिए ग्रहण किया है; एक तन्त्री-वाद्य और दूसरा सुषिर-वाद्य, जैसे बाँसुरी आदि। हिन्दुस्तानी गायकोंने तो तालके लिए भी अनावर्त्तक उपस्वरोंको सहन नहीं किया और तबले और मृदंग बनाकर आवर्त्तक उपस्वरोंका मेल तैयार करनेकी कोशिश की है।

सगीतज्ञ आवर्त्तक उपस्वरको ही पसन्द करते हैं—इससे यह ज़रूर मालूम होता है कि जिस स्वरमें आवर्त्तक उपस्वरोंका मिश्रण होता है वह कोमल और प्रिय होता है और जिसमे अनावर्त्तक उपस्वरोंका मिश्रण रहता वह कटु होता है। यह एक साधारण बात है कि आवर्त्तक उगस्वरोंवाला सामकालिक नाद 'राव'से बहुत भिन्न होता है और वैकालिक नाद और रावमे कुछ-न-कुछ समता अवश्य होती है। इसलिए अनावर्त्तक उपस्वरो-वाले वैकालिक नादमे रावका कुछ अंश होना ज़रूरी है और इसलिए उनका अप्रिय होना भी स्वाभाविक ही है।

३४—स्वर प्राय मिश्र ही होते हैं चाहे वे प्रिय हो या अप्रिय। अगर मिश्रणके कारण स्वरोंमे कटुता आ सकती है तो इसी कारणसे इसमे मधुरता और प्रसन्नता भी आती है। सरल स्वर, जिसमे मौलिक ही मौलिक हो, उपस्वरोंका नाम न रहे, जैसे ही तो विरल है वैसे ही नीरस हैं। द्विभुजका स्वर प्राय सरल होता है क्योंकि उसका उपस्वर मौलिकका ६.२ गुना होता है और इसके बहुत ऊँचा होनेसे तीव्रता बहुत कम होती है। फिर भी द्विभुज अगर भारी न हो और जोरसे ठोका जाय तो इसके उपस्वर प्रकट हो जाते हैं। अन्य द्विभुजमें बिजलीकी हिरती-फिरती

(ए० सी०) धारासे कम्पन प्रेरित करके सरल स्वर पैदा करते हैं। पर ये स्वर वैज्ञानिकोंके ही कामके हैं, जो इन्हें स्वरोंकी तुलनाके लिए प्रमाण-स्वरूप मानते हैं। गायकोंको ऐसे उदासीन और बेरंग स्वरोंकी चाह नहीं रहती।

पर विलक्षण बात यह है कि कान सरल स्वरोंका ही अनुभव करता है। जिस समय मिश्र स्वर कानपर पड़ता है उस समय कान उसके सारे रूपका, जैसा कि उसके वक्रसे मालूम होता है, अनुभव नहीं करता। कान उन सारे सरल स्वरोंको अलग-अलग पकड़ता है जिनसे मिश्र स्वर बना हुआ है और इनकी आपेक्षिक शक्ति या तीव्रताका अनुभव करता है। इसी-लिए किसी ध्वनि-वक्रको सिर्फ देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें कौन-कौन आवर्त्तक मौजूद हैं। क्योंकि इनका अलग-अलग अस्तित्व नहीं रह जाता। पर मिश्र स्वरको सुनकर सच्चा मँजा हुआ कान यह बता सकता है कि उसमें कौन-कौनसे उपस्वर हैं। इसकी विवेचना करके ओमने एक नियम निर्धारित किया है जो ध्वनि-शास्त्रमें 'ओमका नियम' के नामसे प्रसिद्ध है। इस नियमका साराश यह है—कान मिश्र स्वरके बनानेवाले सरल स्वरोंकी आपेक्षिक शक्तिका ही अनुभव करता है, इन स्वरोंकी कलाके पारस्परिक अन्तरका असर उसपर नहीं होता।' अनु० २२ में बताया गया है कि कलाके अंतरसे भी वक्रका रूप बदल जाता है। अब अगर मिश्र स्वरका जैसा वक्र है ठीक वैसा ही असर कानपर पड़े तो कलाके इस अतरको भी कान पकड़ सकेगा। पर ऐसा नहीं होता। इससे यह मानना पड़ता है कि कानपर सरल उपस्वरोंके विस्तारका ही असर होता है।

३५—गुणके ऊपर दिये हुए भौतिक सिद्धान्तकी पुष्टिके लिए वैज्ञानिकोंने अनेक आवर्त्तक सरल स्वरोंके मेलसे मिश्र स्वर तैयार किये हैं जिनका गुण आवर्त्तकोंके भेदसे बदलता जाता है। यह बताया जा चुका है कि विद्युत्-प्रेरित द्विभुज सरल स्वर पैदा करता है। इसी तरहका बाजा हैमोन्डका बिजलीका ओर्गेन है। ऐसे बाजोंसे एक सरल स्वरके साथ दूसरा

सरल स्वर मिलाया जा सकता है। ऐसे बहुतसे विद्युत्-प्रेरित द्विभुज लें जिनकी आवृत्तियोका पारस्परिक अनुपात १ : २ . ३ . ४ ……आदि हो, अर्थात् पहले द्विभुजके और सब आवर्त्तक हों। अब पहले द्विभुजके स्वरमे, इसके साथ-साथ अन्य द्विभुजोंको बजाकर, जिन आवर्त्तकोंको चाहे, मिला सकते हैं।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न आवर्त्तकोंको मिलाकर देखा गया है कि मिश्र स्वरका गुण बदलता जाता है। पहले आवर्त्तकके साथ दूसरेको मिलानेसे स्वर अधिक स्पष्ट और प्रसन्न हो जाता है। इसके साथ तीसरा आवर्त्तक मिलानेसे स्वर कुछ गम्भीर और सानुनासिक हो जाता है। चौथेसे सिर्फ़ प्रसन्नता बढ़ जाती है पर पाँचवाँ आवर्त्तक दूसरा ही गुण पैदा कर देता है—जैसा चोंगेके स्वरका होता है। छठाँ सानुनासिकताको और बढ़ा देता है। सातवें आवर्त्तकसे आगे, ८,१०,१२ आदि तो पहले गुणोंको ही बढ़ाते हैं पर ६,११,१३ आदि स्वरको कर्णकटु बना देते हैं; इसमें धातुकी तरह खनक आ जाती है।

मिलरने अपने ऑर्गन पाइपसे वर्णमालाके स्वर-वर्ण आ, ई, ओ आदि तैयार किये हैं। कुछ पाइपोके संयोगसे 'पापा' 'मामा' आदि भी निकाला है।

इन प्रयोगोंसे यह स्पष्ट है कि स्वरके गुणके विश्लेषणका आधार सच्चा है। सिर्फ इतना ही नहीं! यदि वैज्ञानिक रीतिका उपयोग किया जाय तो अनेक बाजोंका स्वर, इष्ट आवर्त्तकोंके मेलसे या अनिष्ट आवर्त्तकोंको दूर करके, मधुर और प्रिय बनाया जा सकता है।

---

७. प्रेरित कम्पन और अनुनाद

३६—किसी तार या द्विभुजको एक बार छेड़कर छोड़ दें तो वह एक ख़ास आवृत्तिके साथ काँपने लगेगा। यह उसकी सहज आवृत्ति होगी। आप-से-आप जब उसमें कम्पन होगा तो वह सदा इसी आवृत्तिका होगा। इसे 'मुक्त कम्पन' कहते हैं। किन्तु यदि एक ही बार न छेड़ा जाय बल्कि बार-बार बराबर अन्तरपर बल लगता रहे तो थोड़ी देरमें यह दीख पड़ेगा कि तार या द्विभुजका मुक्त कम्पन दब गया है और अब उसके कम्पनकी आवृत्ति वही है जो बलकी आवृत्ति है। इस आगन्तुक कम्पनको, जो तार या द्विभुजका स्वाभाविक कम्पन नहीं है, 'प्रेरित कम्पन' कहते हैं।

इस बातकी पुष्टिके लिए एक साधारण प्रयोग सक्षेपमें आगे दिया जाता है।

आ० १९ में द एक द्विभुजका रेखा-चित्र है और व विद्युत्-चुम्बक है। यह विद्युत्-चुम्बक कच्चे लोहेपर ताँबेका तार लपेटकर बनाया गया है। तारमें बिजलीकी धारा चलते ही कच्चा लोहा चुम्बक बन जाता है और द्विभुजकी इस्पातकी भुजाओंको अपनी ओर खींच लेता है। किन्तु व में सीधी धारा नहीं चलाई जाती, जिसकी दिशा सदा एक ही रहे। ऐसा होनेसे द्विभुजकी भुजाएँ सदा लोहेकी ओर खिंचीं रहेंगी। इसमें हिरती-फिरती धारा (ए० सी०) चलाई जाती है, जिसकी दिशा बार-बार बदलती रहती है। इससे ऐसा होता है कि अगर एक दिशाकी धारासे भुजा खिंचती है तो धारा की दिशा बदलते ही भुजा छूटकर भागती है। अगर

आकृति १९

१ सेकेण्डमें धाराकी दिशा १०० बार बदलती हो तो द्विभुजकी भुजाएँ एक सेकेण्डमें १०० बार विद्युत्-चुम्बककी ओर खिंचेंगी और दूर भागेंगी।
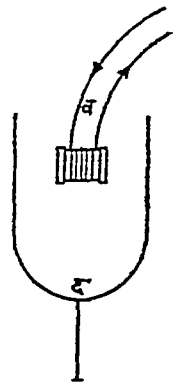
इस प्रकार द्विभुजमें कम्पन होने लगेगा; और इस कम्पनकी आवृत्ति १०० होगी जो ए० सी० की है। यह कम्पन द्विभुजका मुक्त कम्पन नहीं है, यह कम्पन ए० सी० की प्रेरणासे और उसीके अनुरूप पैदा हुआ है। यह भी निश्चित है कि अगर ए० सी० की आवृत्ति बदलकर १५० कर दी जाय तो द्विभुजमें १५० आवृत्तिका कम्पन पैदा हो जायगा।

मान लिया जाय कि द्विभुजकी आवृत्ति २५६ प्रति सेकेण्ड है। अगर विद्युत्-चुम्बकमें १५० आवृत्तिकी ए० सी० चलाई जाय तो थोड़ी देरतक द्विभुजका मुक्त कम्पन (२५६) प्रस्फुटित होनेकी कोशिश करेगा। पर यह बाहरसे कोई सहायता न पानेसे धीरे-धीरे दब जायगा और द्विभुजमें १५० आवृत्तिका प्रेरित कम्पन होने लगेगा। इस कम्पनका स्वर स्पष्ट सुनाई देगा जिसकी तारता द्विभुजकी स्वाभाविक तारतासे बहुत कम होगी। धाराकी आवृत्ति बढ़ाकर २०० कर दी जाय तो द्विभुजकी आवृत्ति भी २०० हो जायगी। इस प्रकार धाराकी आवृत्ति क्रमश बढ़ाते जानेसे द्विभुजकी आवृत्ति बढती जाती है और स्वर अधिक-से-अधिक तार होता जाता है। जब धाराकी आवृत्ति द्विभुजकी आवृत्तिके बराबर २५६ हो जाती है तो द्विभुजमें बहुत ही ज़ोरका कम्पन होने लगता है और बहुत ही तीव्र स्वर निकलता है। धाराकी आवृत्ति और बढनेसे तारता तो बढ़ती जाती है पर तीव्रता फिर घटने लगती है।

इस प्रयोगसे दो बातें निकलतीं हैं। एक तो यह कि द्विभुजमें किसी भी आवृत्तिका कम्पन प्रेरित किया जा सकता है और हर हालतमें प्रेरित कम्पनकी आवृत्ति वही होगी जो प्रेरक बलकी है। दूसरी यह कि जब प्रेरक बलकी आवृत्ति द्विभुजके मुक्त कम्पनकी आवृत्तिके बराबर हो जाती है तो द्विभुजका कम्प-विस्तार बहुत बढ़ जाता है और इससे निकला हुआ स्वर सबसे अधिक तीव्र होता है। ये बातें सभी वस्तुओंमें लागू हैं।

३७—इस दूसरी अवस्थाके कम्पनको, जब मुक्त कम्पन और प्रेरित कम्पनकी आवृत्ति एक हो जाती है, 'अनुनाद' या 'गूँज' कहते हैं। यह

गूँज, प्रेरक बल थोड़ा होनेपर भी, बहुत तीव्र होती है। यह कैसे होता है यह एक साधारण दृष्टान्तसे समझा जा सकता है। मान लो कि एक भारी झूलेको हम चलाना चाहते हैं। यों उसे पूरे विस्तारतक हिलानेमें काफी बल लगाना होगा। अगर हम थोड़े बलसे उसे हिलाना चाहें तो उसमें एक रस्सी बाँधकर उसे एक बार खींचेंगे। झूला थोड़ा हिल जायगा। जिस समय वह एक दोलन पूरा कर लेगा, ठीक उसी समय हम एक बार और उसे खींच लेंगे। अब उसका विस्तार बढ जायगा। इसी प्रकार जब-जब वह दोलन पूरा करता है तब-तब हम उसे खींचते जाते हैं। हम देखेंगे कि हर दोलनमें उसका विस्तार बढता जाता है। इस तरह हम जितना चाहें उतना विस्तार बढ़ा सकते हैं। यहाँ हम देखते हैं कि जितना समय झूलाको एक दोलन या कम्पन पूरा करनेमें लगता है ठीक उतना ही समय एक खिंचाव और दूसरे खिंचावके बीचमें होना चाहिए। मतलब यह कि प्रेरक-बल और कम्पमान वस्तुका मुक्त-काल या मुक्त आवृत्ति एक होनेसे विस्तार बहुत अधिक बढाया जा सकता है।

ऊपरकी इन सारी विवेचनाओंका सार यह है कि जब वस्तुकी मुक्त आवृत्ति और प्रेरक बलकी आवृत्तिमें अन्तर रहता है तो वस्तुमें उत्पन्न कम्पनको 'प्रेरित कम्पन' कहते हैं और जब वस्तुकी मुक्त आवृत्ति और प्रेरक बलकी आवृत्ति एक हो जाती है तो वस्तुके कम्पनको 'अनुनाद' या गूँज कहते हैं। पर जहाँ ध्वनिसे ही प्रेरणा होती है वहाँ 'अनुनाद' शब्दका व्यवहार प्राय दोनों ही अर्थोंमें होता है।

प्रेरक बल कई प्रकारके होते हैं। ऊपर बिजलीकी प्रेरणाका प्रयोग बताया गया है। शारीरिक या यान्त्रिक बलकी प्रेरणाका भी दृष्टान्त दिया गया है। पर मुख्य बात यह है कि ध्वनि स्वय दूसरी वस्तुओंमें कम्पनकी प्रेरणा कर सकती है। इसके भी कई तरीके हैं। एक तो नादोत्पादक वस्तुका कम्पन अग-सयोगसे दूसरी वस्तुमें कम्पन पैदा कर सकता है; दूसरे, अगर ध्वनि काफी ज़ोरदार हो जो वायुको पूरी तरह विचलित कर सके,

तो यह स्वयं वायु द्वारा चलकर दूसरी वस्तुओंमे कम्पन प्रेरित कर सकती है। अगर तमूरे या सितारके दो तारोंकी आवृत्ति एक कर दे या सुर मिला दे तो एकको छेड़ते ही दूसरेमें आप-से-आप कम्पन होने लगेगा। यह, दूसरे तारपर काग़ज़का हलका टुकड़ा रखकर प्रत्यक्ष देखा जा सकता है, जो पहले तारको छेड़ते ही काँपने लगेगा या गिर जायगा। इसकी प्रक्रिया बड़ी सीधी है। जब हम पहला तार छेड़ते हैं तो वह तमूरे या सितारकी घोड़ी और लकड़ीमें अपनी आवृत्तिका ही कम्पन पैदा करता है यह प्रेरित कम्पन है। क्योंकि लकड़ीका मुक्त कम्पन साधारणत तारके कम्पनसे भिन्न होता है। अब यह घोड़ी अपने कम्पनके द्वारा दूसरे तारमें गूँज पैदा करती है। क्योंकि इस बार दूसरे तारका मुक्त कम्पन घोड़ीके कम्पन जैसा ही है।

अगर तारका बाजा पास रखा हो जिसके तार ख़ूब चढ़े हुए हो और कोई तीव्र स्वरसे गाता हो तो कभी-कभी जब स्वर ऊँचा और तीव्र होता है तो बाजेमे गूँज उठती है। यहाँ ध्वनिका सीधे वायुके द्वारा असर होता है। गलेके स्वरसे बाजेके किसी तारका स्वर मिलनेसे उसमे अनुनाद पैदा होता है और बाजा गूँजने लगता है। ऐसी सीधी प्रेरणाके लिए स्वर काफी तीव्र होना चाहिए।

इसराज या सरंगीमे बहुतसे ऐसे तार होते हैं जो कभी छेड़े नही जाते। वे अलग-अलग स्वरोमे मिले हुए होते हैं। जब कोई स्वर बजता है तो उसके मेलके तारमें गूँज पैदा होती है। इन तारोंका यही उपयोग है।

३८—अनुनादके सिद्धान्त पर ही हेल्महोज़ने मिश्र स्वरके आंशिकों की पहचानके लिए अनुनादक बनाया। यह धातुका बना कलशके आकार का होता (आ० २०) है। इसमें एक ओर चौड़ा सूराख़ क होता जिसके द्वारा स्वर कलशके भीतर जाता है। दूसरा टोंटीकी तरह बाहर निकला हुआ पतला सूराख़ ख होता है। क के द्वारा भीतर जानेवाले स्वरकी आवृत्ति जब कलशके भीतरकी वायुकी मुक्त आवृत्तिके बराबर हो जाती है

तो कलशके भीतर गूँज पैदा होती है। टोंटी ख को कानमें लगाकर इस गूँजको साफ सुन सकते हैं। हेल्महोजने ऐसे अनेक अनुनादक बनाये जिनकी मुक्त आवृत्तियोंका अनुपात १ २ ३ ४ आदि था। यह बताया जा चुका है कि मिश्र स्वरके आंशिकोंकी आवृत्तियोंका अनुपात प्राय १ २ ३ ४ होता है। अगर मिश्र स्वरके मौलिकसे पहले अनुनादकमे

आकृति २०

गूँज उठती है तो इसके दूसरे आंशिकसे दूसरे अनुनादकमें गूँज उठेगी जिसकी सहज आवृत्ति पहले अनुनादककी आवृत्तिकी दूनी है। इसी तरह तीसरा आंशिक तीसरे अनुनादकमें गूँज पैदा करेगा। मान लो कि दूसरा, चौथा, छठाँ आंशिक स्वरमें नहीं है। ऐसा होनेसे २ रे, ४ थे, छठे अनुनादकमें गूँज न होगी। इस प्रकार अनुनादककी क्रमवद्ध श्रेणीसे मिश्र स्वरका विश्लेषण हो सकता है। इससे आंशिकोंकी तीव्रताका भी अनुमान लगाया जा सकता है। हेल्महोज़के इस प्रयोगने इस बातको भी सिद्ध कर दिया कि किसी मिश्र स्वरके उपस्वर अपना स्वतन्त्र अनुनाद पैदा करते हैं।
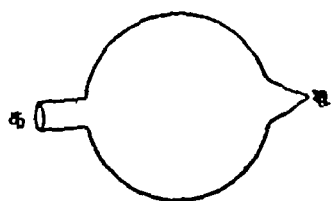
ऐसे अनुनादकका एक तो आयतन बधा होता है जिसे छोटा-बड़ा नहीं किया जा सकता। इससे सभी स्वरोंके साथ इसका उपयोग नहीं हो सकता। जिस स्वरको हम इसके साथ मिला सके उसीका विश्लेषण हो सकता है। दूसरे, आंशिकोंकी तीव्रताका अंदाज़ अनुभवसे ही लगाया जा सकता है। इन त्रुटियोंको दूर करनेके लिए ही, गर्म तारका माइक्रोफोन बनाया गया है। यह अनुनादक, हेल्महोज़के अनुनादक-सरीखा ही होता है। इसमें विशेषता यह होती है कि इसकी आवृत्ति जितना चाहें बदल सकते हैं। ध्वनि सुननेके लिए टोंटी ख इसमें नहीं होती। इसके बदले अनुनादकके गलेके भीतर तार बैठाये होते हैं जो बिजलीकी धारासे गर्म किये जाते हैं। इस तारके साथ एक यन्त्र लगा होता है जिसका काँटा

धाराके परिवर्त्तनको सूचित करता है। अनुनादकके भीतर जब गूँज होती है तब कम्पनके कारण गलेके भीतरकी वायुमे चाल आ जाती है। इससे तार कुछ ठंढा हो जाता और ठंढकके कारण धाराके बदलते ही यन्त्र (-गैल्वेनोमीटर) का काँटा घूमता है। अब अगर किसी आंशिकके कारण अनुनाद पैदा हुआ तो काँटेके घुमावसे ही उस आंशिककी तीव्रताका अनुमान हो जायगा।

अनुनादके सिद्धान्तपर ही स्वर-विश्लेषणके लिए वेगेल और मूरने बिजलीके उपकरण तैयार किये हैं। बिजलीके इस आंशिक-विश्लेपक यन्त्रमें ध्वनि माइक्रोफोन पर पड़ती है। माइक्रोफ़ोनके तारमे, ध्वनिसे उत्पन्न बिजलीकी धारा, ध्वनि-तरंगके अनुरूप ही घटती-बढ़ती है। अर्थात् बिजलीकी धाराका तरंग ठीक वैसा ही होता है जैसा ध्वनिका। माइक्रोफोनकी सर्किटके साथ गुथी हुई वाल्व-सर्किटके द्वारा माइक्रोफोनकी धाराको बढाया जाता है। इस बढी हुई बिजलीकी धाराके तरंगका अनुनादक-सर्किटसे विश्लेषण करते हैं। अनुनादक-सर्किटकी आवृत्ति ८० से ६००० तक छोटे-छोटे अशोंमें बढाई जा सकती है। भिन्न-भिन्न आवर्त्तकोंके साथ जब इस सर्किटमे अनुनाद होता है तो धारा बढती है और एक-के-बाद एक सारे आवर्त्तकोंके चिह्न फोटोग्राफके प्लेटपर अंकित हो जाते हैं। इस विधिसे सारे विश्लेषणमे पाँच मिनटसे भी कम समय लगता है। यह विधि मिलरके फोनोडाइकसे कहीं अधिक सुविधाकी है। इसलिए ध्वनि-विश्लेषणमें अब यही प्रचलित है।

इसी प्रकारका एक दूसरा उपकरण भी है जिसमें सिलीनियम-सेलका उपयोग होता है।

हालमे ब्राउनने ध्वनि-विश्लेपणके लिए प्रकाशकी एक विधि निकाली है। इसमे ध्वनिके फिल्म पर प्रकाश डालकर डिफ्रेक्शन चित्र बनाया जाता है जिसमे सभी आवर्त्तकोंकी रेखाएँ अंकित हो जाती हैं। पर सुविधाकी दृष्टिसे यह विधि उतनी सफल नहीं है जितनी ऊपर बताई हुई विधि।

३६—अनुनाद सभी द्रव्योंमें एक-सा नहीं होता। एक ही बाजेमें तार या पत्ती, वायु और लकड़ीके पर्दोंके अनुनादमें बहुत अन्तर पड़ जाता है। इसलिए बाजोंकी बनावट समझनेके लिए यह जानना आवश्यक है कि भिन्न-भिन्न द्रव्योंके अनुनादमें कैसे अन्तर पड़ता है और द्रव्योंके इस प्रकृति-भेदका क्या उपयोग किया जाता है।

प्रत्येक द्रव्यमें एक आतरिक अवरोध होता है जिसके कारण वह अपने भीतर किसी बाहरी वस्तुकी या अपने ही अंग और अणुओंकी गतिमें बाधा पहुँचाता है। दोलक जब हवामें डोलता है तो हवा उसकी गतिमें रुकावट डालती है और इसीसे दोलक कुछ समय बाद रुक जाता है। अगर दोलक जलमें डोले तो उसकी गति और जल्दी रुक जायगी क्योंकि जलका आतरिक अवरोध वायुसे अधिक है। गाढे तेल, गाढे दूध या ग्लिसरिनमें यह अवरोध और भी अधिक है। यह अवरोध द्रव्योंमें अपने ही अंग-प्रत्यंगकी आपेक्षिक गतिमें भी प्रकट होता है। हम देखते हैं कि कोई द्रव्य ज़मीन पर गिरते ही बह जाता है जैसे जल, और कोई बहनेमें बहुत समय लेता है जैसे अलकतरा। इसका कारण यह है कि अलकतरेके भीतर हर नीचेका तल अपने ऊपरके तलकी गतिमें रुकावट डालता है। यह बात जलमें अलकतरेकी अपेक्षा बहुत कम है।

अब यह समझना आसान है कि यह अवरोध जैसे द्रव्यके भीतर दोलकके कम्पनमें रुकावट डालता है वैसे ही यह द्रव्यके अपने अणुओंके कम्पनमें भी रुकावट डालेगा। इसीलिए किसी वस्तुका अनुनाद उसके अवरोध पर निर्भर है क्योंकि अनुनाद उसके अणुओंके कम्पनसे ही प्रकट होता है।

इस प्रसंगमें दो-तीन मुख्य बातें याद रखने की हैं। हमने देखा है कि जब प्रेरक और प्रेरितकी आवृत्ति एक हो जाती है तो अनुनाद होता है। जिस वस्तुमें अवरोध कम है उसमें इस अनुनादकी तीव्रता अधिक होती है। यहाँतक कि अगर वस्तुका अवरोध शून्य हो तो अनुनादकी तीव्रता अनन्त हो जायगी। यह आदर्श दशा है।

प्रेरित या प्रेरकमेंसे किसी एककी तारता घटा या बढा देनेसे अनुनादकी तीव्रता बहुत कम हो जाती है। दोनो की तारतामें जितना ही अधिक अंतर होगा यह कमी भी उतनी ही अधिक होगी। पर बराबर अंतरके लिए, जिस वस्तुका अवरोध अधिक होगा उसमें अनुनादकी तीव्रताका गिरना उतना ही कम होगा। अवरोध बहुत कम हो तो प्रेरक और प्रेरितकी आवृत्ति एक होनेपर अनुनादकी तीव्रता तो बहुत अधिक होगी पर दोनो की आवृत्तिमें थोड़ा अन्तर पड़ते ही तीव्रता बहुत अधिक गिर जायगी। ऐसे वस्तुके सम्बन्धमें कहेंगे कि इसका अनुनाद बहुत ही तीक्ष्ण है। अर्थात् अवरोध जितना कम होगा अनुनादकी तीक्ष्णता उतनी ही अधिक होगी।

ऊपरके सारे नियम एक काल्पनिक उदाहरणसे साफ हो जायँगे। हम काठका एक तख़्ता लेते हैं जिसके मुक्त कम्पनकी आवृत्ति ५०० है और एक चढ़ा हुआ तार लेते हैं जिसकी आवृत्ति भी ५०० है। काठमें अवरोध अधिक है और तारमें बहुत ही कम। अब अगर ५०० आवृत्तिवाले द्विभुज से काठमें कम्पन पैदा करें तो उसमें तीव्र अनुनाद होगा। वैसे ही इस द्विभुजसे तारमें भी अनुनाद होगा। पर हम देखेंगे कि काठके अनुनादसे तारका अनुनाद बहुत ही अधिक तीव्र है, क्योंकि तारका अवरोध कम है। अगर किसी तरह द्विभुजकी आवृत्ति ५ घटा या बढा दें तो देखेंगे कि तारका अनुनाद अब बहुत ही कम हो गया है। पर काठका अनुनाद करीब-करीब पहले-जैसा ही है।

साराश यह कि जिस वस्तुमें अवरोध अधिक है उसमें अनुनाद तो कम होता हे पर सभी आवृत्तियोंपर कुछ-न-कुछ ज़रूर होता है। पर जिसमें अवरोध कम है उसमें बराबर आवृत्तिपर बहुत अधिक अनुनाद होता है पर आवृत्तिमें थोड़ा अन्तर होते ही यह बंद हो जाता है। इसी-लिए इसराज जैसे बाजेमें बग़लके सभी तार अलग-अलग स्वरमें मिले होते हैं जो अपने स्वरके ही साथ गूँजते हैं। पर काठका पर्दा तो सभी स्वरोंके साथ गूँजता है। हाँ, इतना ज़रूर है कि संयोगवश जब काठकी

आवृत्ति और स्वरकी आवृत्ति एक हो जायगी तो यह गूँज अधिक बढ जायगी। यह अवस्था वेलामे आती है जब वह एकाएक गूँज उठता है। इसे अग्रेजीमे 'उल्फ नोट' कहते हैं जिसका अर्थ है 'भेड़ियेका स्वर'।

४०—आवृत्ति एक होनेपर जब प्रेरकके कम्पनसे प्रेरितमे अनुनाद होता है तब प्रेरित अपने कम्पनके लिए प्रेरकसे ही शक्ति खींचता है। इससे प्रेरक बहुत ही शीघ्र शान्त हो जाता है और प्रेरितमे कम्पन होने लगता है। अब अगर ये दोनों परस्पर सम्बद्ध हों, तो प्रेरितके कम्पनका असर प्रेरकपर होने लगेगा और अगर दोनोंका भार बराबर हो तो प्रेरकमें भी अब उसी तरह अनुनाद होगा जैसा पहले प्रेरितमें हुआ था। अर्थात् जो पहले प्रेरित था वह अब प्रेरक हो गया। इस प्रकार बार-बार एक दूसरेमें शक्तिका आदान-प्रदान होता रहेगा। काठकी एक चौकी पर दो बराबर भार और आवृत्तिवाले द्विभुजको जड दें और उनमेंसे एकको रजन लगी हुई कमानीसे बजा दें, तो दूसरेमें अनुनाद पैदा होगा। हम देखेंगे कि पहला द्विभुज धीरे-धीरे शान्त होता जाता है और दूसरा ज़ोरसे बजने लगता है। फिर इसकी आवाज़ घटने लगती है और इसकी प्रेरणासे पहला द्विभुज बजने लगता है। इस प्रकार एक-के-बाद दूसरा द्विभुज बारबार बजता रहता है। इससे यह सिद्ध होता है कि जहाँ दो कम्पमान वस्तुएँ परस्पर जुटी हुई होती हैं वहाँ एकके कम्पनका प्रभाव दूसरेके कम्पनपर पडता है। इसमें प्रेरित और प्रेरकका भेद नहीं किया जा सकता। इसे दो वस्तुओंका 'अनुयोग' कहते हैं।

जहाँ अलग-अलग आवृत्तिवाली दो वस्तुएँ परस्पर बँधी हों, वहाँ अगर अनुयोग ढीला है तो दोनों अपनी-अपनी स्वतन्त्र आवृत्तिसे कम्पित होंगी और अगर अनुयोग दृढ हो तो दोनोंकी आवृत्ति एक हो जायगी, जो दोनोंके बीचकी आवृत्ति होगी। दृढ अनुयोगके साथ अगर एक वस्तु बहुत ही भारी और अधिक शक्तिवाला हो तो थोडी देरके बाद दूसरी हलकी वस्तु भी इसीकी आवृत्ति ग्रहण कर लेगी। अगर

दूसरीमें भी कुछ शक्ति हो तो वह भारी वस्तुकी आवृत्ति पर भी कुछ न कुछ असर ज़रूर डालेगा और उसे थोड़ा विचलित कर देगा। यह बात बाँसुरी जैसे सुषिर वाद्यमें देखनेमें आती है। फूंककी हवा जब बाँसुरीके मुखकी जिह्वामें लगती है तो उसमें कम्पन होता है जिसकी आवृत्ति वायुके वेगपर निर्भर है। इस कम्पनसे बाँसुरीके भीतरकी वायुमें प्रेरित कम्पन पैदा होता है जिसकी आवृत्ति बाँसुरीके भीतर बंद वायुकी मुखसे लेकर खुले सूराख़ तककी लंबाईपर निर्भर है। इस वायुके स्तम्भकी शक्ति अधिक होनेसे यह फूंककी वायुकी आवृत्तिको दबा देता है और इसीकी आवृत्तिसे बाँसुरी बजती है। इसीलिए इस स्तम्भकी लंबाई घटाने-बढ़ानेसे ही स्वर बदलता है। पर जोरसे फूंककर बाँसुरीकी वायुके कम्पनपर प्रभाव डाला जा सकता है और इस प्रकार स्तम्भकी लंबाई बिना घटाये ही स्वरको थोड़ा ऊँचा किया जा सकता है।

४१—ऊपर दो कम्पमान वस्तुओंके अनुयोगकी चर्चा की गई है जो दो प्रकारका होता है—एक 'शिथिल अनुयोग' दूसरा 'दृढ़ अनुयोग'। वाद्य-यन्त्रोंके सम्बन्धमें इस अनुयोगका बड़ा महत्त्व है। बाजोंमें कई अनुनादक होते हैं;—जैसे, तूंबा, तूंबेके भीतरकी वायु, काठका पर्दा, खोखली डाँड़ी, लोहेका चदरा, काठ या हड्डीकी घोड़ियाँ आदि। इन सभीकी मुक्त आवृत्ति अलग-अलग होती है; अवरोध भी अलग-अलग होता है। इसलिए यह आवश्यक है कि किसी स्वरका इस सारे समुदायपर क्या असर होता है इसकी कुछ धारणा हो। इसके लिए यह देखना ज़रूरी है कि अनुयुक्त अनुनादकोंकी मुक्त आवृत्ति क्या होती है। जब भिन्न-भिन्न आवृत्तिवाले दो अनुनादकोंका शिथिल अनुयोग होता है तो अनुयुक्त अनुनादककी दो मुक्त आवृत्तियाँ होती हैं जो अलग-अलग दोनों अनुनादकोंकी आवृत्तियोंके बराबर होती हैं। 'दृढ़ अनुयोग' होनेसे भी इसकी दो आवृत्तियाँ होती हैं, पर उनमेंसे एक छोटी आवृत्तिवाले अनुनादककी आवृत्तिसे भी छोटी और दूसरी बड़ी आवृत्तिवाले अनुनादककी आवृत्तिसे

भी बड़ी होती है। दोनों अनुनादकोंकी आवृत्ति बराबर होनेपर भी, दृढ़-अनुयुक्त अनुनादककी दो आवृत्तियाँ होती है, जिनमेंसे एक बराबर आवृत्तिसे बड़ी और दूसरी छोटी होती है।

दोसे अधिक अनुनादकोंके अनुयोगकी भी इसी प्रकारकी व्यवस्था होगी।

४२—बाजोंमें काठका पर्दा, तूंबा आदि अनुनादकोंका रहना आवश्यक है क्योंकि इनके बिना आवाज़ ही सुनाई न पड़ेगी। जब हम किसी काँपते हुए द्विभुजको अँगुलियोंसे पकड़कर ऊपर हवामें रखते हैं तो आवाज कुछ भी सुनाई नहीं पड़ती। पर जब उसको मेज़पर खड़ा करते हैं तो तेज़ आवाज़ निकलने लगती है। इसी तरह अगर तार किसी काठके पर्देपर न बैठाया हो तो उसकी आवाज़ भी सुनाई न पड़ेगी। इसका कारण यह है कि द्विभुज या तार स्वयं वायुके बहुत थोड़े कणोंको चालित करता है जो
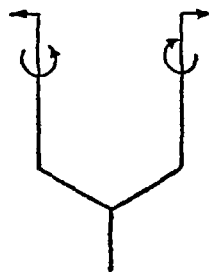
आकृति २१

द्विभुजकी भुजाओंके (आ० २१) या पतले तारके चारों ओर घूमते रहते हैं। जब द्विभुजकी भुजा बाईं ओरके कणोंको दबाती है तो दाहिनी ओर खाली पड़ जाता है, इससे बाईं ओरके कण बडी तेज़ीसे दाहिनी ओरकी खाली जगहको घेर लेते हैं। इस तरह भुजाके कम्पनसे उसके चारों ओरकी वायुके कण बायेंसे दाहिने और दाहिनेसे बायें घूमते रहते हैं। इसलिए भुजाके पासके कणोंका आदोलन तरगके रूपमें आगे नहीं बढ पाता। तरग तो तभी आगे बढ़ सकता है जब वायुके कण चक्कर न काटकर अपने आगेके कणोंको सीधे ठोकर मारें। जब द्विभुजको मेज़पर रखते हैं तो मेज़के तख़्तेमें प्रेरित कम्पन पैदा होता है और वह तख़्ता वायुके काफी लबे-चौडे तलको आदोलित कर देता है। इस आदोलित तलके वायु-कण अपने आगेके कणोंको ही ठोकर मारते हैं क्योंकि चक्कर काटनेकी गुञ्जाइश अब न रही। इस प्रकार जो ध्वनि हम सुनते हैं वह असलमें अनुनादककी ही होती है। इससे यह सिद्ध है कि बाजोंकी बनावटमें अनुनादक बड़े आवश्यक अग हैं।

बाजोंके लिए यह भी आवश्यक है कि उनसे निकलनेवाले सभी स्वरोंको या कुछ चुने हुए स्वरों और उपस्वरोंको उनका अनुनादक बराबर ही पुष्ट करे। पर यदि अनुनादककी मुक्त आवृत्ति नादकसे निकले हुए बीचके किसी एक स्वरपर पड़े तो वह स्वर बहुत ही तीव्र हो उठेगा। इससे बचनेके लिए यह आवश्यक है कि अनुनादककी मुक्त आवृत्ति बाजे या नादकके स्वरके विस्तारके बाहर पड़े। हमने देखा है कि दो अनुनादकोंके अनुयोगसे मुक्त आवृत्ति एक ओर तो नीचे उतर आती है और दूसरी ओर ऊँचे चढ़ जाती है। इससे दोनोंके बीचका अन्तर बढ़ जाता है जिसके बीच बाजेके स्वरोंका सारा क्षेत्र समा सकता है। ऐसा होनेसे बाजेके किसी भी स्वरके साथ अनुयुक्त अनुनादककी मुक्त आवृत्तिका मेल न होगा और सभी स्वरोंको अनुनादकसे लगभग बराबर पुष्टि मिलेगी।

---

८. डोल और परिणामि स्वर

४३—जब दो स्वरोंकी आवृत्तिमें बहुत अधिक अंतर होता है तो ऐसे स्वरोंको साथ-साथ सुननेपर भी कानोंको इनके अलग-अलग अस्तित्वका बोध होता है। जब इनकी आवृत्ति एक हो जाती है तो दोनों स्वर एक-दूसरेसे ऐसे मिल जाते हैं कि इनके अलग-अलग अस्तित्वकी धारणा नहीं होती। पर जब दोनोंकी आवृत्तिमें बहुत थोड़ा अतर रहता है तो दोनों स्वर मिले हुए-से तो मालूम होते हैं पर यह सयुक्त स्वर कभी ज़ोरका जान पड़ता है और कभी धीमा हो जाता है। अर्थात् स्वर उठ-उठकर गिरता हुआ-सा जान पडता है। इस प्रकार तीव्रताके घटने-बढनेसे ऐसा आभास होता है जैसे स्वर हिल रहा हो। इस हिलनेको ही 'डोल' कहते हैं। यदि एक स्वर किसी दूसरे स्वरसे धीरे-धीरे मिलाया जाय तो पहले इस डोलकी गति तीव्र होगी; फिर क्रमश धीमी होती जायगी और अतमें डोल बिल्कुल ग़ायब हो जाएँगे। इस दशामें दोनों स्वर पूरी तरह मिला हुआ समझा जायगा।

दो स्वरोंके मेलसे डोल कैसे पैदा होता है; यह आगे बताया जाता है।

अनु० २०में तरंग-सयोगकी विधि बताई गई है और अनु० ३१में यह बताया गया है कि अगर दो तरग बराबर मान और विस्तारके हों तो उनके सयोगसे एक ऐसा तरंग बनता है जिसका विस्तार दूना और तीव्रता चौगुनी होती है। अब यह विचार करना है कि अगर दो तरगोंकी आवृत्तिमे बहुत ही थोड़ा अंतर हो और विस्तार लगभग बराबर हो तो क्या

परिणाम होगा। आवृत्तिमे थोड़ा अंतर होनेका मतलब है कि तरंगमानमें भी थोड़ा ही अंतर है।
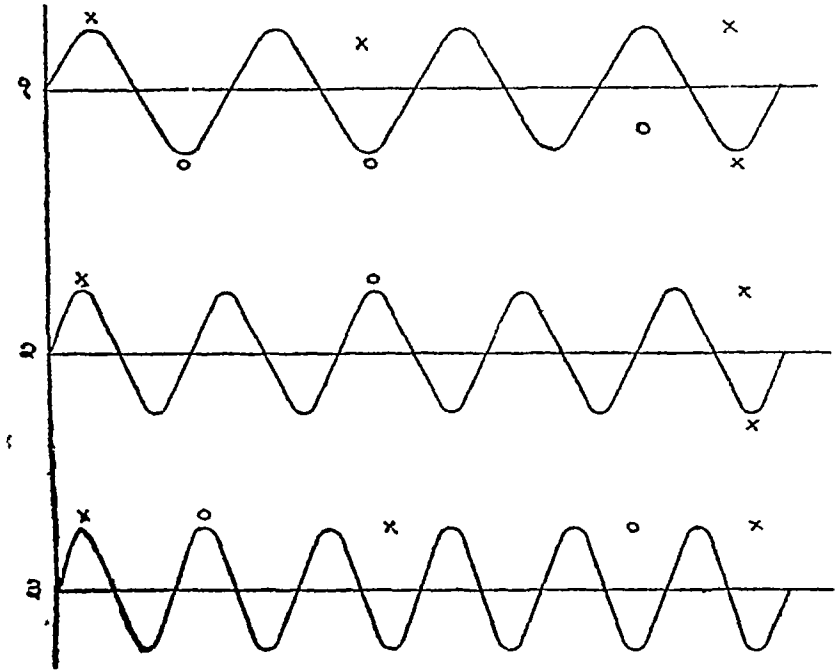
आकृति २२

मान लो कि तीन द्विभुज हैं जिनमें से एककी आवृत्ति ४, दूसरेकी ५ और तीसरेकी ६ प्रतिसेकेण्ड है। यह ठीक है कि इतनी थोड़ी आवृत्तिसे स्वर पैदा नहीं होता। पर यहाँ मोटे तौरसे समस्याको समझनेके लिए ऐसा मान लिया गया है। पहला द्विभुज एक सेकेण्डमे ४ तरंग पैदा करेगा जो आ० २२ (१) में दिखाया गया है। उतनी ही दूरीमे दूसरे द्विभुजके ५ तरंग (२) और तीसरे द्विभुजके ६ तरग (३) आ जायँगे क्योंकि तीनों ही द्विभुजके स्वर वायुमें बराबर ही वेगसे चलते हैं। अब जब पहला और दूसरा द्विभुज साथ-साथ बजते हैं तो दोनोंके ध्वनि-तरंग वायुमे एक-दूसरेपर पड़ते हैं। इन दोनों तरगोंके संयोगका परिणाम तरग (२) को तरंग (१) पर डालनेसे जाना जा सकता है। तरंग (२) को

तरग (१) पर डालनेसे (२) की पहली उभार (१) की पहली उभार पर और (२) की आखिरी खाल (१) की आखिरी खालपर पड़ती है। ये स्थान चीरों (×) से चिह्नित किये गये हैं। पर बीच में ० चिह्नित स्थानपर (२) की उभार (१) की ख़ालपर पड़ती है। इसलिए शुरू और अख़ीरमें तो ध्वनिकी तीव्रता बहुत बढ जायगी और बीचमें प्राय शून्य हो जायगी। इसलिए स्वर एक सेकेण्डमें एक बार धीमा होकर तेज़ हो जायगा। अर्थात् कानोंको एक सेकेण्डमें एक 'डोल' का अनुभव होगा। इसी प्रकार अगर तरंग (३) को तरग (१) पर डालें तो शुरू और आख़ीरमें तो क्रमश उभार उभारपर और खाल खालपर पड़ेगी ही पर बीचमें भी खाल खालपर पड़ेगी। इसके अतिरिक्त बीचके दोनों ओर ० चिह्नित दो स्थानोंपर क्रमश उभार खालपर और खाल उभारपर पड़ेगी। इसलिए ध्वनिकी तीव्रता एक सेकेण्डमें दो बार गिरेगी और दो बार उठेगी। अर्थात् १ सेकेण्डमें दो 'डोल' सुनाई देंगे।

इस दृष्टान्तसे डोलकी उत्पत्तिकी प्रक्रिया समझमे आ जाती है। साथ-ही-साथ यह भी मालूम होता है कि दो स्वरोंकी आवृत्तिमें जितना अंतर होगा एक सेकेण्डमें उतने ही डोल सुन पड़ेंगे।

डोल स्पष्ट सुनाई दे इसके लिए यह आवश्यक है कि दोनों स्वरोंकी तीव्रता लगभग बराबर हो क्योंकि तभी तीव्रता पूरी तरह गिर और उठ सकती है।

यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि डोल कानोंका अनुभवमात्र या विकार नहीं है। यह क्रिया निश्चितरूपसे माध्यममें होती है, इसलिए वास्तविक है। इसकी वास्तविकता यहाँतक सिद्ध है कि अगर दो द्विभुजोंको, जिनकी आवृत्तियोंमें दो-चारका अतर हो, एक चौकीपर बैठाकर बजावें और चौकीपर अंगुली रखें तो वह भी डोलका अनुभव करेगी।

गवैये इस डोलको अच्छी तरह जानते हैं क्योंकि इसे ही पकड़कर वे स्वरोंका पूरी तरह मिलान कर सकते हैं। दो तारोंके स्वरोंको मिलानेमें

जब डोल सुनाई पड़ने लगता है तो समझा जाता है कि दोनों स्वर एक-दूसरेके बहुत निकट आ गये हैं। जब यह डोल धीमा होते-होते ग़ायब हो जाता है तो दोनों स्वर बिलकुल मिल जाते हैं। इस मिलानकी जगहसे किसी एक तारके स्वरको चाहे नीचे खिसकाएँ या ऊपर, दोनों ही हालतोंमे डोल पैदा हो जायँगे। इसलिए डोलको पकड़कर स्वरोंका बड़ा ही सच्चा मिलान होता है।

पर स्वरोंके मिलानका साधन होनेमे ही डोलका मूल्य नहीं है। हेल्महोज़ने डोलके आधारपर ही स्वरोंके संवाद और विवादको समझाया है; इसीलिए यह सगीतकी दृष्टिसे बड़े महत्त्वकी बात हो गई है।

४४—जब दो स्वरोंकी आवृत्तियोंमे अधिक अंतर होता है तो प्रति-सेकेण्ड डोलोंकी गिनती इतनी बढ जाती है कि कान इन्हे नहीं पकड़ पाते। पर अगर दोनों स्वर काफी तीव्र हों तो एक तीसरा स्वर सुनाई पड़ता है जिसकी आवृत्ति दोनों स्वरोंके अंतरके बराबर होती है। जैसे अगर एक स्वरकी आवृत्ति ३०० हो और दूसरेकी २०० तो एक तीसरा स्वर सुनाई पड़ेगा जिसकी आवृत्ति १०० होगी इन्हें 'शैषिक स्वर' कहते हैं। ऐसे स्वरोंका पता पहले डीसोर्जीने और पीछे टार्टिनीने लगाया था। डोलकी तरह ही शैषिक स्वर भी दो स्वरोके अतरपर निर्भर हैं। इसीलिए पहले वैज्ञानिकोंकी यह धारणा थी कि जब डोलकी गिनती बहुत बढ़ जाती है तो वही स्वरका रूप ले लेता है। पर बादको हेल्महोज़ने ऐसे स्वरका भी पता लगाया जिसकी आवृत्ति दोनो स्वरोंके जोड़के बराबर होती है। इसे 'यौगिक स्वर' कहते हैं। जैसे ऊपरके उदाहरणमें यौगिक स्वर ५०० आवृत्तिका होगा। ऐसा स्वर कठिनाईसे सुन पड़ता है। शैषिक और यौगिक इन दोनों ही प्रकारके स्वरोंके लिए 'परिणामि-स्वर' का व्यवहार होता है। जब परिणामि स्वर दोनों ही प्रकारका होता है तो डोल इसका कारण नहीं हो सकता। इसीलिए हेल्महोज़ने एक नये सिद्धान्तसे इन स्वरोंके अस्तित्वको सिद्ध किया। उसने यह बताया कि

जब दो तीव्र स्वर एक साथ माध्यमके अणुओंपर पड़ते हैं तो उनके कम्पनके ढगमे विषमता आ जाती है। इस विषमताको गणितकी कसौटीपर कसकर उसने यह परिणाम निकाला कि इन दोनों स्वरोंके अलावा शैषिक और यौगिक स्वर माध्यममें आप-से-आप पैदा हो जाते हैं। अनुनादकके द्वारा उसने यह भी सिद्ध कर दिया कि ये दोनों ही स्वर ढोलकी तरह ही वास्तविक हैं, कानोंके विकार नहीं।

हेल्महोज़के सिद्धान्तके अनुसार, शैषिक और यौगिक स्वरोंकी उत्पत्तिके लिए स्वरोंका तीव्र होना आवश्यक है। पर वादको यह पता चला कि सामान्य तीव्रतापर भी परिणामि स्वर सुनाई पड़ते हैं। पूरी जाँचपर यह पाया गया कि सामान्य तीव्रतासे उत्पन्न परिणामि स्वर कानोंमें ही पैदा होते हैं; बाहर माध्यममें इनका अस्तित्व नहीं होता। ऐसे परिणामि स्वर स्वसंवेद्य हैं।

वास्तविक और स्वसंवेद्य, इन दोनों ही प्रकारके परिणामि स्वरोंकी व्याख्या वाइज़मानने एक व्यापक कल्पनासे की। उसने यह बताया कि अगर किसी वस्तुका कम्पन, आगे और पीछे, दोनों ही दिशाओंमे, एक-सा न हो, जैसे मान लो कि एक ओर विस्तार अधिक हो और दूसरी ओर कम, तो दोनों ही प्रकारके परिणामि स्वर आप-से-आप पैदा हो जायँगे। उसने चमडेके पर्देके साथ प्रयोग करके भी इस बातको सिद्ध किया। कानके पर्देकी बनावट इसी तरहकी है; क्योंकि इसके एक ओर तो हवा रहती है और दूसरी ओर हड्डियाँ। हालमें वैज्ञानिकोंने यह बताया है कि कानके भीतरी हिस्सोंमे भी इसी प्रकारकी विषम गति होती है। इस विषमताके कारण ही थोड़ी तीव्रतापर भी कान परिणामि स्वरोंको पैदा कर देते हैं। पर वायुके अणुओंके कम्पनमे यह विषमता अधिक तीव्रतापर ही आती है। इसलिए मामूली तीव्रतापर वायुमें परिणामि स्वर नहीं पैदा होते, जैसा कि हेल्महोजने बताया है।

ये परिणामि स्वर केवल मौलिक स्वरोंसे ही नहीं बल्कि उनके आंशिकोंसे भी पैदा होते हैं। जैसे ऊपरके उदाहरणमें पहले स्वरका दूसरा आंशिक

४०० और दूसरे स्वरका दूसरा आशिक ६००, २०० आवृत्तिका शैषिक और १००० आवृत्तिका यौगिक स्वर पैदा करेंगे। ये दोनों क्रमशः मौलिकोंके शैषिक और यौगिकके दूसरे आशिक हैं। इसमें सदेह नहीं कि आशिकोंसे उत्पन्न परिणामि स्वर सदा कानोंमे ही पैदा होंगे।

शैषिक स्वरोंका उपयोग टेलीफोन, लाउडस्पीकर, सीटी आदि अनेक उपकरणोंके तैयार करनेमें किया जाता है। पर संगीतमे इनका विशेष महत्त्व है क्योंकि स्वरोंके सवाद-विवादपर इनका वहुत बड़ा असर पड़ता है।

---

६. स्वर और ग्राम

४५—हम देखते हैं कि सगीतमे नाद एक ही स्थानपर स्थिर नहीं रहता, वह कभी ऊपर चढता है कभी नीचे उतरता है। यहाँ तक कि मामूली बोलचालमे भी शब्दकी तारतामें कुछ-न-कुछ अन्तर होता ही है। पर मुख्य बात यह है कि नादका इस प्रकार ऊपर चढना या नीचे उतरना लगातार नहीं होता। वह एक-एक सीढी ऊपर चढता और एक-एक सीढ़ी नीचे उतरता है। अगर नादका पहला स्थान २४० आवृत्तिका है तो दूसरा स्थान २७० आवृत्तिका होगा। इन दोनोंके बीच नादके अनन्त विराम हो सकते हैं। पर सगीत या मामूली बोलचालमे भी इन अनगिनत विरामोंका उपयोग नहीं होता। नादके इस चढाव-उतारमे वह जिन-जिन सीढियों या तारताओंपर ठहरता है उन्हें ही सगीतके स्वर कहते हैं।

संगीतकी पुरानी और नई सभी पद्धतियोंमे नादके दो सीमान्त विराम माने गये हैं। यह सभी जगह एक-से हैं। निचली सीमाका जो स्वर माना जाता है, ऊपरली सीमाका स्वर उससे दूनी आवृत्तिका होता है। अगर निचली सीमाका स्वर २०० आवृत्तिका हो तो ऊपरली सीमाका स्वर ४०० आवृत्तिका होगा, और अगर निचली सीमा ३०० की हो तो ऊपरली सीमा ६०० की होगी। अर्थात् ऊपरली सीमाका स्वर नीचली सीमाके स्वरका आवर्त्तक होता है (अनु० २५) इसीलिए सभी पद्धतियोंमें इन दोनों सीमान्त स्वरोंको एक ही नाम देते हैं। हिन्दुस्तानी पद्धतिमे पहले स्वरको 'षड्ज' या सकेत रूपमे 'स' और दूसरे स्वरको तार षड्ज या 'स' कहते हैं। पहले स्वरको साधारण बोलचालकी भाषामे 'सुर' कहते हैं। चाहे जिस किसी आवृत्तिकी ध्वनिपर 'सुर' बाँधे, उसे षड्ज कहेंगे। फिर इसी 'सुर' से और-और स्वरोंकी ऊँचाई-निचाई नापी जायगी; जिस तरह समतल जमीनसे ऊँचाई-निचाई नापकर कहते हैं कि यह मकान इतना ऊँचा है या यह कूआँ इतना गहरा है। शास्त्रीय परिभाषामें 'सुर' को 'स्वरित' कहा जायगा।

दूसरे सभी स्वरोंका मान इस स्वरितपर ही निर्भर है। अन्य स्वरोंकी तारता चाहे न बदले पर 'स्वरित' बदलनेसे उनकी प्रकृति ही बदल जाती है।

स और सं-के बीच प्राय: सभी जगह स्वरोंकी छ: सीढ़ियाँ क़ायम की गई हैं। बीचके इन छ: स्वरोंके साथ पहला स्वर मिला देनेसे सात स्वरोंका एक सप्तक होता है। पश्चिमी पद्धतिमें इन सातोंके साथ आख़िरका स्वर मिलाकर एक अष्टक मानते हैं। सप्तक या अष्टकके सात स्वरोंके भिन्न-भिन्न नाम दिये गये हैं। हिन्दुस्तानी पद्धतिमें इन्हें क्रमश: षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, निषाद और तार षड्ज या संकेतरूपसे स, र, ग, म, प, ध, न, सं कहते हैं। विलायती पद्धतिमें इन्हें C, D, E, F, G, A, B, c कहते हैं; या सोल्फा-पद्धतिमें do, ri, mi, fa, sol, la, si, do (डो, री, मी, फा, सोल्, ला, सी, डो) कहते हैं।

ऊपर कहे हुए सीमा-बन्धनसे यह न समझना चाहिए कि मनुष्यके स्वरका विस्तार इसी एक सप्तकतक सीमित है या संगीतका संचार इस सीमाके भीतर ही होता है। मनुष्यका स्वर और संगीत इन दोनो सीमाओंको लाँघकर एक ओर बहुत ऊँचेतक और दूसरी ओर बहुत नीचेतक जाता है। इसीलिए हिन्दुस्तानी पद्धतिमें मन्द्र, मध्य और तार नामक तीन सप्तक माने गये हैं। भिन्न-भिन्न सप्तकोंमें एक ही स्वर दोहराये जाते हैं। संकेतमें तीनो सप्तकोंका विस्तार नीचे दिया जाता है।
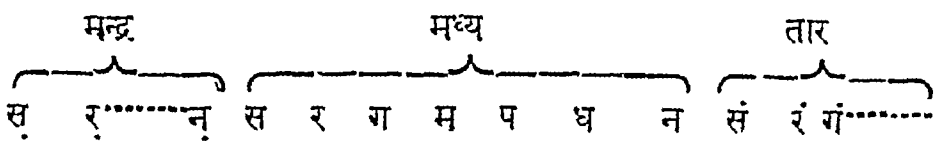
तार सप्तकके सं, रं, गं आदिकी आवृत्ति क्रमश: मध्य सप्तकके स, र, ग आदिकी आवृत्तिसे दूनी होती है। इसी प्रकार मन्द्र सप्तकके स़, ऱ, ग़ आदिकी आवृत्ति क्रमश: मध्य सप्तकके स, र, ग आदिकी आवृत्तिसे आधी होती है। मनुष्यके गलेका ख़याल करके ही ये तीन सप्तक माने गये हैं; नहीं तो तारसे भी ऊपर अतितार और मन्द्रसे भी नीचे अतिमन्द्र

सप्तक हो सकते हैं। विलायती बाजा, प्यानोमें सात-सात सप्तकके स्वर बैठाये होते हैं।

४६—स्वरोंके समूहको ग्राम कहते हैं। ग्राममें सातसे अधिक स्वर भी रह सकते हैं। ग्रामका भेद, असलमें, स्वरोंकी स्थितिपर निर्भर है। अगर एक ग्रामका 'र' किसी दूसरे ग्रामके 'र' से कुछ नीचे उतरा हुआ हो तो दोनों दो ग्राम समझे जायेंगे। उत्तर भारतमें प्रचलित हिन्दुस्तानी ग्राम और पश्चिमके आधुनिक ग्रामका मिलान करनेसे यह भेद समझमें आ जायगा। नीचे प्रत्येक स्वरकी आवृत्तिके साथ दोनों ग्राम दिये गये हैं।

	स	र	ग	म	प	ध	न	स
हिन्दुस्तानी ग्राम—	२४०,	२७०,	३००,	३२०,	३६०,	४०५,	४५०,	४८०
विलायती ग्राम—	२४०,	२७०,	३००,	३२०,	३६०,	४००,	४५०,	४८०

इन दो ग्रामोंमें, ध को छोड़, बाकी स्वर एक-से ही हैं। ध हिन्दुस्तानी ग्राममे कुछ चढा हुआ है। इसीसे ये दोनों ग्राम दो समझे जाते हैं।

भारतवर्षमें, बहुत ही प्राचीन-कालमें, शायद तीन ग्रामोंका प्रचार था। ये 'षड्ज ग्राम', 'मध्यम ग्राम' और 'गान्धार ग्राम' के नामसे पुकारे जाते थे। भरत-कालमें ग—ग्रामका लोप हो गया और दो ग्राम रह गये। बादको म—ग्राम भी गायब हो गया और केवल षड्ज ग्रामका प्रचार रहा। इन तीनों ग्रामोंका भेद भी स्वरोंकी आपेक्षिक तारताके कारण ही था। ऊपर जो हिन्दुस्तानी ग्राम दिया गया है, वह भातखण्डे आदि संगीत-शास्त्रियों द्वारा स्वीकृत ग्राम है।

४७—यह देखा जाता है कि एक ही गाना चाहे कोई नीचे स्वरसे शुरू करे या ऊँचे स्वरसे, उसके रूपमें कोई भेद नहीं पड़ता। यहाँतक कि जब एक लड़का और युवक साथ साथ गाते हैं तो दोनोंके स्वरोंकी तारतामें अन्तर रहता है पर दोनोंके गलेसे निकले हुए गानेके स्वरोंका पारस्परिक सम्बन्ध एक-सा ही रहता है। इससे यह जान पड़ता है कि ग्रामके स्वरोंका सम्बन्ध सीधे आवृत्तिपर निर्भर नहीं है। मध्य सप्तकमें स-के बाद र कहें

तो वह ठीक वैसा ही मालूम होगा जैसा तार-सप्तकमें सं-के बाद रं कहने पर। इसलिए स और र-के बीचका अवकाश चाहे जैसे भी नापा जाय, दोनों ही सप्तकोंमें बराबर आना चाहिये। अब अगर मध्य सप्तकमें स की आवृत्ति २४० है और र की २७०, तो तार सप्तकमें स की आवृत्ति ४८० होगी और रं-की ५४०; क्योंकि तार सप्तकके सभी स्वरोंकी आवृत्तियाँ मध्य सप्तकके स्वरोंकी आवृत्तियोंसे दूनी हो जाती हैं। यहाँ अगर आवृत्तिके अंतरसे इन दोनो स्वरोंके अवकाशको नापें तो मध्य सप्तकका अवकाश ३० और तार सप्तकका ६० हो जाता है। इसलिए इस तरीक़ेसे अवकाशका कोई निश्चित माप नहीं हो सकता। पर अगर स और र की आवृत्तियोंका अनुपात लें तो एक निश्चित माप निकल आता है। मध्य सप्तकमें यह अनुपात $\frac{२७०}{२४०}=\frac{९}{८}$ है। तार सप्तकमें भी यह अनुपात $\frac{५४०}{४८०}=\frac{९}{८}$ ही होगा। इसलिए दो स्वरोंके बीचका अवकाश इनकी आवृत्तियोंके अनुपातसे, अर्थात् ऊँचे स्वरकी आवृत्तिको नीचे स्वरकी आवृत्तिसे भाग देकर निकाला जाता है। स्वरोंके बीचके अवकाशको 'अंतराल' कहते हैं। ऊपरके हिसाबसे अगर स की आवृत्ति २०० हो तो र की आवृत्ति २२५ होगी। क्योंकि दोनोंका अंतराल $\frac{९}{८}$ ही होना चाहिये। कोई गवैया चाहे किसी भी आवृत्तिपर स बाँधे उसके र की आवृत्ति स की आवृत्तिकी $\frac{९}{८}$ गुनी होनी चाहिए। क्योंकि स और र का यह अंतराल सदा बराबर होना चाहिये। इसमें थोड़ा भी अंतर होनेसे गवैया बेसुरा समझा जायगा।

ऊपरके हिसाबसे मध्य स और तार सं का अंतराल २ होता है। यह एक सप्तकका अंतराल है जो सभी जगह, सभी ग्रामोंमें इतना ही होता है। ऊपर स्वरोंकी आवृत्तियाँ दी गई हैं। इनसे हिसाब लगाकर सप्तकके सभी स्वरो का स से अंतराल निकाला जा सकता है। नीचे दोनों ग्रामोंके लिए स से भिन्न-भिन्न स्वरोंके अंतराल दिये गये हैं—

	स	र	ग	म	प	ध	न	स
हिन्दुस्तानी ग्राम—	१	$\frac{९}{८}$	$\frac{५}{४}$	$\frac{४}{३}$	$\frac{३}{२}$	$\frac{२७}{१६}$	$\frac{१५}{८}$	२
विलायती ग्राम—	१	$\frac{९}{८}$	$\frac{५}{४}$	$\frac{४}{३}$	$\frac{३}{२}$	$\frac{५}{३}$	$\frac{१५}{८}$	२

ये सारे अन्तराल स से निकाले गये हैं जिसे 'स्वरित' कहते हैं और इसे ही ग्रामका आधार मानते हैं। जैसे, स और ग का अन्तराल ग की आवृत्ति ३०० में स की आवृत्ति २४० का भाग देकर $\frac{३००}{२४०}=\frac{५}{४}$ निकलता है। इसी रीतिसे र और ग का अतराल भी निकाला जा सकता है; जैसे, ग की आवृत्ति ३०० में र की आवृत्ति २७० का भाग देनेसे $\frac{३००}{२७०}=\frac{१०}{९}$ निकलता है जो र और ग के वीचका अतराल है। इस प्रकार सभी स्वरोंके पारस्परिक अतराल निकाले जा सकते हैं। नीचे पास-पासके हर दो स्वरोंके अतराल दिये जाते हैं—

	स–र	र–ग	ग–म	म–प	प–ध	ध–न	न–स
हिन्दुस्तानी ग्राम—	$\frac{९}{८}$	$\frac{१०}{९}$	$\frac{१६}{१५}$	$\frac{९}{८}$	$\frac{९}{८}$	$\frac{१०}{९}$	$\frac{१६}{१५}$
विलायती ग्राम—	$\frac{९}{८}$	$\frac{१०}{९}$	$\frac{१६}{१५}$	$\frac{९}{८}$	$\frac{१०}{९}$	$\frac{९}{८}$	$\frac{१६}{१५}$

इस सारिणीको देखनेसे पता चलता है कि दोनों ही पद्धतियोंके ग्राम तीन प्रकारके अंतरालोंसे बने हैं—पहला $\frac{९}{८}$, दूसरा $\frac{१०}{९}$ और तीसरा $\frac{१६}{१५}$। इनमें पहला सबसे बडा और तीसरा सबसे छोटा है। इसीलिए पहलेको 'गुरु स्वर' दूसरेको 'लघु स्वर' और तीसरेको 'अर्ध स्वर' कहते हैं। यहाँ 'अर्ध-स्वर' का यह अर्थ नहीं कि वह गुरु या लघुका ठीक आधा है। अर्ध-विशेषण सिर्फ उसकी छोटाईको वताता है। प्राचीन पद्धतिमें भी भरतके मतानुसार तीन प्रकारके स्वर माने गये हैं—एक चतुश्रुतिक; दूसरा त्रिश्रुतिक और तीसरा द्विश्रुतिक। ये क्रमश गुरु, लघु और अर्ध स्वरोंके ही पर्याय हैं।

ऊपरकी सारिणीपर ध्यान देनेसे यह भी पता चलेगा कि हिन्दुस्तानी और विलायती ग्रामोंका भेद केवल स्वरके क्रममे है। जहाँ हिन्दुस्तानी पद्धतिमे ध गुरु स्वर और न लघु स्वर है वहाँ विलायती पद्धतिमें ध लघु स्वर और न गुरु स्वर है।

यहाँ यह वता देना आवश्यक है कि 'स्वर' शब्दका व्यवहार दो अर्थोंमे होता है। एक तो विशेष आवृत्ति या तारताके नादको स्वर

कहते हैं; दूसरे, ऐसे दो नादोंके अंतरालको भी स्वर कहते हैं। जब इन्हें गुरु या लघु स्वर कहते हैं तो हमारा मतलब गुरु और लघु अंतरालसे ही होता है। प्राचीन भारतीय पद्धतिमें तो स्वरका व्यवहार अंतरालके ही अर्थमें होता था।

४८—जैसे अंतरालके मापमें विशेषता है वैसे ही अंतरालोंके जोड़-घटाव में भी विशेषता है। जब दो अंतरालोंको जोड़ना होता है तो उन्हें एक-दूसरेसे गुना करते हैं और जब किसी बड़े अंतरालसे किसी छोटे अंतरालको घटाना होता है तो बड़ेमें छोटेका भाग देते हैं। यह बात उदाहरणसे स्पष्ट हो जायगी। यह बताया जा चुका है र-ग अंतराल $\frac{१०}{९}$ है और ग-म अंतराल $\frac{१६}{१५}$ है। अब र-ग में ग-म जोड़नेसे र-म अंतराल निकल आना चाहिये। पर यह $\frac{१०}{९}$ और $\frac{१६}{१५}$ को जोड़कर नहीं बल्कि दोनोंको गुना करके निकलेगा। इस हिसाबसे र-म अंतराल $\frac{१०}{९} \times \frac{१६}{१५} = \frac{३२}{२७}$ हुआ। अब पहली सारिणीसे र और म की आवृत्ति लेकर अंतराल निकालो। र की आवृत्ति २७० और म की ३२० है। इस हिसाबसे र-म का अंतराल $\frac{३२०}{२७०} = \frac{३२}{२७}$ हुआ, जो र-ग और ग-म अंतरालको गुना करनेपर निकला था। इस र-म अंतरालमें म-प अंतराल और जोड़ो। म-प अंतराल $\frac{९}{८}$ है इसलिए र-प अंतराल $\frac{३२}{२७} \times \frac{९}{८} = \frac{४}{३}$ हुआ। प की आवृत्ति ३६० और र की २७० है। इसलिए इस हिसाबसे भी र-प अंतराल $\frac{३६०}{२७०} = \frac{४}{३}$ ही होगा। एक सप्तक के सभी अन्तरालोंको जोड़नेसे स और सं का अंतराल निकल आना चाहिए, जो २ है। तीसरी सारिणीके सभी अंतरालोंको गुना करनेसे भी २ ही निकलता है। इन उदाहरणोंसे यह सिद्ध होता है कि अन्तरालोंको जोड़ना हो तो उन्हें गुना करना चाहिये। वैसे ही, स-ग अन्तरालसे स-र अंतराल घटानेसे र-ग अंतराल निकलना चाहिए जो $\frac{१०}{९}$ है। स-ग अंतराल $\frac{५}{४}$ है और स-र $\frac{९}{८}$। यहाँ $\frac{५}{४}$ में $\frac{९}{८}$ का भाग देनेसे इष्ट अंतराल $\frac{१०}{९}$ निकल आता है।

४९—अब अंतराल नापनेकी दो विधियाँ और बताई जाती हैं। ऊपरकी विधिमें दो गड़बड़ बातें हैं। एक तो यह कि अंतरालोंको जोड़ने-घटानेमें इन्हें

गुना-भाग करना होता है। दूसरी यह कि भिन्नवाली सख्यासे अतरालकी छोटाई-बड़ाईका पता सख्याको देखते ही नहीं लगता। यहाँ तक कि $\frac{९}{८}$ बड़ा है या $\frac{१०}{९}$ यह भी तत्काल बताना कठिन है। पर गणितमें एक विधि बताई गई है जिसमे गुना करना होता है तो घातोंको जोड़कर गुणनफल निकालते हैं। इसे लॉगरिद्म् कहते हैं। इस विधिमें गुनाकी क्रियाके बदले जोड़की क्रिया करनी होती है। यह अतरालके जोड़ने-घटानेके लिए बड़ी उपयुक्त विधि है।

लॉगरिद्म् यहाँ समझाया नहीं जा सकता। पर इसके प्रयोगकी विधि बताई जाती है जो उसके सिद्धान्तको बिना समझे भी बर्ती जा सकती है। बाज़ारमे लॉगकी एक सारिणी मिलती है जिसमें प्रत्येक अकका लॉग दिया होता है। अब अगर स-ग अतराल निकालना है, जो ऊपरके हिसाबसे $\frac{५}{४}$ है, तो सारिणीसे $\frac{५}{४}$ का लॉग ले लो। यह ५ के लॉगमें ४ का लॉग घटानेसे निकलेगा। जहाँ भी भिन्नका लॉग निकालना होता है वहाँ अशके लॉगमे-से हरका लॉग घटाया जाता है। इस प्रकार भिन्न अतरालका लॉग निकाल कर उसमें १००० का गुना कर देनेसे अतरालका नया माप निकल आता है। इसे एक फ्रासीसी वैज्ञानिकके नामपर 'सेवर्ट' कहते हैं। अगर सब अंतराल सेवर्टमे ही नापे गये हों तो दो अतरालोंको जोड़नेके लिए इन्हें अब गुना नहीं करना पड़ता, सीधे जोड़ना होता है।

भिन्नके पैमानेपर एक अष्टकका अतराल $\frac{२}{१}$ अर्थात् २ है। लॉगकी सारिणीमें २ का लॉग ·३०१० मिलेगा। इसे १००० से गुना करनेपर सेवर्टके पैमानेमें एक सप्तकका अतराल ३०१ सेवर्ट निकलता है। दूसरे अतराल भी लॉगकी सारिणीकी सहायतासे बड़ी आसानीसे निकाले जा सकते हैं। नीचे मुख्य अतरालोंके माप दिये जाते हैं।

पूरे सप्तकका अन्तराल (२)	३०१	सेवर्ट
गुरु स्वर ($\frac{९}{८}$)	५१·१	,,
लघु स्वर ($\frac{१०}{९}$)	४५·८	,,
अर्ध स्वर ($\frac{१६}{१५}$)	२८	,,

इस मापमें स्वरोंकी बड़ाई-छोटाई साफ़ मालूम होती है। यह भी प्रकट होता है कि अर्ध स्वर गुरु और लघु, दोनों स्वरोंके आधेसे बड़ा है। इस विधिसे अगर स-ग अंतराल निकालना हो तो वह स-र गुरु स्वर और र-ग लघु स्वर, इन दोनोंको जोड़नेसे निकलेगा। अर्थात् स-ग अंतराल ५१·१+४५·८=९६·९ सेवर्ट होगा।

एलिसका सेंटका माप सेवर्टके मापसे कुछ भिन्न है। यह खास तौरसे १२ सम स्वरोंवाले साधारण ग्रामके लिए उपयुक्त है (अनु० ६८)। जहाँ भिन्न अंतरालका लॉग लेकर उसे १००० से गुना करनेपर सेवर्ट निकलता है, वहाँ भिन्न अंतरालके लॉगमे २ के लॉगसे भाग देकर उसे १२०० से गुना करनेपर एलिसका सेंट निकलता है। पूरे सप्तकका भिन्न अंतराल २ है। इसका लॉग ·३०१० हुआ। इसमे २ का लॉग ·३०१० से भाग देनेपर १ हुआ। इसमें १२०० का गुना करनेसे १२०० सेंट निकला। अर्थात् एलिसकी विधिसे पूरे सप्तकका अंतराल १२०० सेंट होता है। इसी तरह गुरु स्वरका भी अन्तराल निकाला जा सकता है। लॉगकी सारिणीसे पता चलेगा ९/८ का लॉग ·०५११ है। इसमे लॉग २ अर्थात् ·३०१० का भाग देकर १२०० से गुना करनेपर २०३·७ सेंट निकलता है। इस मापमें नीचे मुख्य अंतराल दिये जाते हैं।

सप्तक	१२००	सेंट
गुरु स्वर	२०३·७	,,
लघु स्वर	१८२·६	,,
अर्ध स्वर	१११·६	,,

इसका जोड़-घटाव भी सेवर्टकी तरह ही सीधा होता है।

सेवर्टके मापमे $\frac{१२}{३·०१}$ या ३·९८७ का गुना करनेसे सेंटका माप निकल आता है। अर्थात् सेंटका माप सेवर्टसे लगभग चौगुना होता है।

साधारण ग्रामके १२ बराबर स्वर होते हैं, जिसका व्यवहार हार्मोनियम, प्यानो आदिमें होता है। सेवर्टके हिसाबसे इस ग्रामके प्रत्येक स्वरका मान ३०१/१२ अर्थात् लगभग २५ सेवर्ट होगा। एलिसके हिसाबसे प्रत्येक स्वरका मान पूरा १०० सेंट होगा।

५०—नीचे हिन्दुस्तानी और विलायती शुद्ध ग्रामकी सारिणियाँ दी जाती हैं जिनमें अन्तरालके तीनों माप तुलनाके लिए अगल-बगल दर्ज किये गये हैं।

हिन्दुस्तानी शुद्ध ग्राम— सारिणी ३

स्वर	अतराल (भिन्न)		अतराल (सेवर्ट)		अतराल (सेंट)	
	स से	पारस्परिक	स से	पारस्परिक	स से	पारस्परिक
स	१		०		०	
		९/८		५१·१		२०४
र	९/८		५१·१		२०४	
		१०/९		४५·८		१८२
ग	५/४		९६·९		३८६	
		१६/१५		२८·१		११२
म	४/३		१२५·०		४९८	
		९/८		५१·१		२०४
प	३/२		१७६·१		७०२	
		९/८		५१·१		२०४
ध	२७/१६		२२७·२		९०६	
		१०/९		४५·८		१८२
न	१५/८		२७३·०		१०८८	
		१६/१५		२८·०		११२
स	२		३०१·०		१२००	

विलायती शुद्ध ग्राम— सारिणी ४

स्वर	अंतराल (भिन्न)		अंतराल (सेवर्ट)		अंतराल (सेंट)	
	स से	पारस्परिक	स से	पारस्परिक	स से	पारस्परिक
स	१		०		०	
		९/८		५१·१		२०४
र	९/८		५१·१		२०४	
		१०/९		४५·८		१८२
ग	५/४		९६·९		३८६	
		१६/१५		२८·१		११२
म	४/३		१२५·०		४९८	
		९/८		५१·१		२०४
प	३/२		१७६·१		७०२	
		१०/९		४५·८		१८२
ध	५/३		२२१·९		८८४	
		९/८		५१·१		२०४
न	१५/८		२७३·०		१०८८	
		१६/१५		२८·०		११२
सं	२		३०१·०		१२००	

१०. विकृत स्वर और साधारण-ग्राम

५१—ऊपर दिये हुए हिन्दुस्तानी और विलायती ग्रामके स्वरोंको शुद्ध स्वर कहते हैं। इन स्वरोंकी तारताको थोड़ा घटा या बढ़ाकर इन्हें विकृत किया जा सकता है। जब तारता घटाई जाती है तो ऐसे विकृत स्वरको 'कोमल' कहते हैं; और जब तारता बढ़ाई जाती है तो इन्हें 'तीव्र' कहते हैं। भातखण्डेकी हिन्दुस्तानी पद्धतिमें स्वरके नीचे एक पड़ी रेखा खींचकर 'कोमल' को और स्वरके सिरपर एक खड़ी रेखा खींचकर तीव्रको प्रकट करते हैं। जैसे कोमल गान्धारका सकेत ग और तीव्र मध्यमका सकेत मं है। पर इस पुस्तकमें कोमलको हलंतसे और तीव्रको स्वर सकेतके ऊपर दाहिनी ओर झुकती हुई रेखा खींचकर चिह्नित करेंगे; जैसे ग् और र्म।

विलायती पद्धतिमे ऊपर दिये शुद्ध स्वरोंवाले ग्रामके अलावा एक और ग्रामका प्रचार है जिसमें कोमल गान्धार (ग्) का प्रयोग होता है। इस ग्रामका अतराल नीचे दिया जाता है —

इन दोनों ग्रामोंमें गुरु स्वरों और लघु स्वरोंकी गिनती बराबर ही है। सिर्फ उनके क्रममें अतर है। इन दोनोंका भेद असलमे शुद्ध गाधार और कोमल गाधारके कारण है, जिन्हें विलायती पद्धतिमें लघु गाधार और गुरु

गाधार कहते हैं। इसीलिए पहले ग्रामको 'गुरु ग्राम' और दूसरेको 'लघु ग्राम' कहा जाता है।

लघु ग्रामका एक और भेद है जिसमें कोमल गाधारके अतिरिक्त कोमल धैवत और कोमल निषादका भी व्यवहार होता है। इसका अंतराल इस प्रकार है—

स		र		ग्		म		प		ध्		न्		सं
१		९/८		६/५		४/३		३/२		८/५		९/५		२
	९/८		१६/१५		१०/९		९/८		१६/१५		९/८		१०/९	

कभी-कभी न् ९/५ के बदले न् १६/९ का भी प्रयोग होता है जो पहलेसे कुछ उतरा हुआ है। इसके पारस्परिक अंतराल ये हैं—

ध्		न्		सं
८/५		१६/९		२
	१०/९		९/८	

इस दूसरे प्रकारके लघु ग्रामका उपयोग स्वरोंके उतारके समय ही अर्थात् अवरोहीमें ही होता है। आरोही (चढ़ाव) में केवल ग् वाले लघु ग्रामका व्यवहार होता है। जैसे—स र ग् म प ध न सं। स न् ध् प म ग् र स।

कभी-कभी अवरोहीमें र ९/८ के बदले कोमल ऋषभ र् १६/१५ भी काममें लाया जाता है।

इस तरह, विलायती पद्धतिमें गुरु ग्रामके सात स्वरोंके अलावा चार कोमल स्वरोंका प्रयोग होता है, जो लघु ग्रामके लिए आवश्यक हैं। दोनों ग्रामोंके स्वर मिलकर ११ हुए।

पर हिन्दुस्तानी पद्धतिमें एक ही ग्राम माना जाता है जिसमें १२ स्वर होते हैं—७ शुद्ध और ५ विकृत। विकृत स्वरोंमें ४ कोमल होते हैं

और १ तीव्र होता है। जैसे, र्, ग्, ध्, न् कोमल हैं और मं तीव्र है।

मध्य युगके श्रीनिवास आदि शास्त्रकारोंने इन बारहो स्वरोंकी तारता तारकी लंबाईसे निर्धारित की है।

उस हिसाबसे इस पद्धतिके र, ग्, म, प, न्, तो इन्हीं नामोंके विलायती स्वरोंसे मिलते हैं पर र्, ग, मं, ध्, ध, न नहीं मिलते। आधुनिक शास्त्रकारोंने, मध्ययुगीय और विलायती दोनों पद्धतियोंमे मिलनेवाले पाँच स्वरोंके अलावा, ध प्राचीन पद्धतिसे और र्, ग, मं, ध्, न विलायती पद्धतिसे ले लिये हैं।" ग, न और ध के अतराल शुद्ध हिन्दुस्तानी ग्राममें बताये जा चुके हैं। यहाँ ५ विकृत स्वरोंके अतराल अलग करके दिये जाते हैं—

स	र्	ग्	मं	ध्	न्
१	१६/१५	६/५	४५/३२	८/५	९/५

इनमें से मं विलायती पद्धतिमें कभी-कभी काममे आता है।' इस पद्धतिके रागोंमे इसका स्थान नहीं है। पर हिन्दुस्तानी पद्धतिमे मं को महत्त्वका स्थान दिया गया है।

५२—ये विकृत स्वर, शुद्ध स्वरोंको एक अर्धस्वर चढाकर या उतारकर बनाये गये हैं। जैसे—

स—→र्,	र—→ग्,	मं←—प,	प—→ध्,	ध—→न्
१ १६/१५	९/८ ६/५	४५/३२ ३/२	३/२ ८/५	२७/१६ ९/५
१६/१५	१६/१५	१६/१५	१६/१५	१६/१५

इस प्रकार विकृत स्वर बनानेमें किसी नये अंतरालकी आवश्यकता नहीं होती; क्योंकि शुद्ध ग्रामके ग-मके अन्तरालसे, जो अर्ध-स्वर है, सभी परिचित हैं। पर हरेक शुद्ध स्वरको भिन्न-भिन्न अन्तरालोंमे घटा-बढाकर

एक स्वरके अनेक विकृत रूप बनाये जा सकते हैं। ऐसे तीन अंतरालोंका विवरण नीचे दिया जाता है:—

१. पूरक अर्ध स्वरः—

गुरु स्वर—अर्ध स्वर = ९/८ × १५/१६ = १३५/१२८ = २३.१ सेवर्ट।

२. लघु-अर्ध स्वरः—

लघु स्वर—अर्ध स्वर = १०/९ × १५/१६ = २५/२४ = १७.७ सेवर्ट।

३. कोमाः—

गुरु स्वर—लघु स्वर = ९/८ × ९/१० = ८१/८० = ५.४ सेवर्ट।

उदाहरणः—

म' शुद्ध म से एक पूरक अर्ध स्वर ऊँचा है;

क्योंकि, म'—म = ४५/३२ × ३/४ = १३५/१२८।

शुद्ध ग कोमल ग् से एक लघु-अर्ध स्वर ऊँचा है;

क्योंकि ग—ग् = ५/४ × ५/६ = २५/२४।

हिन्दुस्तानी शुद्ध ध विलायती शुद्ध ध से एक कोमा ऊँचा है; क्योंकि

$ध_{ह} — ध_{व}$ = २७/१६ × ३/५ = ८१/८०।

इन अंतरालोंके प्रयोगसे नये विकृत स्वर भी बन सकते हैं। जैसे, न् ९/५ को एक कोमा उतार देनेसे एक नया अतिकोमल न् बनता है। इसका अंतराल ९/५ × ८०/८१ = १६/९ है, जिसकी चर्चा ऊपर आ चुकी है।

निम्नलिखित सारिणीमें हिन्दुस्तानी पद्धतिके १२ स्वरोंका अंतराल दिया जाता है, जिनमें पहले दी हुई सारिणीके सात शुद्ध-स्वर भी ले लिये गये हैं।

सारिणी ५

स्वर	अंतराल (भिन्न)		अंतराल (सेवर्ट)		अंतराल (सेंट)	
	'स' से	पारस्परिक	'स' से	पारस्परिक	'स' से	पारस्परिक
स	१		०		०	
		१६/१५		२८ ०		११२
र्	१६/१५		२८ ०		११२	
		१३५/१२८		२३.१		९२
र	९/८		५१.१		२०४	
		१६/१५		२८ ०		११२
ग्	६/५		७९.१		३१६	
		२५/२४		१७ ८		७०
ग	५/४		९६ ९		३८६	
		१६/१५		२८ १		११२
म	४/३		१२५.०		४९८	
		१३५/१२८		२३ १		९२
म'	४५/३२		१४८ १		५९०	
		१६/१५		२८.०		११२
प	३/२		१७६ १		७०२	
		१६/१५		२८.०		११२
ध्	८/५		२०४.१		८१४	
		१३५/१२८		२३ १		९२
ध	२७/१६		२२७ २		९०६	
		१६/१५		२८ ०		११२
न्	९/५		२५५ २		१०१८	
		२५/२४		१७.८		७०
न	१५/८		२७३.०		१०८८	
		१६/१५		२८.०		११२
सं	२		३०१.०		१२००	

दाक्षिणात्य या कर्णाटकी पद्धतिमें भी यही बारह अंतराल होते हैं; पर उसमें स्वरोंके नाममें कुछ भेद होता है और शुद्ध स्वर भी दूसरे ही माने जाते हैं। जैसे.—

सारिणी ६

हि. प. के स्वर	कर्णाटकी प. के स्वर
स	स
र्	र शुद्ध
र	ग शुद्ध या चतुःश्रुतिक र
ग्	ग साधारण या षट्श्रुतिक र
ग	ग अंतर
म	म शुद्ध
म॑	म प्रति
प	प शुद्ध
ध्	ध शुद्ध
ध	न शुद्ध या चतुःश्रुतिक ध
न्	न कैशिक या षट्श्रुतिक ध
न	न काकली

५३—इन बारह स्वरोंकी सारिणीसे यह न समझना चाहिए कि बारह-के-बारह स्वर रागके लिए आवश्यक हैं। इनमें-से सिर्फ सात स्वरोंको चुनकर ग्राम बनाया जाता है, जिसे 'ठाठ' कहते हैं। इस चुनावके लिए यह नियम है कि किसी भी ठाठमें 'स' और 'प' नहीं छोड़ा जा सकता और एक स्वरके, शुद्ध या विकृत आदि अनेक रूपोंमें-से एक ही लिया जा सकता है। जैसे किसी भी ठाठमें र् र या ग् ग, दोनों साथ-साथ नहीं रह सकते। इस नियमके अनुसार, १२ स्वरोंमें-से सात स्वरोंके अनेक मेल हो सकते हैं, पर हिन्दुस्तानी पद्धतिमें दस ही ठाठ माने गये हैं। इस प्रकार जहाँ विलायती पद्धतिमें रागोंकी उत्पत्ति दो ही ग्रामों या ठाठोंसे होती है वहाँ हिन्दुस्तानी पद्धतिमे दस ग्रामों या ठाठोंसे राग निकलते हैं। इसलिए हिन्दुस्तानी पद्धतिमें रागोंके जितने भेद हो सकते हैं, विलायती पद्धतिमें उतने नहीं हो सकते।

नीचे दसो ठाठके सप्तक, स्वरोके पारस्परिक अतरालके साथ, दिये जाते हैं। इनके स्वरोंका षड्जसे अतराल ऊपरकी सारिणीसे जाना जा सकता है।

१—बिलावलः—

स र ग म प ध न स

९/८ १०/९ १६/१५ ९/८ ९/८ १०/९ १६/१५

यही शुद्ध ग्राम है जो ऊपर दिया जा चुका है।

२—खम्माजः—

३—काफी:—

स र ग् म प ध न् सं

९/८ १६/१५ १०/९ ९/८ ९/८ १६/१५ १०/९

प्राचीन पद्धतिका यह शुद्ध ग्राम है।

४—आसावरी:—

स र ग् म प ध् न् सं

९/८ १६/१५ १०/९ ९/८ १६/१५ ९/८ १०/९

यह विलायती पद्धतिके लघु ग्रामका अवरोही है।

५—भैरवी:—

स र् ग् म प ध् न् सं

१६/१५ ९/८ १०/९ ९/८ १६/१५ ९/८ १०/९

६—भैरव:—

स र् ग म प ध् न सं

१६/१५ ७५/६४ १६/१५ ९/८ १६/१५ ७५/६४ १६/१५

७—कल्याण:—

स र ग म′ प ध न सं

९/८ १०/९ ९/८ १६/१५ ९/८ १०/९ १६/१५

८—मारवा:—

स र ग म′ प ध न सं

१६/१५ ७५/६४ ९/८ १६/१५ ९/८ १०/९ १६/१५
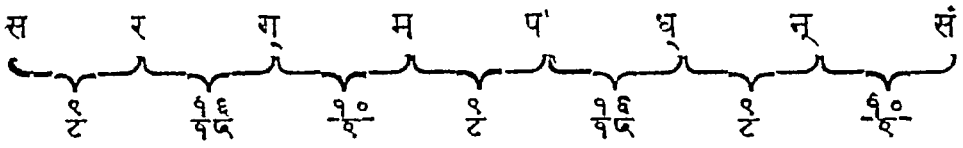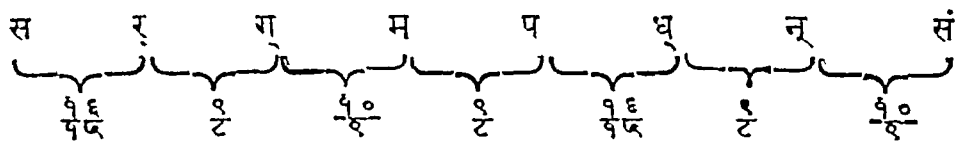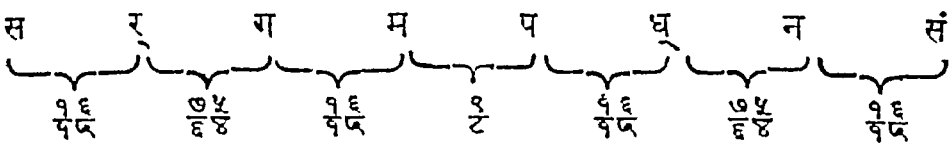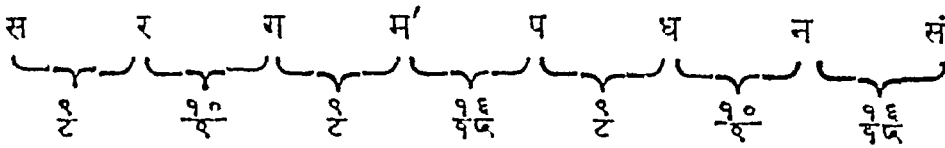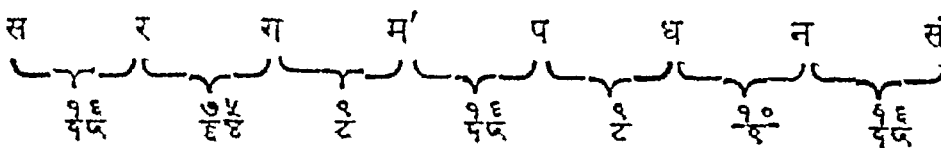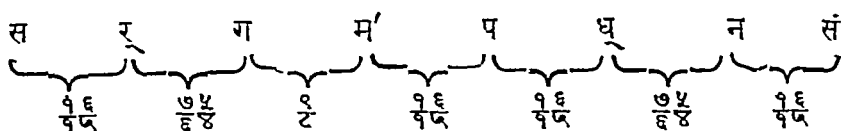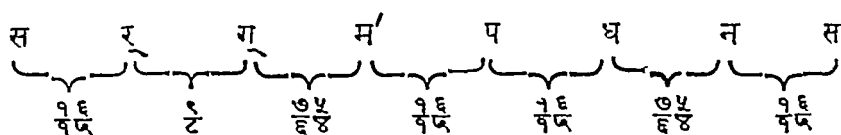
इन दस ठाठोंके स्वर-प्रबन्धपर ध्यान देनेसे पता चलता है' कि बिलावल, खम्माज, काफी, आसावरी, भैरवी और कल्याण, इन ६ ठाठोंमें-से प्रत्येकमें ३ गुरु स्वर, २ लघु स्वर और २ अर्ध स्वरका प्रयोग हुआ है। सिर्फ इनके क्रममें अंतर है। बाक़ी चार ठाठोंमें एक नया स्वर $\frac{७५}{६४}$ अतरालका दीख पड़ता है जो गुरु स्वरसे एक लघु-अर्ध स्वर बड़ा है। क्योंकि $\frac{७५}{६४} \times \frac{८}{९} = \frac{२५}{२४}$। फिर इन चारोमें भी भैरव, पूर्वी और टोड़ीमें भिन्न-भिन्न क्रमसे २ अति गुरु स्वर, १ गुरु स्वर और ४ अर्ध स्वर आये हैं। सिर्फ मारवामें १ अति गुरु स्वर, २ गुरु स्वर, लघु स्वर, और ३ अर्ध स्वरका प्रयोग हुआ है। इन प्रबन्धोंका विचार आगे किया जायगा।

५४—अब एक ऐसे ग्रामकी चर्चा की जाती है जो पूरी तरह बेसुरा (अनु० ६८) होनेपर भी, सबसे अधिक प्रचलित है। इसे 'समसाधृत ग्राम' कहते हैं।

मान लिया जाय कि कोई गवैया बिलावल ठाठका राग गा रहा है। उसे किसी बाजेकी सगति चाहिए। अगर सरगी या बेला जैसा बिना सुन्दरीवाला साज हो तो साजिंदेको सगतिमें कोई कठिनाई न होगी। वह षड्जके तारको गवैयेके सुरमे मिला देगा और अगुलियोंके अंदाज़से बिलावल ठाठके स्वर निकालेगा। सितार इसराज जैसे सुन्दरीवाले बाजेमे भी ज्यादा झंझट नहीं है। क्योकि इनमे भी तारको चढ़ा-उतारकर गवैयेके

सुरमें मिलाया जा सकता है। ज़रूरत पड़ने पर, सुन्दरी खिसकाकर भी विलावल ठाठके स्वर बाँधे जा सकते हैं। पर हार्मोनियम या प्यानो-जैसे पटरी-वाले बाजोंमें कठिनाई आ जाती है, जिनकी पटरियोंके स्वरको घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता। मान लो कि एक हार्मोनियमके एक सप्तकमें सारिणी ४के १२ स्वर बैठाये हुए हैं। अगर गवैयेका सुर पहली षड्जकी पटरीसे मिल जाता है तो कोई कठिनाई नहीं है। फिर तो गवैया चाहे किसी भी ठाठका गाना गावे, हार्मोनियम उसकी संगति करेगा। पञ्चममें सुर मिले तो भी आसानी है। पर यदि गवैया मध्यमके स्वरसे गाना चाहे तो हार्मोनियमकी मध्यमकी पटरीको षड्ज मानकर आगे चलना होगा। ऐसा होनेसे, प की पटरीसे र और ध की पटरीसे ग का काम लेना होगा। सारिणी ४ के हिसाबसे ध प से ९/८ के अंतरालपर है; पर ग र से १०/९ पर होना चाहिए। इसलिए, इस नये ध के लिए एक नई पटरी होनी चाहिए। नहीं तो ध की पटरीसे निकलनेवाला ग एक कोमा चढ़ा हुआ बोलेगा। इसी तरह न् को भी उतारना होगा। अगर ग को षड्ज मानकर चले तो न तो 'ध्' गंधारका काम देगा और न 'ध' मध्यमका। इस प्रकार और-और स्वरोंको षड्ज बाँधकर चलनेसे भी यही कठिनाई पैदा हो जाती है। मतलब यह कि हार्मोनियमके स्वर अगर सारिणी ४ के हिसाबसे बँधे हों तो वह भिन्न-भिन्न स्वरवाले गवैयेकी संगति नहीं कर सकता। हार्मोनियमके स्वर ऐसे होने चाहिए कि इसमें किसी भी पटरीको स मानकर चलें, सप्तक सदा एक-सा ही तैयार हो। यह तभी सम्भव है जब बारहों स्वरोंके पारस्परिक अंतराल बराबर हों। सम अंतराल होनेसे ही वह एक नया ग्राम तैयार हो गया, जिसके सभी स्वर विचलित हैं। इसीलिए इन्हें 'समसाधृत ग्राम' कहते हैं। इस ग्राममें बारहोंमेंसे हरेक स्वरके अंतरालको अर्ध स्वर कहते हैं जो शुद्ध ग्रामके अर्ध स्वरसे भिन्न है। यह बताया जा चुका है (अ० ४६) कि इस ग्राममें अर्धस्वर १०० सेंट या २५ सेवर्टका होता है। इस ग्रामका विवरण नीचेकी सारिणीमें दिया जाता है।

सारिणी ७

स्वर	साधृत ग्राम सेंट	हि. ग्राम सेंट	वि ग्राम सेंट	साधृत ग्राम सेवर्ट	हि शुद्ध ग्राम सेवर्ट	वि. शुद्ध ग्राम सेवर्ट
स	०	०		०	०	०
र॒	१००			२५.१		
र	२००	२०४	२०४	५०.२	५१.१	५१.१
ग॒	३००			७५.२		
ग	४००	३८६	३८६	१००.३	९६.९	९६.९
म	५००	४९८	४९८	१२५.४	१२५.०	१२५.०
म॑	६००			१५०.५		
प	७००	७०२	७०२	१७५.६	१७६.१	१७६.१
ध॒	८००			२००.६		
ध	९००	९०६	८८४	२२५.७	२२७.२	२२१.९
न॒	१०००			२५०.८		
न	११००	१०८८	१०८८	२७५.९	२७३.०	२७३.०
सं	१२००	१२००	१२००	३०१.०	३०१.०	३०१.०

इस सारिणीसे पता चलता है कि इस ग्राममें स को छोड़, वाक़ी सभी स्वर विकृत हैं। फिर भी यह ग्राम विलायत और हिन्दुस्तानमें, एकसा प्रचलित है। इस ग्रामका पूरा विचार आगे किया जायगा। यहाँपर इतना ही वता देना काफी है कि संगतिके सुभीतेके लिए, और वह भी पटरीवाले या वँधे हुए स्वरके साजोंके लिए ही, इस ग्रामका प्रचार है। विलायत और हिन्दुस्तानके संगीतज्ञ, सर्वसाधारणके लिए उपयोगी होनेपर भी, संगीतकी दृष्टिसे इस ग्रामको हीन कोटिका समझते हैं।

११. स्वर-संवाद और स्वर-संघात

५५—यदि तमूरेके दो तार एक ही स्वरमें मिले हो तो दोनोंको साथ-साथ छेड़नेसे उनका मिला हुआ स्वर बहुत ही प्रिय मालूम होता है। ऐसा ही प्रिय मेल षड्ज (स) और तार षड्ज (स) का भी होता है। इससे कुछ ही कम स-प और स-म का सामञ्जस्य है। पर यदि एक तारको स मे और दूसरेको ग या न मे बाँधकर छेड़े तो इनकी सगति बड़ी ही कर्णकटु मालूम होगी। जिन दो स्वरोंकी सगति प्रिय होती है उन्हें 'संवादी' और जिनकी संगति कटु होती है उन्हें 'विवादी' कहते हैं। इस सवाद या विवादका अनुभव सिर्फ दो स्वरोंके साथ-साथ उच्चारणमे ही नहीं होता, बल्कि एक स्वरके बाद तुरत दूसरे स्वरके उच्चारणमें भी होता है। इसीलिए संवाद और विवादका अनुभव जितना व्यापक है उतना ही प्राचीन है। पाइथागोरसने इसका विचार किया है। भारतीय संगीतके आदि आचार्य्य भरतने स-प, स-म सवादकी चर्चा की है। प्राय. सभी देशों और सभी जातियोंके स्वाभाविक ग्राममे सच्चे प और सच्चे म का अस्तित्व मिलता है।

अब देखना यह है कि सर्वमान्य स-प और स-म सवादके अलावा और भी स्वर-संवाद हो सकते हैं या नहीं। इसकी जाँच एक सामान्य प्रयोगसे हो सकती है। तमूरे या और किसी साजके दो तारोको एक सुरमें मिला लो। फिर इन मिले हुए तारोंमे-से एकको लगातार चढ़ाते जाओ और दोनोको साथ-साथ छेड़ते जाओ। एक तारको ज़रा चढ़ाते ही मालूम होगा कि दोनोकी संगति बेसुरी हो गई। जब दोनो स्वरोंका अन्तराल एक अर्धस्वर होता है तो बेसुरापन सबसे अधिक हो जाता है। आगे बढ़ते जानेपर बेसुरापन धीरे-धीरे घटता जाता है और ग ($\frac{6}{5}$) पर

प्राय लुप्त हो जाता है। ग ($\frac{5}{4}$) पर पहुँचकर सगति सुरीली हो जाती है। आगे फिर वेसुरापन वढता है और म ($\frac{4}{3}$) पर फिर सगति सुरीली हो जाती है। इस प्रकार दोनों तारोंके स्वरोंकी सगति बेसुरी हो-होकर प ($\frac{3}{2}$), ध ($\frac{5}{3}$), पर सुरीली हो जाती है। अतमें न पर वेसुरी होकर स पर पूरी तरह सुरीली हो जाती है। इससे यह स्पष्ट है कि स-प, स-म के अलावा और सवाद भी ग्राममें मौजूद हैं। जिन स्वरोंका स से सवाद है उनको हम 'इष्ट' स्वर कहेंगे और जिनका विवाद है उनको 'अनिष्ट' स्वर।

विलायती शुद्ध ग्रामकी सारिणी देखनेसे पता चलता है कि जिन स्वरोंका स से अन्तराल सरल है अर्थात् छोटी सख्याओंसे प्रकट किया गया है वे तो इष्ट स्वर हैं और जिनका अतराल बड़ी सख्याओंसे प्रकट किया गया है वे अनिष्ट हैं। इष्ट और अनिष्ट स्वरोंके बीचकी सीमाका अक ८ है। अंकके छोटेपनपर ही इष्टताकी मात्रा भी निर्भर है। इसका उदाहरण नीचे दिया जाता है—

अति इष्ट	—	प ($\frac{3}{2}$), म ($\frac{4}{3}$)
इष्ट	—	ध ($\frac{5}{3}$), ग ($\frac{5}{4}$)
अल्प इष्ट	—	ग् ($\frac{6}{5}$), ध् ($\frac{8}{5}$)
अनिष्ट	—	र ($\frac{9}{8}$), लघु स्वर ($\frac{10}{9}$)
अति अनिष्ट	—	र् ($\frac{16}{15}$)

ऊपरके विचारसे यह मानना पड़ता है कि हिन्दुस्तानी शुद्ध ग्रामका ध ($\frac{27}{16}$) अति अनिष्ट स्वरोंमें है।

विचार करनेसे जान पड़ेगा कि इन इष्ट और अनिष्ट स्वरोंका सीधा सम्बन्ध आवर्त्तकोंसे है। किसी स्वरके आवर्त्तकोंमें ये स्वर स्वभावत मौजूद हैं। यह बात नीचे दिखाई गई है, जहाँ मौलिक स्वरकी आवृत्ति १ मान ली गई है।
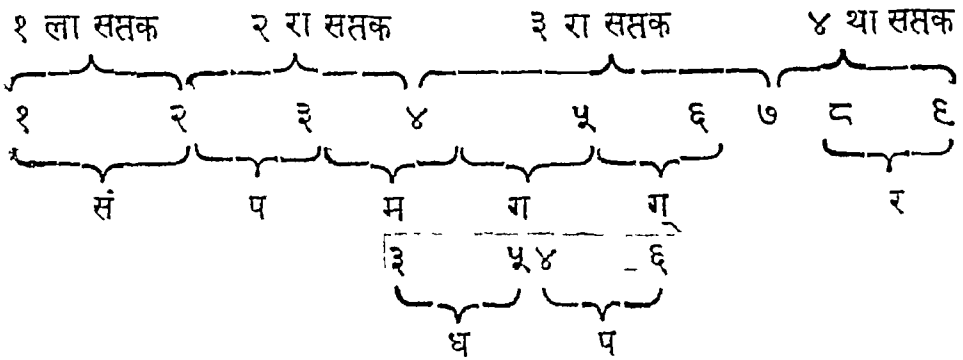
इस सांकेतिक विवरणको देखनेसे पता चलता है कि जो स्वर निकटके आवर्त्तकोंके मेलसे बने हैं वे तो इष्ट हैं और जो दूरके या अधिक ऊँचे आवर्त्तकोंके मेलसे बने हैं वे अनिष्ट हैं। इस तरह स्वरके बनानेवाले आवर्त्तक जितने ऊँचे होते जायँगे अनिष्टता उतनी ही बढ़ती जायगी। इसीलिए १५ वे और १६ वे आवर्त्तकोंसे बना हुआ अर्धस्वरका अंतराल या र् बहुत ही अधिक अनिष्ट होता है।

ऊपरके संकेतसे यह बात भी प्रकट होती है कि ग्रामोंके बनानेमे ७ वे आवर्त्तकसे काम नहीं लिया गया है। इटलीके वैज्ञानिक, ब्लसेर्नाके मतसे ७/४ स्वरमे, जो ७ म है, इष्टताका काफी अंश है और इसका कभी-कभी सफलताके साथ उपयोग किया जा सकता है। ऐलिसने अपने बनाये हुए साज हार्मोनियममें ७/४ स्वर अर्थात् ७ न् की भी पटरी दी है। क्लेमेन्टने इस बातकी बड़ी प्रशंसा की है कि हिन्दुस्तानी गायक प्राय इस सप्तम आवर्त्तकके अन्तरालका प्रयोग करते हैं। फिर भी यह मानना पड़ता है कि सप्तम आवर्त्तक स्वरोंको किसी भी ग्राममे स्थान नहीं मिला है। इसका कारण स्पष्ट है। एक तो ७ म आवर्त्तक इतना ऊँचा है कि वह स्वतन्त्र रूपसे इष्ट स्वर नहीं पैदा कर सकता जैसा कि ३ रे या ५ वे आवर्त्तक करते हैं। दूसरे, ७ ऐसा शुद्ध अङ्क है कि इसे पूरे-पूरे अङ्कोंमे नहीं बाँटा जा सकता इससे इसका नीचेके अन्य आवर्त्तकोंसे भी कोई सम्बन्ध नहीं है। ८ वे और ९ वे आवर्त्तक यद्यपि ७ वे से भी ऊँचे हैं पर ८ वाँ दूसरेका चौगुना और ९ वाँ ३ रे का तिगुना है।

इसलिए $\frac{१}{२}$ स्वरका स के साथ तो विवाद है पर $\frac{३}{२}$ के साथ संवाद है। मतलब यह कि उन्हीं आवर्त्तकोंसे बने स्वर ग्राममें आ सकते हैं जो या तो स्वय नीचे हों या जिन्हें पूरा-पूरा बाँटनेसे नीचेके आवर्त्तक निकल सकें। ७ म आवर्त्तकमे ये दोनों ही बातें नहीं हैं। इसलिए सप्तम आवर्त्तक सिर्फ इष्ट और अनिष्ट स्वरोंके बीचकी सीमा माना जा सकता है।

जिस ग्रामके मुख्य स्वर १ से ६ तकके इष्ट आवर्त्तकोंसे बने होते हैं उसे 'आवर्त्तक ग्राम' या 'प्राकृतिक ग्राम' कहते हैं। इस हिसाबसे विलायती शुद्ध या गुरु ग्राम ही पूरी तरह आवर्त्तक ग्राम है।

५६—जिन स्वरोंका सम्बन्ध छोटे अकोंके अनुपातसे प्रकट किया जाता है वे सवादी होते हैं। ऐसा क्यों होता है, इस समस्याको हल करनेमें पाइथागोरससे लेकर कितने ही प्राचीन और नवीन शास्त्रज्ञोंके विचार लड़ते रहे। पर इसका सच्चा निर्णय हेल्महोजने किया, जिसे आजतक सभी मानते चले आ रहे हैं।

हेल्महोजके मतानुसार जब दो स्वरोंके बीच डोल (अनु० ४३) पैदा होता है तो कानोंको उससे कष्ट पहुँचता है और ऐसे स्वरोंकी सगति अनिष्ट मालूम होती है, वैसे ही, जैसे हिलती हुई रोशनी देखनेसे या जिस रोशनीकी तेजी बार-बार घटती-बढती हो, उसे देखनेसे आँखोंको कष्ट पहुँचता है।

यह बताया जा चुका है कि दो स्वरोंकी आवृत्तियोंमे जितना अतर होता है प्रति सेकेण्ड उतने ही डोल सुन पड़ते हैं (अनु० ४३)। आवृत्तियोंका अतर जब बहुत अधिक बढ जाता है तो डोल तेज़ हो जाता है और तब इसका कानोंपर उतना अप्रिय प्रभाव नहीं पड़ता। वैसे ही, जब अतर बहुत ही थोडा होता है तो डोल धीमा हो जाता है और यह भी उतना अप्रिय नहीं जँचता। इनके बीच, डोलोंकी एक खास सख्या है जिसपर यह सबसे अधिक कटु मालूम होता है। हेल्महोज़ने यह निर्णय किया है कि जब साधारण आवृत्तिके दो स्वरोंकी सगतिमें ३३ डोल प्रति सेकेण्ड होते हैं तो

वह संगति सबसे अधिक अनिष्ट होती है। अब सबसे अधिक अनिष्ट संगतिके डोलकी सख्या २३ मानी जाती है। यदि एक स्वरकी आवृत्ति २४० माने तो २३ डोलोंके लिए दूसरे स्वरकी आवृत्तिको २६३ या २१७ मानना पड़ेगा। इन दोनों स्वरोंका अंतराल लगभग एक अर्ध स्वरके निकलता है। इसीसे अर्ध स्वरका अंतराल सबसे अधिक विवादी होता है। भरतादि प्राचीन शास्त्रकारोंने भी दो श्रुतिके अंतरवाले स्वरोंको विवादी माना है; जैसे र ग्, ग म, ध न् आदि परस्पर विवादी हैं। इसमें सदेह नहीं कि प्राचीन दो श्रुतियोंका अंतराल आधुनिक अर्धस्वरका द्योतक है।

यदि दो स्वरोंके अतरालको अर्धस्वरसे आगे बढ़ावे तो स्पष्ट है कि डोलोंकी गिनती बढती जायगी और संगतिकी अनिष्टता कम होती जायगी। यह सामान्य अनुभवकी बात है कि पूरे १ स्वरके अतरालपर अनिष्टता अर्धस्वरकी अपेक्षा बहुत कुछ कम हो जाती है। ग् पर डोल सुनाई नहीं पड़ता और अनिष्टता प्राय लुप्त हो जाती है। इससे यह कहा जा सकता है कि जब दो स्वरोंका अतराल ग् ($\frac{6}{5}$) से छोटा होता है तो वे स्वर परस्पर विवादी होते हैं। यह विवाद अर्ध स्वरके अतरालपर सबसे अधिक होता है।

पर यह साधारण आवृत्तिके लिए ही ठीक है। दोनों स्वरोंकी आवृत्ति बहुत अधिक होनेपर सम्भव है कि एक गुरु स्वरके अंतरालपर ही डोल सुनाई न दें। इसलिए ऐसा न समझना चाहिये कि हर आवृत्तिपर एक अर्धस्वरका अतराल सबसे अधिक अनिष्ट होता है या ग् के अंतरालपर अनिष्टता लुप्त हो जाती है। यह बताया गया है कि २४० और २६३ के बीच सबसे अधिक विवाद है जिनका अतराल लगभग अर्धस्वर है। अगर दोनों स्वरोंको दूना करके तार सप्तकमें ले जायँ तो दोनोंका अतराल तो वही अर्धस्वर रहेगा, पर डोलोंकी सख्या अब ४६ प्रति सेकेण्ड हो जायगी। गिनती बढ जानेके कारण डोलमें तेज़ी आ जानेसे यह अर्ध-

स्वरका अन्तराल अब उतना अनिष्ट नहीं जँचेगा। पर इसका यह मतलब भी नहीं कि तार सप्तकमें भी, मध्य सप्तककी तरह ही, २३ डोलपर ही सबसे अधिक विवाद प्रकट होगा। सबसे अधिक विवादके लिए डोलकी संख्या २३ और ४६ के बीच कहीं पड़ेगी। साराश यह कि जैसे-जैसे दोनों स्वरोंकी आवृत्ति बढती है वैसे-वैसे सबसे अधिक विवाद पैदा करनेवाला अन्तराल तो अर्ध स्वरसे छोटा होता जाता है पर डोलोंकी संख्या बड़ी होती जाती है। ठीक इससे उलटा परिणाम स्वरोंकी आवृत्ति घटनेमे होता है।

कितनी आवृत्तिपर कितना डोल सबसे अधिक अनिष्ट होता है, इसकी जाँचमें अनेक वैज्ञानिकोंने बहुतेरे प्रयोग किये हैं। उनमे-से मेयर और स्टम्फके प्रयोगका परिणाम नीचेकी सारिणीमे दिया जाता है जिससे ऊपरकी सारी बातें स्पष्ट हो जायँगी।

सारिणी ८

स्वरोंकी आवृत्ति	सबसे अधिक अनिष्ट डोलकी सख्या	जिस अतरालपर डोल सुनाई नहीं पड़ते
९६	१६ प्रति सेकेण्ड	६ अर्ध स्वर
२५६	२३ ,,	४ ,,
५७५	४३ ,,	३ ,,
१७०७	८४ ,,	२ ,,
२८००	१०० ,,	१·५ ,,

५७—हेल्महोल्जके इस निर्णयको मान लेनेपर भी कि दो स्वरोंके विवादका कारण उन स्वरोंके सयोगसे उत्पन्न 'डोल' है, स्वर-संवादकी समस्या हल नहीं होती। क्योंकि कानोंको सुनाई देनेवाला डोल तो तभी पैदा होता है जब दोनों स्वरोंकी आवृत्तियाँ पास-पास होती हैं। इसलिए सिर्फ डोलके आधारपर यह नहीं बताया जा सकता कि स और न में

विवाद क्यो है, जो एक-दूसरेसे बहुत दूर हैं; फिर लगातार आवृत्तियोंका अन्तर बढ़ाते जानेपर भी संवादके बाद विवाद और विवादके बाद संवाद क्यों होता है।

इस समस्याको हेल्महोज़ने एक और धारणासे हल किया है। उन्होने बतलाया है कि डोल जिस तरह स्वरके मौलिकोंके सयोगसे पैदा होता है उसी तरह उनके उपस्वरोंके सयोगसे भी पैदा होता है। इतना ही नहीं! दो स्वरोके परिणामि (शैषिक और यौगिक) स्वर (अनु० ४४) भी डोलके कारण होते हैं। मतलब यह कि स्वरकी इष्टता या अनिष्टतामें मौलिक, उपस्वर और परिणामि स्वर तीनोंका ही सहयोग रहता है।

इस सिद्धान्तकी दृष्टिसे नीचे स्वरोंके सवाद और विवादका विवरण दिया जाता है जिससे यह मालूम होगा कि साधारण अनुभवकी बातोंको यह सिद्धान्त पूरी तरह पुष्ट करता है।

नीचेके विवरणमे स की आवृत्तिको १ मान लिया गया है। आशिकोंका क्रमाक गिनतीसे जाना जा सकता है। सभी संवादमे स्वरके छ आशिकोका ही विचार किया गया है; क्योकि स्वरमे प्राय. छठे आशिकतक ही प्रबल होते हैं—ऊँचे आशिक दुर्बल होते चले जाते हैं।

१—स—स।

स—१	२	३	४	५	६
सं—	२		४		६

सं का १ला, २रा, ३रा आशिक स के २रे, ४थे, ६ठे आदि आशिकोसे पूरी तरह मिल जाते हैं; इसलिए डोलकी कहीं सम्भावना नहीं है। इन दोनोका शैषिक १ होता है जो स के मौलिकसे पूरी तरह मिल जाता है।

इसलिए स-स का संवाद आदर्श है। स, सं में से किसी एकको थोड़ा भी चढ़ाने-उतारनेसे डोल पैदा हो जायँगे। इसलिए स-सं का मिलान बड़ा ही सच्चा होना चाहिये; और यह डोलको दूर करके आसानीसे किया जा सकता है।

२—स—प ।

स—	१	२	३	४	५	६
प—	३/२		३		९/२	६
			मेल		डोल	मेल

इष्टता—प का २रा, ४था, आंशिक स के ३रे, ६ठेंसे मिलता है ।

अनिष्टता—प ३ और स ४ में डोल होता है ।

शैषिक—१/२, स के एक सप्तक नीचे (स़) है ।

इसमें अनिष्टता बहुत ही अल्प है क्योंकि एक तो ४था आंशिक दुर्बल होता है । दूसरे इससे पहलेका ३ रा प्रबल आंशिक प २ से मिलकर ४थे आंशिकका प्रभाव कम कर देता है । तीसरे, स ४ प ३ का अतराल १ गुरु स्वर है जो ख़ास तौरसे ऊँची आवृत्तिपर उतना अनिष्ट नहीं होता। फिर शैषिक मौलिकको पुष्ट करता है ।

इसीलिए स-स संवादके बाद स-प संवादका ही स्थान है ।

३—स—म ।

स—	१	२	३	४	५	६
म—	४/३	८/३		४	१६/३	२०/३
		डोल		मेल	डोल	डोल

इष्टता— स ४ और म ३ का मेल ।

अनिष्टता—(१) स ३—म २ (अतराल ९/८)

(२) स ५—म ४ (अंतराल १६/१५)

(३) स ६—म ५ (अंतराल १०/९)

शैषिक — १/३ ।

इसमें मेल तो ४-३ आंशिकोंमे है जो ऊँचे और दुर्बल हैं पर डोल ३-२ में है जो नीचे और प्रबल हैं । इसका शैषिक भी स को पुष्ट नहीं करता; वह म का अतिमंद्र है ।

इसलिए स-म सवाद स-प की अपेक्षा बहुत ही दुर्बल है। इसमें अनिष्टताका अश बहुत अधिक होनेसे ही इस बातको बहुत दिनोंतक बहस रही कि म को इष्ट स्वर मानना चाहिये या अनिष्ट। अन्तमें यह इष्ट ही माना जाने लगा, ख़ास तौरसे इसलिए कि यह प का उल्टा है। जैसे,

म॒ ——— स ——— प
$\frac{3}{2}$ $\frac{3}{2}$

अर्थात् स से $\frac{3}{2}$ ऊपर प और $\frac{3}{2}$ नीचे म होता है।

४—स—ध।

स—	१	२	३	४	५	६
ध—		$\frac{5}{3}$	$\frac{10}{3}$		५	$\frac{20}{3}$
			डो.		मे	डो.
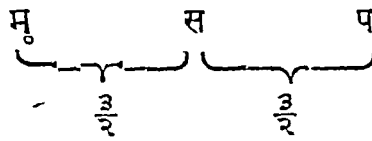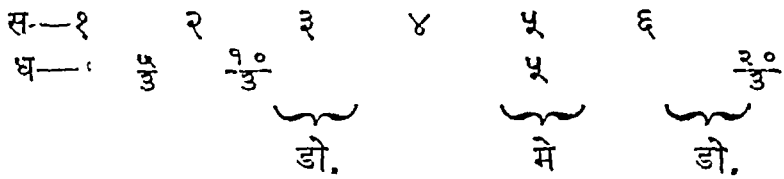
इष्टता—स ५ और ध ३ का मेल।

अनिष्टता—(१) स ३—ध २ (अतराल $\frac{10}{9}$)

(२) स ६—ध ४ (अतराल $\frac{10}{9}$)

शैषिक—$\frac{2}{3}$

इसमें भी मेल तो ऊँचे आशिकोंमें है और डोल नीचे में। फिर इसका शैषिक दो मे से किसी भी स्वरको पुष्ट नहीं करता। वह एक नया स्वर म॒ है।

५—स—ग।

				डो.	मे.	डो.
स—	१	२	३	४	५	६
ग—		$\frac{5}{4}$	$\frac{5}{2}$	$\frac{15}{4}$	५	$\frac{25}{4}$
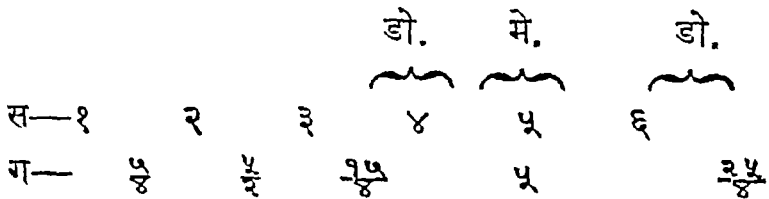
इष्टता—स ५ और ग ४ का मेल।

अनिष्टता—(१) स ४—ग ३ ($\frac{16}{15}$) (२) स ६—ग ५ ($\frac{25}{24}$)

शैषिक—$\frac{1}{4}$।

स-ग सवाद प्राय स–ध संवाद जैसा ही है। इसके अनिष्ट डोलके आशिक स-ध के अनिष्ट डोलके आशिकोंसे ऊँचे हैं; पर स-ध के डोलका अन्तराल एक लघु स्वर और स-ग के डोलका अन्तराल एक अर्धस्वर है। इसलिए एक कारणसे अनिष्टता घटती है तो दूसरे कारणसे वढती है। इसका शैषिक स को पुष्ट करता है पर अतिमंद ($\frac{१}{४}$) होनेसे दुर्बल है।

६—स—ग्।

स—१	२	३	४	५	६
ग्— $\frac{६}{५}$	$\frac{१२}{५}$	$\frac{१८}{५}$	$\frac{२४}{५}$	६	
			डो	डो	मे.

इष्टता—स ६—ग् ५ का मेल

अनिष्टता—(१) स ४—ग् ३ (अन्तराल $\frac{१६}{१५}$)

(२) स ५—ग् ४ (अन्तराल $\frac{२५}{२४}$)

शैषिक—$\frac{१}{५}$।

७—स—ध्।

स—१	२	३	४	५	६
ध्— $\frac{८}{५}$		$\frac{१६}{५}$		$\frac{२४}{५}$	$\frac{३२}{५}$
		डो.		डो.	डो.

इष्टता—स ८— ध् ५।

अनिष्टता—(१) स ३—ध् २ (२) स ५—ध् ३

(३) स ६—ध् ४।

शैषिक—$\frac{३}{५}$।

इन दोनों ही संवादोंमे अनिष्टताका अंश वढ गया है और इष्टता ऊँचे आशिकोंपर चली गई है। यहाँ तक कि स-ध् सवाद ८वें आशिकपर निर्भर है जो प्राय स्वरमें नहीं पाया जाता। इनके शैषिक भी किसी स्वरको पुष्ट नहीं करते।

(८) स—न् ।

स—१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९

न्— ९/५ १८/५ २७/५ ३६/५ ९

डो. डो. डो. डो. डो. डो.

इष्टता—स ९—न् ५

अनिष्टता—(१) स २—न् १ (२) स ४—न् २ (३) स ५, ६—न् ३ (४) स ७, ८—न् ५ ।

शैषिक—४/५

इसकी इष्टता ९ वे आशिकपर निर्भर है जो बहुत ऊँचा है और अनिष्टता तो मौलिकके डोलतकसे पैदा होती है। इसका शैषिक भी किसी स्वरको पुष्ट नहीं करता। इसलिए स—न् अतराल विवादी है। पर विवादियोंमे इसकी अनिष्टता बहुत ही अल्प है क्योंकि नीचेके प्रबल आशिकोंमे कही भी अर्ध स्वर या इससे छोटे अतरालका डोल नहीं पैदा होता। स—ध् मे स ३ और ध् २ के बीच अर्ध स्वरका डोल होता है और ३, २ आशिकोंमे प्रबलता भी पूरी होती है। इसलिए स—न् विवादी होनेपर भी स—ध् से अधिक प्रिय होता है।

(९) स—र।

स—१ २ ३ ४ ५ ६ ९

र— ९/८ ९/४ २७/८ ९/२ ४५/८ ९

डो. डो. डो. डो. डो डो. डो. मे

इष्टता—स ९—र ८।

अनिष्टता—९ से नीचेके सभी आशिकों मे।

शैफिक—$\frac{1}{2}$

यह बतानेकी आवश्यकता नहीं कि यह स—र अंतराल पूरी तरह विवादी है। इसका शैफिक भी स से नीचे चौथे सप्तकमें पड़ता है जिससे इसमें स को पुष्ट करनेकी क्षमता नहीं रहती।

अब यह दिखानेकी ज़रूरत नहीं कि स—र् या स—न, स—र से भी अधिक विवादी होगा; क्योंकि इसके सभी आंशिकोंमें अर्ध स्वरका डोल पैदा होगा, जो स—र के डोलसे अधिक अनिष्ट है।

ऊपरके विवरणसे यह स्पष्ट हो जाता है कि जिन स्वरोंका अंतराल छोटी संख्याओंके भिन्नसे प्रकट किया जाता है वे क्यों संवादी होते हैं। छोटी संख्याओंके अनुपातका मतलब यह है कि उन स्वरोंके नीचेके आंशिक आपसमें मिलकर एक हो जाते हैं और एक-दूसरेको पुष्ट करते है। जैसे स ∽ प= $\frac{3}{2}$ का मतलब है कि स का ३ रा और प का २ रा आंशिक एक ही आवृत्तिका है इसलिए ये दोनों आंशिक एक-दूसरेको पुष्ट करते हैं।

सारांश यह कि दो आंशिकोंका मेल तो इष्ट होता है और दो आंशिकोंका डोल अनिष्ट होता है। किन्हीं दो स्वरोंकी संगतिमें मेलकी मात्रा अधिक है या डोलकी, या कौन कितना प्रबल है, इसी तौलपर उस संगतिका संवाद और विवाद निर्भर है।

५८—संवाद और विवादका विचार दो स्वरोंके आंशिकोंसे उत्पन्न डोलके आधारपर किया गया है। इससे यह न समझना चाहिये कि दो भिन्न-भिन्न स्वरोंके आंशिकोंमें ही डोल हो सकता है। किसी एक स्वरके अपने ही आंशिकोंमें भी परस्पर वैसा ही डोल होता है जैसा दो स्वरोंके आंशिकोंमें। किसी स्वरके आंशिकोंकी श्रेणीमें आंशिक जितना ऊँचा चढता जाता है, पासके आंशिकसे उसका अंतराल उतना ही छोटा होता जाता है। जैसे,

डो. डो. डो. डो.

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०

स-सं स-प स-म स-ग स-ग् गुरु स्वर लघु स्वर

यहाँ ५ वें और ६ ठे आशिकोंका अंतराल (ग्) डोलकी सीमापर है। इससे आगेके आशिकोंका, अपने अगल-बगलके आशिकोंसे अंतराल अनिष्ट डोलकी सीमाके भीतर आता-जाता है। जैसे, ८ वें और ९ वे आंशिकोंका अन्तराल एक गुरु स्वर और ९ वें और १० वे का अन्तराल एक लघु स्वर हो जाता है। इस प्रकार आगे अन्तराल घटता जाता है और अनिष्ट डोल बढ़ता जाता है। इसलिए जिस मिश्र नादमें ६ ठे आशिकतक ही प्रबल हों वह, डोलके अभावके कारण, कोमल और इष्ट होता है; और जिसमें ६ ठे से आगेके आशिक भी प्रबल हों वह, डोलके कारण, कटु और अनिष्ट होता है।

ऊँचे आशिकोंमें अगर ७, ९, ११ आदि विषम आशिक न हों, तो सम आशिक ८, १०, १२ आदि सिर्फ नीचेके आंशिकोंको पुष्ट करेंगे। इससे नादमें अनिष्टता न रहेगी। पर यदि विषम आशिक प्रबल हों तो नाद बहुत ही अनिष्ट मालूम होगा।

जिन साजोंके नादमें धातुकी तरह खनक मालूम होती है, या जिन मनुष्योंका स्वर कर्णकटु मालूम होता है, उनके नाद या स्वरमें ऊँचे आशिक, ख़ास तौर से ६ ठे से ऊपर विषम आशिक, काफी प्रबल होते हैं। यंगके नियम (अनु० ३२) का उपयोग करके, अगर किसी तरह बाजेके नादसे विषम आशिकोंको दूर कर सकें तो वह मधुर हो जायगा। वैसे ही अगर मनुष्य बराबर अभ्याससे गलेपर क़ाबू करके विषम आंशिकोंको दबा सके तो उसका स्वर भी मधुर हो सकता है। प्यानो, वेला आदि तारके बाजोंमें छेड़नेकी जगह तारकी लम्बाईके लगभग सातवे हिस्सेपर रखते

हैं। यहाँ ७ वें आंशिककी ग्रन्थि है, इसलिए यह आंशिक नादसे ग़ायब हो जाता है। पर और विषम आंशिकोंके ख़यालसे, प्राय: छेड़नेकी ऐसी जगह चुनी जाती है जिसमें ७, ९, ११ आदि सभी दुर्बल हो जायँ।

५९—जब दो स्वरोंका संवाद और विवाद उनके आंशिकोंके डोलपर निर्भर है तो, स्वभावत यह प्रश्न उठता है कि सरल स्वरोंकी सगतिमे, जिनमें मौलिकको छोड़ और कोई भी आंशिक नहीं होता, इष्टता और अनिष्टताका भेद न होना चाहिए। अर्थात् र के सिवा, जिनकी अनिष्टता मौलिकके ही डोलके कारण है, और सभी स्वर बराबर ही इष्ट होने चाहिए। पर तीव्र सरल स्वरोंके साथ प्रयोग करनेपर यह पाया जाता है कि स—स सवाद स्पष्ट होता है और स—प सवादकी स्पष्टता इससे कुछ ही कम होती है। वैसे ही स—न विवाद भी स्पष्ट होता है। बाक़ी स्वरोंका सवाद स्पष्ट नही होता।

तीव्र सरल स्वरोंके संवाद-विवादका कारण परिणामि स्वर होता है। परिणामिमे भी शैषिक होता है, क्योंकि यौगिककी तीव्रता बहुत ही कम होती हे। शैषिक भी कई श्रेणियोंके होते हैं। मौलिक-मौलिकसे उत्पन्न शैषिक पहली श्रेणीका है। फिर इस शैषिक और दोनो अलग-अलग मौलिकोंसे उत्पन्न दो शैषिक दूसरी श्रेणीके हैं। इसी तरह दूसरी श्रेणीके शैषिकों और पहली श्रेणीके शैषिक और दोनो मौलिकोंसे उत्पन्न शैषिक तीसरी श्रेणीके हैं। इस रीतिसे इनकी शृङ्खला आगे भी बढाई जा सकती है। पर एक तो पहली श्रेणीका ही शैषिक दुर्बल होता है, जो काफ़ी तीव्र मौलिकोंके साथ ही सुना जा सकता है; उसपर ऊँची श्रेणियोंके शैषिकोंकी तीव्रता तो और भी कम होती चली जाती है।

ऊपर की सारी बातें उदाहरणसे स्पष्ट हो जायँगी।

नीचे स की आवृत्ति २४० मानकर सरल स्वरोंका सवाद-विवाद दिखाया जाता है —

(१) स—सं।

स स
२४० ४८०

मौलिक—

१ ली श्रेणी का शैषिक— २४०

यह शैषिक स को पुष्ट करता है। सं को ५ आवृत्ति चढ़ा देने पर—

स स
२४० ४८५

मौलिक—

१ ली श्रेणी का शैषिक— २४५

अब शैषिक और मौलिकके बीच ५ डोल प्रति सेकण्ड होंगे। यही परिणाम दो में से किसी एक स्वरको उतारने से भी होगा। अर्थात्, स, सं में से किसी भी स्वरको विचलित करनेसे अनिष्ट डोल होने लगता है, इसलिए स—स का सच्चा संवाद है।

(२) स—प।

स प
२४० ३६०

मौलिक—

१ ली श्रेणी का शैषिक १२०

यह मन्द्र स है इसलिए स को पुष्ट करता है।

प को ५ आवृत्ति चढा देने पर—

स प
२४० ३६५

मौलिक—

१२५

प्र० शैषिक— ११५ २४०

द्वि० शैषिक—

अब प्रथम शैषिक और द्वितीय शैषिकमें १० डोल प्रति सेकण्ड होता है। अर्थात् स या प को थोड़ा विचलित करनेसे अनिष्ट डोल होने लगता है। इसलिए स—प सवाद भी सच्चा है।

(३) म–३२० को ५ आवृत्ति चढा देनेपर—

मौलिक— स म

२४० ३२५

प्र० शैषिक— ८५

द्वि ,, १५५ ↓ २४०

तृ० ,, ८५ ७० १७०

द्वितीय और तृतीय श्रेणियोंके शैषिकोंमें १५ डोल होगा। तृतीय शैषिकके बहुत ही दुर्बल होनेसे म को विचलित करनेपर भी अनिष्टताका अनुभव न होगा। इसलिए सरल स्वरोंका स—म संवाद नहींके बराबर है।

यही बात दूसरे स्वरोंकी संगतिमें भी निकलेगी जो न तो संवादी और न विवादी जान पड़ेगी। पर स—न का विचार करनेपर यह साफ विवादी सिद्ध होगा। जैसे—

(४) स—न

स न

मौलिक— २४० ४५०

प्र० शैषिक— २१०

यहाँ मौलिक और प्रथम शैषिकके बीच ३० डोल सुन पड़ेगा। यह स २४० और र २७० के अनिष्ट डोलके बराबर ही है; इसलिए स—न संगति स—र सगतिके जैसा ही विवादी है।

इन विवेचनाओंसे यह सिद्ध होता है कि विना आंशिकोंवाले सरल नादोंमें सिर्फ स—सं और स—प सम्वाद होता है और स—स और प के

नीचे-ऊपर, दोनों ओर, थोड़ी दूरतक अनिष्टता प्रकट होती है। यह बात मिश्र नादोंसे भिन्न है जहाँ स—ग, स—म आदि कितने ही संवाद होते हैं।

६०—ऊपरके विचारोंसे यह परिणाम भी निकलता है कि संवाद-विवाद बहुत कुछ नादकी गुण-जातिपर निर्भर है। मिश्र नाद और सरल नादका इस सम्बन्धमें भेद तो ऊपरके विचारसे स्पष्ट ही है। यदि मिश्र नादोंको ही लें तो भी गुण-भेदसे संवाद विवादमें भेद पड़ जाता है। जैसे, मान लो कि दो स्वरोंम-से एकमें सम आंशिक न हों—१,३,५...आदि विषम आंशिक ही हों। अब यदि यह विषम आंशिकोंवाला स्वर मध्यम हो तो स—म संवादकी इष्टता बहुत बढ़ जायगी; क्योंकि स के ३ रे आंशिकके साथ बहुत ही अनिष्ट डोल पैदा करनेवाला म का दूसरा आंशिक इस स्वरमें नहीं है (अनु० ५७)। पर यदि इस स्वरको प बना दें तो स—प संवाद दुर्बल हो जायगा; क्योंकि स के ३ रे आंशिकके साथ मिलनेवाला प का दूसरा आंशिक स्वरसे गायब है। इसलिए ऐसे स्वरोंके साथ स—म संवाद स—प संवादसे अधिक इष्ट होगा। अगर इन्हीं दो स्वरोंम-से विषम आंशिक वालेको स और सम आंशिकवाले को म बाँधे तो स—म संवाद फिर दुर्बल हो जायगा क्योंकि स में डोलवाला आंशिक ३ तो मौजूद होगा और मेल-वाला ४ गायब होगा। इसी तरह सम आंशिकोंवाले स्वरको प बाँधनेसे स—प संवाद बहुत ही प्रबल हो जायगा। इस बातको माननेमें संगीतज्ञ प्राय झिझकते हैं क्योंकि यह सामान्य अनुभवकी बात नहीं है। पर वैज्ञानिकोंने इसे अनेक प्रयोगोंसे सिद्ध कर दिया है।

६१—इस संवाद-विवादके प्रसंगमें ही संगीतकी दो भिन्न-भिन्न पद्धतियोंपर कुछ प्रकाश डालना उचित जान पड़ता है। संगीतके लिए दो बातोंकी आवश्यकता सभी पद्धतियोंमें मानी जाती है—एक तो, एकके-बाद-एक स्वरोंका ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए, जो रसों और भावोंको उद्दीप्त करके चित्तको प्रसन्न करे। दूसरे, एक अच्छे गुणवाले स्वरके साथ भी भिन्न-

भिन्न नादोंका मेल होना चाहिए जिसमे स्वरका प्रभाव बढे।। जैसे, अगर गवैया अकेला गावे तो उसका गाना हलका जँचता है और अगर गानेके साथ-साथ हार्मोनियम, तमूरा, सरगी आदि उसके सुरमे मिला हुआ बजे तो उस गानेका असर बहुत बढ जाता है। एकके-बाद-एक स्वरोंके उच्चारणको बोलचालकी भाषामें 'धुन' कहते हैं जिसका उन्नत और नियमित रूप 'राग' है। व्यापक अर्थमे स्वरोंके क्रमबद्ध उतार-चढावके लिए पारिभाषिक 'सक्रम' का प्रयोग किया जायगा जो अग्रेजी 'मेलोडी' का पर्याय है। कई स्वरोंके एक ही साथ उच्चारणको 'सगति' कहते हैं। इसके लिए दूसरा शब्द 'सहति' है, जो अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। पर 'सगति', प्राय इसी अर्थमें, अधिक प्रचलित है। इसीलिए आगे सामान्य अर्थमें संगति और पारिभाषिक अर्थमे 'सहति' का प्रयोग किया जायगा जो अग्रेजी 'हार्मोनी' का पर्य्याय है।

भारतीय सगीत-कलाका विकास मुख्यत रागकी दिशामें हुआ है। समय की गतिके साथ-साथ रागको अनेक नये-नये नियमोंमे बाँधा गया। अनेक नये रागों और धुनोंका निर्माण हुआ। रागकी अभिव्यक्तिके लिए क्रमश ध्रुपद, ख़याल, ठुमरी आदि अनेक शैलियोंका विकास हुआ। इन्हें फूलकी तरह खिलानेके लिए कितने ही गमकोंका उपयोग किया गया। पर 'सहति' की ओर भारतीय कला अधिक न बढ सकी। गवैयोंके साथ कुछ बाजे बजते हैं; पर इसे संगति भी नहीं, 'अनुगति' कहना चाहिए। क्योंकि इस सगतिमे चाहे तो साज गवैयेके पीछे-पीछे चलता है या गवैया साजके पीछे-पीछे चलता है। जहाँ दो-चार व्यक्ति साथ-साथ गाते हैं वहाँ, बहुत ही पुरानी रीतिसे, सुरमें सुर मिला कर, स—स की या स—स की सगति से—जैसी एक युवक और एक महीन स्वरवाले लड़केके स्वरोंकी सगति होती है। यदि सच्चे अर्थमें 'सहति' का कुछ आभास मिलता है तो तमूरेके नादमे, जहाँ स स प या स स म स्वर प्राय साथ-साथ बजते हैं।

पाश्चात्य संगीत-कलाका विकास 'संहति' की दिशामे हुआ है। इस संहतिमे एकसे अधिक स्वरोंका मेल होता है। ये स्वर भिन्न-भिन्न होते हैं। जैसे, स, ग और प की संहति। एकसे अधिक स्वरोंके गुच्छेको 'संघात' कहते हैं। तमूरेमें चार तारोंके रहते हुए भी केवल दो स्वरोंका संघात है। पाश्चात्य पद्धतिमें तीन स्वरोंका संघात होता है जिसे त्रिसंघात या केवल 'संघात' कहते हैं। एक संघातके सारे स्वर एक साथ ही अलग-अलग बाजोंसे निकलते हैं और एकमें मिलकर विलक्षण नादकी सृष्टि करते हैं। यह मिश्रनाद इष्ट है, या अनिष्ट, मधुर है या कटु, कोमल है या कठोर—ये सारी बातें संघातके स्वरोंपर निर्भर हैं। इस प्रकार जैसे भिन्न-भिन्न स्वरोंके क्रमसे और भिन्न-भिन्न गमकोंसे अनेक भावों और रसोंके राग तैयार होते हैं वैसे ही भिन्न-भिन्न स्वरोंके संघातोंमें भी भिन्न-भिन्न भावों और रसोको उद्दीप्त करनेकी क्षमता होती है। 'संक्रम' और 'संहति' दोनों, संगीतके उद्देश्यकी पूर्ति अपने-अपने ढंगसे करते हैं।

६२—मुख्य संघात स ग प का होता है जिसमें सं भी मिला देते हैं। इसे गुरु-संघात कहते हैं। दूसरा सघात स ग् प का होता है जिसे लघु-संघात कहते हैं। सघातका आधार अन्तराल है, निरपेक्ष स्वर नहीं। जैसे, गुरु-संघातके तीन स्वर चाहे किसी भी नामके हों, चाहे किसी भी तारताके हो, इनमे पारस्परिक अंतराल स—ग—प के जैसा होना चाहिए, जो (स ‿ ग) ५/४ और (ग ‿ प) ६/५ है। अगर म को संघातका पहला स्वर माना जाय तो गुरुसघातके लिए दूसरा स्वर ध (५/३) और तीसरा सं (२) होगा। क्योंकि—
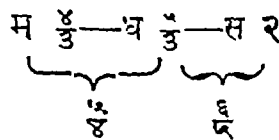
गुरू और लघु दोनों संघातोंसे, उलट-पलटकर दो-दो संघात और बनते हैं जिनके अन्तराल भिन्न होते हैं। उलटनेका नियम सीधा है—नीचेके स्वरको एक सप्तक ऊपर चढा दिया जाता है। जैसे—

(१) गुरु-संघात—

(क) स ग प

५/४ ६/५

(ख) ग प स

६/५ ४/३

(ग) प स गं

४/३ ५/४

(ख) और (ग) में पहले स्वरको 'स' माननेपर (ख) स ग॒ ध॒ और और (ग) स म ध हो जायगा।

(२) लघु-संघात —

(क) स ग॒ प

६/५ ५/४

(ख) ग॒ प स

५/४ ४/३

(ग) प स गं॒

४/३ ६/५

(ख), (ग) में पहले स्वरको 'स' माननेसे—(ख) स ग ध (ग) स म ध॒ होता है।

ऊपर दिये हुए नियमसे अन्य और संघात नहीं बन सकते। क्योंकि गुरु-संघात (१) और लघु-संघात (२) के (ग) में अगर प को एक सप्तक ऊपर उठावें तो फिर (क) संघात बन जाता है।

इस तरह कुल ६ संघात हुए; जैसे—

(१) गुरु-संघात—[क] स ग प स

[ख] स ग् ध् सं

[ग] स म ध स

(२) लघु-संघात—[क] स ग् प सं

[ख] स ग ध स

[ग] स म ध् सं।

इन दोनों प्रकारके संघातोंके उपयोगका नियम यह है कि गुरु ग्रामके रागोंमें गुरु संघातोंका व्यवहार होता है और लघु ग्रामके रागोंमें लघु संघातों का।

ऊपरके सभी संघात इष्ट संघात माने जाते हैं, क्योंकि इनके सभी स्वरोंका स से संवाद है और वे आपसमें भी संवादी हैं। इनमें कोई अन्तराल ऐसा नहीं है जिसमें अनिष्ट डोल हो। अगर स म प सं संघात बनाया जाय तो सभी स्वरोंका स से तो संवाद होगा पर म और प परस्पर विवादी हो जायँगे। इसलिए ऐसा संघात इष्ट नहीं माना जाता।

६२—गुरु-संघात और लघु-संघात दोनों ही इष्ट माने जाते हैं। (१) क और (२) कको देखनेसे पता चलता है कि दोनोंके अन्तराल भी एक ही हैं—सिर्फ क्रममें अन्तर है। फिर भी दोनोंके रूप-गुणमें बहुत अन्तर पड़ जाता है। गुरु-संघात खुला हुआ, प्रसन्न और दृढ माना जाता है। लघु-संघातका प्रभाव करुण, खिन्न और विचलित होता है। सिर्फ अन्तरालके क्रममें अन्तर होनेसे दोनोंके गुणमें इतना अन्तर क्यों हो, यह पहले लोगोंकी समझमें नहीं आता था। हेल्महोज़ने इस गुत्थीको परिणामि स्वरोंकी धारणासे सुलझाया। इन दोनो संघातोंके अन्तराल एक होते हुए भी दोनोंके शैघ्रिक स्वरोंमे बहुत अन्तर है। यह नीचेके विवरणसे स्पष्ट होगा।

१—गुरु-संघात—

(क) स ग प सं

$१ \quad \frac{५}{४} \quad \frac{३}{२} \quad २$

शै०—$\frac{१}{४}$, $\frac{१}{२}$, १, $\frac{१}{४}$, $\frac{३}{४}$, $\frac{१}{२}$,

या १, $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{२}$, $\frac{३}{४}$,

इसमें १, $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{४}$ क्रमशः स, स॰ स॰॰, हैं जो स को पुष्ट करते हैं और $\frac{३}{४}$ प॰ है जो प को पुष्ट करता है, कोई नया स्वर पैदा नहीं होता।

(ख) स ग् ध् सं

$१ \quad \frac{६}{५} \quad \frac{८}{५} \quad २$

शै०— $\frac{१}{५}$, $\frac{३}{५}$, १, $\frac{२}{५}$, $\frac{४}{५}$, $\frac{२}{५}$

या $\frac{१}{५}$, $\frac{२}{५}$, $\frac{४}{५}$, १; $\frac{३}{५}$

इनमें १ स को पुष्ट करता है; $\frac{३}{५}$ ग्॰ है जो ग् को पुष्ट करता है, $\frac{४}{५}$, $\frac{२}{५}$ $\frac{१}{५}$ क्रमश ध्॰ ध्॰॰ ॰ध्॰॰ हैं जो ध् को पुष्ट करते हैं इनमें कोई नया स्वर नहीं है।

(ग) स म ध सं

$१ \quad \frac{४}{३} \quad \frac{५}{३} \quad २$

शै०—$\frac{१}{३}$, $\frac{२}{३}$, १, $\frac{१}{३}$, $\frac{२}{३}$, $\frac{१}{३}$

या $\frac{१}{३}$, $\frac{२}{३}$; १

इसमे १ स को पुष्ट करता है; $\frac{२}{३}$, $\frac{१}{३}$ क्रमश म॰, म॰॰ हैं जो म को पुष्ट करते हैं। इसमें भी कोई नया स्वर नहीं है। अर्थात् गुरु-संघातके तीनों ही भेदोंमें शैषिकोंके कारण कोई भी नया स्वर नहीं पैदा होता।

२—लघु-संघात—

(क) स ग् प सं

$१ \quad \frac{६}{५} \quad \frac{३}{२} \quad २$

शै०—$\frac{१}{५}$, $\frac{१}{२}$, १, $\frac{३}{१०}$, $\frac{४}{५}$, $\frac{१}{२}$

या $\frac{१}{५}$, $\frac{४}{५}$, $\frac{३}{१०}$; १

इनमें १ स और $\frac{३}{१०}$ ग॒ हैं जो स और ग् को पुष्ट करते हैं।
र $\frac{४}{५}$, $\frac{१}{५}$ क्रमश ध॒ ध॒ हैं जो नये स्वर हैं।

(ख) स ग ध सं
१ $\frac{५}{४}$ $\frac{५}{३}$ २

शै०—$\frac{१}{४}$, $\frac{२}{३}$, १, $\frac{५}{१२}$, $\frac{३}{४}$, $\frac{१}{३}$
या $\frac{१}{४}$, १; $\frac{५}{१२}$; $\frac{१}{३}$, $\frac{२}{३}$; $\frac{३}{४}$

इनमें १ और $\frac{१}{४}$ क्रमश स, स॒ हैं और $\frac{५}{१२}$ ध॒ है, जो स और ध को पुष्ट करते हैं। $\frac{२}{३}$, $\frac{१}{३}$ क्रमश म॒, म॒ हैं और $\frac{३}{४}$ प॒ है। ये दोनों ही नये स्वर हैं।

(ग) स म ध् सं
१ $\frac{४}{३}$ $\frac{८}{५}$ २

शै०—$\frac{१}{३}$, $\frac{३}{५}$, १, $\frac{४}{१५}$, $\frac{२}{३}$, $\frac{२}{५}$
या १; $\frac{२}{३}$, $\frac{१}{३}$; $\frac{२}{५}$; $\frac{३}{५}$; $\frac{४}{१५}$

इसमें १ स है, $\frac{२}{३}$, $\frac{१}{३}$ क्रमश म॒, म॒ हैं और $\frac{२}{५}$ ध॒ है। ये स म ध को पुष्ट करते हैं। पर $\frac{३}{५}$ ग॒ और $\frac{४}{१५}$ र॒ हैं जो नये स्वर हैं।

अर्थात् लघु-संघातके तीनों ही भेदोमे शैषिकके कारण नये स्वर पैदा हो जाते हैं।

इन नये स्वरोंके कारण ही लघु-संघात गुरु-संघातसे भिन्न हो जाता है औ दोनों संघातोंसे भिन्न-भिन्न भावोंका उदय होता है।

पर बराबर इष्ट संघातोका ही उपयोग होनेसे संगीत अरुचिकर हो जाता है। फिर भावो और रसोंके भेद अनेक हैं जो सिर्फ इष्ट संघातोंसे ही नहीं व्यक्त किये जा सकते। इसलिए अनेक अनिष्ट संघातोंका भी व्यवहार होता है जो संघातोंमें अनिष्ट स्वरोंके समावेशसे बनाये जाते हैं। पर इनका व्यवहार क्षणिक होता है, जो तुरत इष्ट संघातमें बदल दिये

जाते हैं। यह ठीक वैसा ही है जैसा भारतीय संगीत-कलाके रागोंमें विवादी स्वरोंका या रागके अलापमें तिरोभाव और आविर्भाव का प्रयोग† । पर 'संहति' में अनिष्ट संघात और रागमें विवादी या तिरोभाव-आविर्भावका प्रयोग कहाँ, कब और कितनी देरतक होना चाहिए, यह सिद्ध कलाकार ही जानते हैं। क्योंकि इनका समुचित प्रयोग न होनेसे संहति नष्ट हो जाती है, राग भ्रष्ट हो जाता है और रसके बदले रसाभास पैदा होता है।

'संहति' के मार्गसे पाश्चात्य देशोंमें सामूहिक संगीतका विकास हुआ। 'राग' के मार्गसे हिन्दुस्तानमें वैयक्तिक संगीत आगे बढ़ा। पर पाश्चात्य संगीतमें जिस प्रगति और विकासका उत्साह दीख पड़ता है वह भारतीय संगीतमें नहीं। इसका मुख्य कारण यह है कि पाश्चात्य पद्धतिकी 'संहति' को विज्ञानका आधार है; पर हिन्दुस्तानी पद्धति अभी भी सिर्फ कलापर निर्भर है। यदि भारतीय संगीतज्ञ अपनी पद्धतिके वैज्ञानिक आधार और सम्भावनाओंको समझें और पाश्चात्य पद्धतिके सिद्धान्तोंको भी निष्पक्ष भावसे जाननेकी चेष्टा करें तो भारतीय संगीतमें नई भावना, नई प्रगति आ सकती है।

---

† यमन-कल्याणमें 'म', गौड़ सारंग, छायानट आदिमें 'नृ', भैरवीमें 'म' आदिका प्रयोग विवादी रूपमें कभी कभी होता है। वैसे ही भैरवके अलापमें इससे मिलते-जुलते राग रामकलीका मुँह दिखाकर भैरवका 'तिरोभाव' करते हैं; पर तुरत ही भैरवका मुँह दिखाकर इसका आविर्भाव करते हैं।

१२—ग्राम-रचना-विधि

६३. पिछले परिच्छेदोंमें ग्रामका विवरण दिया गया है; और उनके स्वरोंकी इष्टता अनिष्टताका विचार भी किया गया है। पर जिन ग्रामोंका प्रसङ्ग पीछे आया है उनके अतिरिक्त अनेक ऐसे ग्राम होते हैं जिनका स्वर-प्रबन्ध एक-दूसरेसे भिन्न होता है। देश-देशमें आज भी ऐसे अनेक ग्रामोंका प्रचार है जिनके रूप एक-दूसरेसे भिन्न हैं। यह रूप-भेद उनकी रचना-विधि पर निर्भर है।

मुख्यत ग्राम-रचनाकी प्रक्रियाएँ तीन प्रकारकी हैं; जैसे—(१) प्राकृतिक (२) चक्रिक और (३) संक्रमिक। शायद ऐतिहासिक दृष्टिसे यह क्रम उलटा होना चाहिए। पर वर्णनकी सुविधाके लिए इसी क्रमका अनुसरण किया जायगा।

६४—(१) प्राकृतिक प्रक्रिया:—इस प्रक्रियाका सिद्धान्त स्वर-संवादके प्रसङ्गमे बताया जा चुका है। यहाँ उसे और भी स्पष्ट किया जाता है। इस प्रक्रियाका आधार यह वैज्ञानिक तथ्य है कि प्रत्येक ध्वनिमें मौलिकके साथ अनेक उपस्वर होते हैं जो सङ्गीतोपयोगी ध्वनियोंमें मौलिकके आवर्त्तक हैं (अनु. २६)। सङ्गीतका ग्राम किसी एक ध्वनिके इन आवर्त्तक उपस्वरोंसे ही निकलता है।

सामान्यत किसी ध्वनिमें १५वें १६वें आंशिक तक बली होते हैं। आगेके आंशिक उत्तरोत्तर दुर्बल ही होते चले जाते हैं। इसलिए यदि १६वें आंशिक तक ही विचार किया जाय तो किसी भी नादके मौलिक और उपस्वरोंका क्रमबद्ध रूप उद्भूत स्वरोंके साथ इस प्रकार होगा —
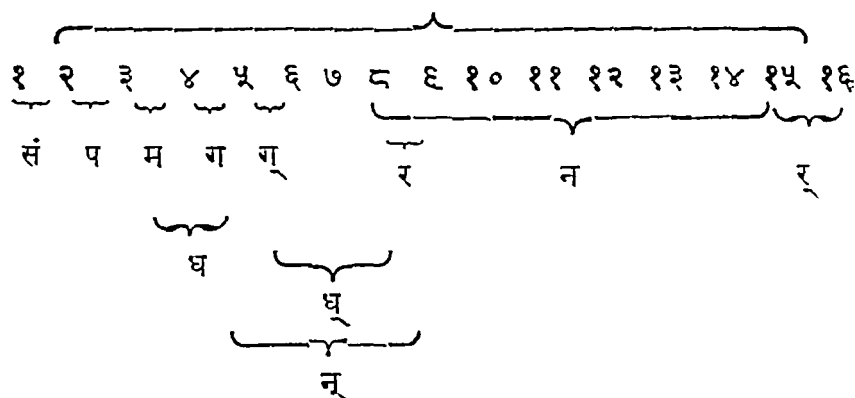
इन्हीं उपस्वरोंके पारस्परिक अनुपातसे ग्रामके ७ शुद्ध और चार विकृत स्वर निकल आते हैं। ऊपर बताये हुए स्वरोंको क्रमबद्ध करने पर ग्राम का संस्थान ऐसा निकलता है —

स	र्‌	र	ग्‌	ग	म	प	ध्‌	ध	न्‌	न	स
१	$\frac{१६}{१५}$	$\frac{९}{८}$	$\frac{६}{५}$	$\frac{५}{४}$	$\frac{४}{३}$	$\frac{३}{२}$	$\frac{८}{५}$	$\frac{५}{३}$	$\frac{९}{५}$	$\frac{१५}{८}$	२

इसमें तीन तरह के अंतराल पाये जाते हैं—एक गुरुस्वर $\frac{९}{८}$, दूसरा लघुस्वर $\frac{१०}{९}$ और तीसरा अर्धस्वर $\frac{१६}{१५}$।

यह प्राकृतिक ग्राम है जिसका विचार पहले किया जा चुका है (अनु. ५५)। इसी ग्रामके स्वर मनुष्य और पशु-पक्षियोंके कण्ठसे अनायास निकलते हैं क्योंकि इसका आधार प्राकृतिक अभिव्यक्ति है। इसीलिए वैज्ञानिक इस ग्राम को शुद्ध, प्रामाणिक और आदिम मानते हैं। इस ग्रामके प्रत्येक स्वर का षड्जसे आवर्त्तक सम्बन्ध होता है।

इस ग्राममें र्‌ और न का निर्णय अनुमानसे ही किया गया है; क्योंकि यदि इतने ऊँचे आवर्त्तक किसी नादमें मौजूद हों तो वह कटु और अनिष्ट हो जायगा। इसलिए, ग्राम को पूरी तरह आवर्त्तक रखनेके लिए यदि इन स्वरोंको निकाल दें तो ग्राममें थोड़ेसे स्वर रह जाते हैं जिनसे

संगीत पूरी तरह सम्पन्न नहीं हो सकता। यह इस प्रक्रियाकी एक त्रुटि है। इसके अतिरिक्त बहुतेरे आवर्त्तकोंका ग्राम-रचनामें उपयोग ही नहीं होता। सप्तम आंशिकका उपयोग सम्भवत भारतीय संगीतमें कभी-कभी होता है, पर बहुत ही अल्प।

६५—(२) चक्रिक प्रक्रिया—इस प्रक्रियाका आधार पञ्चम-संवाद या स-प सवाद है। स से जैसे प निकलता है वैसे ही प को आधार मानकर इसका पञ्चम ले तो दूसरे सप्तकका र निकलेगा और उसी तरह र से ध निकलेगा। इस प्रकार यह शृङ्खला आगे बढ़ती जायगी; जैसे—

स → प → रं → धं → गं → नं →.............

इस शृङ्खलामे प्रत्येक स्वरका मान निकालनेकी विधि नीचे दी जाती है·—

प्रत्येक कड़ी चढ़ानेके लिए पूर्व स्वरके मानको $\frac{३}{२}$ से गुना किया जाता है। जब स्वर उपरले सप्तकोंमें चला जाय तो उसे एक सप्तक उतारनेके लिए २ से, ऐसे ही दो सप्तक उतारनेके लिए ४ से भाग दिया जाता है। जैसे—

स १ → प ($\frac{३}{२}$) → रं ($\frac{९}{४}$) → धं ($\frac{२७}{८}$) → गं ($\frac{८१}{१६}$) →···

$$\text{मध्य सप्तकका } र = \frac{रं}{२} = \frac{९}{४} \times \frac{१}{२} = \frac{९}{८}$$

$$\text{और } ग = \frac{गं}{४} = \frac{८१}{१६} \times \frac{१}{४} = \frac{८१}{६४}।$$

सेवर्टकी विधिमे एक पञ्चम चढानेके लिए पूर्व स्वरके सेवर्टमानमे प का १७६ से॰ जोड़ना और एक सप्तक उतारनेके लिए ३०१ से॰ घटाना होगा। यदि दो सप्तक उतारना हो तो ६०२ घटाना होगा। जैसे.—

स ०→प (१७६ से॰) →रं (३५२) →धं (५२८) →गं (७०४)→

मध्य सप्तकका र=रं—३०१=५१ से॰

और ग=गं—६०२=१०२ से॰।

इस प्रक्रियामें स से जैसे पञ्चमके आरोही चक्रके क्रमसे स्वर निकलते

हैं वैसे ही पञ्चमके अवरोही चक्रके क्रमसे भी स्वर निकलते हैं। जैसे स से एक पञ्चम उतरने पर म़् $\frac{२}{३}$ और म़् से एक पञ्चम उतरने पर ऩ् $\frac{४}{९}$ मिलते हैं जिन्हें क्रमश एक सप्तक और दो सप्तक ऊपर चढ़ाने पर म $\frac{४}{३}$ और न् $\frac{१६}{९}$ की निष्पत्ति होती है।

किसी स्वरसे एक पञ्चम चढकर एक सप्तक उतरनेका अर्थ है उस स्वरसे एक मध्यम उतरना। उसी प्रकार एक पञ्चम उतरकर एक सप्तक चढनेका अर्थ है एक मध्यम चढना। एक मध्यम चढने या उतरनेके लिए पूर्व स्वरके भिन्नाकमें $\frac{४}{३}$ से क्रमश गुना या भाग करना होगा और सेवर्टमें उस स्वरमे १२५ से जोड़ना या घटाना होगा। इस रीतिसे ऊपरकी गणना, संक्षिप्त करके, एक सप्तकतक सीमित रखी जा सकती है; जैसे —

१—आरोही पञ्चम-चक्र—

स→प $\frac{३}{२}$ →र ($\frac{३}{२}$ − $\frac{४}{३}$=) $\frac{९}{८}$→ ध $\frac{२७}{१६}$→ ग ($\frac{२७}{१६}$ − $\frac{४}{३}$=) $\frac{८१}{६४}$

या सेवर्ट मे—

स० → प १७६ → र (१७६–१२५=) ५१ → ध २२७ → ग (२२७–१२५=) १०२

२—अवरोही पञ्चम-चक्र—

स १ → म $\frac{४}{३}$ → न् $\frac{१६}{९}$ → ग्($\frac{१६}{९}$ − $\frac{३}{२}$=) $\frac{३२}{२७}$ → ध् $\frac{१२८}{८१}$...

या सेवर्ट मे—

स०→ म १२५→ न् २५०→ ग् (२५०—१७६=) ७४→ ध् १९९

ऊपरकी गणनासे चक्रिक प्रक्रियामें नीचे दिया हुआ ग्राम वनता है —

स	र	ग	प	ध	न	सं
१	$\frac{९}{८}$	$\frac{८१}{६४}$	$\frac{३}{२}$	$\frac{२७}{१६}$	$\frac{२४३}{१२८}$	२

इस ग्राममे शुद्ध म $\frac{४}{३}$ का अभाव है। पर इस अभावकी पूर्त्ति इस शृङ्खलाको स से एक पञ्चम नीचेसे शुरू करनेपर या एक स्वर स से

अवरोही क्रमसे लेनेपर हो जाती है। स से एक पञ्चम नीचे म, $\frac{2}{3}$ होगा जिसे एक सप्तक ऊपर चढ़ानेपर म $\frac{4}{3}$ की निष्पत्ति हो जायगी। अब पूरा ग्राम इस प्रकार होगा.—

स	र	ग	म	प	ध	न	सं
१	$\frac{9}{8}$	$\frac{81}{64}$	$\frac{4}{3}$	$\frac{3}{2}$	$\frac{27}{16}$	$\frac{243}{128}$	२

अन्तराल: $\frac{9}{8}$, $\frac{9}{8}$, $\frac{256}{243}$, $\frac{9}{8}$, $\frac{9}{8}$, $\frac{9}{8}$, $\frac{256}{243}$

इस ग्राममें दो ही प्रकारके अन्तराल हैं—एक गुरु स्वर $\frac{9}{8}$, दूसरा पायथागोरसका 'हेमीटोन' या लीमा जो अर्धस्वरसे एक कोमा छोटा है।

इस शृङ्खलाको और भी आगे बढाया जा सकता है। जैसे न का पञ्चम तीव्र म (म') और म' का पञ्चम तीव्र स (स') होगा। इसी प्रकार आगे बढ़ाते जानेसे १२ कड़ियोंमें चक्र पूरा हो जायगा अर्थात् ग्रामके १२ स्वर मिल जायेंगे। इसी बातको चक्रके द्वारा बताया गया है।
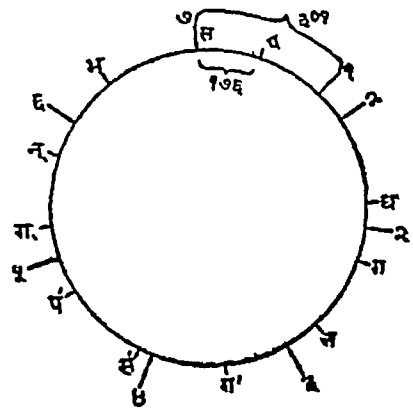
आ० २३

इस चक्रका अधिक सूक्ष्म विचार करनेपर पता चलेगा कि यथार्थमें यह चक्र वृत्तकी तरह पूरा नहीं होता बल्कि सर्पकी कुण्डलीकी तरह घूमता ही जाता है। यह चक्र पूरा तभी हो सकता है जब १३ वाँ स्वर ठीक आरम्भिक स पर आन कर पड़े, जहाँसे चक्र आरम्भ हुआ था। पर ऐसा नहीं होता। यह गणितकी सामान्य क्रियासे ही विदित हो जायगा। चक्रमें सप्तकोंके अंक (१, २, ३...) बैठाये हुए हैं जिनमें पञ्चम-संवादी स्वर फैले हुए हैं। यह प्रत्यक्ष है कि इन १२ स्वरोंका विस्तार ७ सप्तकोंके बराबर है। सेवर्टमें स—प का मान

१७६ और एक सप्तकका मान ३०१ है। इस चक्रको पूरा होनेके लिए १२ × प को ७ × सं के बराबर होना चाहिए। पर ऐसा नहीं है। हिसाबसे इन दोनोंका अंतर ५ सेवर्टके बराबर है। अर्थात् १३ वाँ स्वर स पर न पड़कर इससे एक कोमा ऊँचा पड़ता है। इसलिए वृत्त पूरा न होकर आगे नया चक्र शुरू होता है जो सर्पिल होकर घूमता ही जाता है। ऊपर निकले हुए अंतरको 'पायथागोरसका कोमा' कहते हैं जो अगर यह गणना अधिक शुद्धतासे की जाय तो ५.८८ सेवर्टके बराबर होगा। 'कोमा डायसिस' इससे कुछ छोटा होता है जो गुरु स्वर ९/८ और लघु स्वर १०/९ का अन्तर ८१/८० या ५.४ सेवर्ट है।

ग्रीस देशमें पायथागोरसने इस प्रक्रियाका उपयोग किया था। चीन देशके स्वर-ग्रामकी रचना भी इसी प्रक्रियासे हुई है। वहाँ यह चक्र ६० स्वरोंतक ले जाया जाता है और इसलिए वहाँ एक सप्तकमें ६० स्वर होते हैं। 'एक सप्तकमें इन साठ स्वरोंके प्रमाण स्वरूप, प्राचीनकालसे ही धातुकी ऐसी नलियाँ बनानेकी प्रथा है जिनका मान बड़ा ही सच्चा होता है और जो निश्चित तारताकी ध्वनियाँ पैदा करती हैं जिन्हें 'लिउ' कहते हैं। यह चीनी संगीतका अनिवार्य आधार है।'

भारतीय संगीतके इतिहासमें दाक्षिणात्य पण्डित रामामात्यने और उनके अनुयायी सोमनाथने इस प्रक्रियाका उपयोग वीणाके स्वर-निर्धारणमें किया है। इस प्रक्रियासे प्राप्त स्वरोंको ही उन्होंने 'स्वयंभू-स्वरा' कहा है। उन्होंने स-पके साथ-ही-साथ स-म संवाद का भी उपयोग किया है जो स-प का ही अवरोही है।

६६—(२) संक्रमिक प्रक्रिया—इस प्रक्रियामें एक सप्तकके विस्तारको कृत्रिम रूपसे छोटे-छोटे अन्तरालोंमें बाँट दिया जाता है। पर इस विभाजनका एकाक या प्रमाण प्राकृतिक स्वरोंसे ही प्राप्त होता है। चक्रिक प्रक्रियामें जैसे स्वरोंकी शृङ्खला चक्रमें घूमती है वैसे ही संक्रमिक

प्रक्रियामें सप्तकके विस्तारको एक सरल रेखा मानकर उसे टुकड़ोंमें बाँटा जाता है। आगेके उदाहरणसे यह प्रक्रिया स्पष्ट हो जायगी।

म और प, ये दो स्वर प्राय: उतने ही प्राकृतिक हैं जितना स—स। इसलिए स्वभावत: म और प, स स के बीच सरलतासे बैठाये जा सकते हैं।
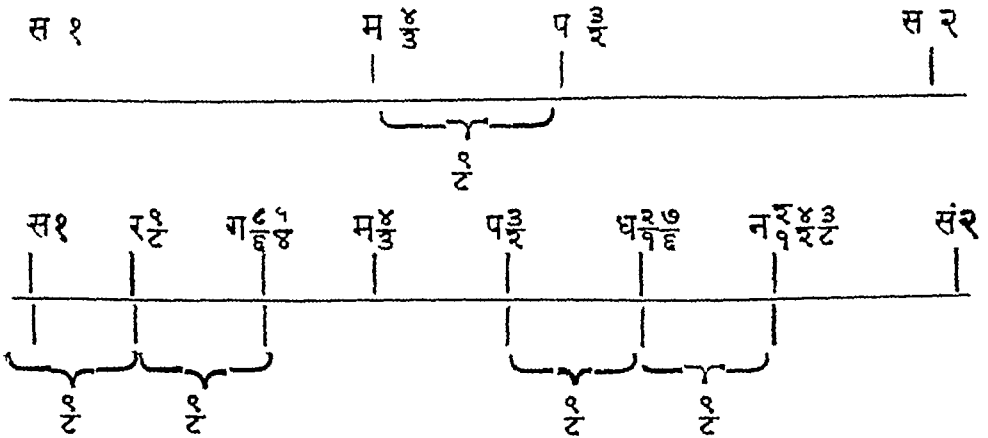
इन दो स्वरोंका अंतराल भी स से $\frac{4}{3}$ और $\frac{3}{2}$ निश्चित है। इन दो स्वरोंको स-सं के बीच बैठानेसे इनके बीचका अंतराल $\frac{9}{8}$ निकलता है। अब देखा जाता है कि स और म तथा प और सं के बीचका अंतराल बहुत बड़ा है जिसे छोटे अतरालोंमें बाँटना आवश्यक है। इस क्रियाके लिए म—प अंतराल $\frac{9}{8}$ को ही प्रमाण माना जा सकता है। अत स-म मे से $\frac{9}{8}$ का टुकड़ा काट लें जो र होगा और फिर एक टुकड़ा और $\frac{9}{8}$ का काट लें जो ग होगा। इसी प्रकार प—सं अंतराल में से भी ध और न का टुकड़ा काट लें। इस क्रियाके बाद देखेंगे कि ७ स्वरोंका ग्राम तैयार हो जाता है। यह ग्राम वही है जो चक्रिक प्रक्रियासे प्राप्त हुआ था।

पर इस प्रक्रियाका अधिकार यहीं तक समाप्त नहीं होता। पूरा ग्राम तैयार होनेपर ग और म के बीचका एक नया अंतराल मिल जाता है जिसका उपयोग नये स्वरोंकी उत्पत्तिमें किया जा सकता है। यह अंतराल $\frac{256}{243}$ का है जिसे 'लीमा' कहते हैं। अब किसी स्वरमे से एक लीमा काट-

कर या उसमें एक लीमा जोड़कर उसे कोमल या तीव्र किया जा सकता है। यदि एक स्वर अर्थात् $\frac{९}{८}$ में से एक लीमा काटें तो शेष अंतरालका मान

$$\frac{९}{८} \times \frac{२४३}{२५६} = \frac{२१८७}{२०४८}$$

होता है जिसे 'ऍपोटोम' कहते हैं। यह अर्धस्वर $\frac{१६}{१५}$ के लगभग बराबर है। अर्धस्वरका मान सेवर्टमें २८ होता है और 'ऍपोटोम' का २८·६। दोनोंका अंतर सिर्फ ·६ सेवर्ट है। पर अब यह एक नया अंतराल मिल गया जिसका उपयोग स्वरोंके उतार-चढ़ावमें किया जा सकता है। जैसे म से लीमाके बदले एक ऍपोटोम या अर्धस्वर नीचे उतरनेसे अब पायथागोरसका गान्धार ($\frac{८१}{६४}$) नहीं बल्कि प्रकृत गान्धार ($\frac{५}{४}$) मिलेगा। प्रकृत गान्धार प्राप्त होनेपर लघु स्वर $\frac{१०}{९}$ और लघु स्वर और गुरु स्वरके अंतरसे कोमा $\frac{८१}{८०}$ आप-से-आप निकल आते हैं। फिर लघु स्वर $\frac{१०}{९}$ और अर्धस्वर $\frac{१६}{१५}$ के अंतरसे लघु अर्धस्वर $\frac{२५}{२४}$ की निष्पत्ति होती है। सक्रमिक प्रक्रियामें इन सारे अंतरालोंका उपयोग स्वरोंके उतार-चढ़ावमें किया जाता है। इन्हें एक साथ नीचे दिया जाता है —

कोमा	$\frac{८१}{८०}$=५ सेवर्ट (लगभग)।
लघु अर्धस्वर	$\frac{२५}{२४}$=१८ ,,
लीमा	$\frac{२५६}{२४३}$=२३ ,,
अर्धस्वर	$\frac{१६}{१५}$=२८ ,,

अर्धस्वर और लघु स्वरकी निष्पत्ति सीधे तरीक़ेसे भी होती है। क्योंकि यह अनुभव-सिद्ध और नियमित है कि यदि सक्रमके मार्गसे षड्जसे ऋषभ लेकर गान्धारपर जायँ तो चढा गान्धार $\frac{८१}{६४}$ मिलेगा और यदि सवादके मार्गसे ऋषभका लंघन करके षड्जसे एक वार ही गान्धारपर जायँ तो प्रकृत गान्धार $\frac{५}{४}$ मिलेगा। एक वार प्रकृत गान्धार मिल जानेपर लघु स्वर और अर्धस्वरकी निष्पत्ति अनायास होती है।

ऊपरके विचारोंसे यह परिणाम निकलता है कि सक्रमिक प्रक्रियाका

अधिकार-क्षेत्र सबसे अधिक व्यापक और सार्थक है क्योंकि इसमें प्राकृतिक और चक्रिक प्रक्रियाओंके सभी अंतरालोंका उपयोग होता है।

६७—प्राचीन यूनानी पद्धतिमे इसी प्रक्रियासे ग्रामकी रचना होती थी। इसमें सारे सप्तकका एक साथ विचार नहीं होता था। एक चतु संघात (स र ग म) के आवेष्टनको अचल मान बीचके दो स्वरोको विचलित करके भिन्न-भिन्न ग्रामोंकी रचना की जाती थी। एक चतु संघातमे स और म अचल स्वर हैं जो इसके आवेष्टनको अचल बनाये रखते हैं। बीचके दो स्वर र और ग चल हैं जो कोई भी स्थान ग्रहण कर सकते हैं और चतु संघातमें इनकी आपेक्षिक स्थिति ही पर ग्रामका रूप निर्भर है। पूर्व चतु संघातमे स और म और उत्तर चतु संघातमे प और सं अचल हैं जो दोनो चतु सघातोके आवेष्टनको भी अचल रखते हैं। इसीलिए अरिस्टाट्लने इन्हें 'संवादका शरीर' बताया है।

चतु संघातके विभाजनकी विधिके अनुसार प्राचीन पद्धतिमे ग्रामकी तीन जातियाँ मानी जाती थी—(१) द्विस्वरक (डायटोनिक) (२) अर्धस्वरक (क्रोमेटिक) और (३) श्रुतिमूलक (एनहार्मोनिक)।

१—द्विस्वरकमे स—म के बीचका देश दो गुरु स्वर और एक अर्धस्वर या लीमामें बाँटा जाता था। उपर्युक्त पायथागोरसका ग्राम इसी जातिका है।

२—अर्धस्वरकमे एक टुकड़ा कोमल गान्धार $\frac{6}{5}$ के बराबर होता है, जो लगभग तीन अर्धस्वरके बराबर है और शेष एक स्वर प्राय. दो अर्ध स्वरोंके टुकड़ोमे बॅटा होता है।

३—श्रुतिमूलकमे एक टुकड़ा प्रकृत गान्धार $\frac{5}{4}$ के बराबर होता है और शेष अर्धस्वर प्राय दो टुकड़ोंमे बॅटा होता है। यह छोटा टुकड़ा एक स्वरका चतुर्थांश माना जाता है। इसीलिए इस जातिको श्रुतिमूलक कहा गया है।

किसी चतु सघातमे इन टुकड़ोंका क्या क्रम है, इस बातपर एक-एक जातिके अनेक भेद हो सकते हैं।

इन जातियोंमें मुख्य बात यह है कि द्विस्वरकमें चढा गान्धार ८१/६४ अर्धस्वरकमें कोमल गान्धार ६/५ और श्रुतिमूलकमें प्रकृत गान्धार ५/४ का प्रयोग होता है। इससे यह धारणा भी सिद्ध हो जाती है कि संक्रमसे गान्धारपर जानेमें विवादी गान्धार ८१/६४ मिलता और लघनसे गान्धारपर जानेमें संवादी गान्धार ५/४ या कोमल गान्धार ६/५ मिलता है। यह स्वाभाविक क्रिया है जिसका नियन्त्रण कण्ठ और कानकी रचनासे होता है।

प्राचीन यूनानी ग्रामकी तरह ही भारतीय, अरबी और फारसी ग्राम भी सक्रमिक प्रक्रियासे ही तैयार हुए हैं। आधुनिक भारतीय दाक्षि-णात्य शुद्ध ग्राम स्पष्टत अर्धस्वरक जातिका और उत्तरीय ग्राम द्विस्वरक जातिका है। श्रुतिमूलक जातिके ग्रामोंका भी प्रयोग भारतीय संगीतमें पाया जाता है।

अब यहाँ चक्रिक प्रक्रिया और संक्रमिक प्रक्रियाके स्वरोंकी तुलना की जाती है।

यह बताया जा चुका है कि चक्रिक प्रक्रियामें आरोही क्रमसे १२ कड़ियोंमे चक्र प्राय पूरा हो जाता है। उसी तरह अवरोही क्रमसे भी चक्रको पूरा करनेके लिए १२ कड़ियोंकी आवश्यकता होगी। अगर बताई हुई क्रियासे एक सप्तकमें ही गणना की जाय तो आरोही और अवरोही चक्रोंमें नीचे दिये हुए स्वर निकलेंगे —

१—आरोही चक्र (सेवर्ट में)

स० → प १७६ → र ५१ → ध २२७ → ग १०२ → न २७८ → म′ १५३ → स′ २८ → प′ २०४ → र′ ७९ → ध′ २५५ → ग′ १३० → न′ ३०६ (स ३०१)।

२—अवरोही चक्र (सेवर्ट मे)—

स० → म १२५ → न् २५० → ग् ७४ → ध् १९९ → र् २३ → प् १४८ → स् २७३ → म् ९७ → न्् २२२ → ग्् ४६ → ध्् १७१ → र्् २९६ (सं ३०१)।

संक्रमिक प्रक्रियामे ५ गुरु स्वर (५१ से॰) और २ लीमा (२३ से॰) होते हैं। अब लीमाके प्रमाणसे प्रत्येक स्वरको उतारनेपर ५ कोमल स्वर और मिलेंगे; जैसे, र् (२८), ग् ७६, प् १५३, ध् २०४ और न् २५५। म और सं को एक-एक लीमा उतारनेसे गुरु ग और गुरु न ही मिलेंगे, इसलिए ये नहीं उतारे जा सकते। इस प्रकार ग्राममे १२ स्वर हुए। यह ग्राम सार्वभौम है।

पर यदि उतारनेके बदले प्रत्येक स्वरको एक लीमा चढ़ाया जाय तो ५ नये स्वर मिलेंगे; जैसे स′ २३, र′ ७४, म′ १४८, प′ १६६ और ध′ २५०। ग और न नहीं चढाये जा सकते। इस प्रकार ग्राममे १७ स्वर हुए। फारसी ग्राम इसी प्रकार का है।

यदि प्रकृत गान्धार (५/४) से निकले हुए लघु स्वर (१०/९) या ४६ से॰ के पैमानेसे प्रत्येक स्वरको चढावे तो ५ स्वर और निकलेंगे जो शुद्ध गुरु स्वरोंसे एक-एक कोमा (५ से॰) उतरे हुए होंगे; जैसे, स″ (४६), र″ (६७), म″ (१७१), प″ (२२२) और ध″ (२७३)। ग-म और न-सं अंतरालोंके एक-एक लीमा होनेसे इनमे ग″ और न″ के स्थान नहीं आ सकते। इसलिए अब ग्राममें २२ स्वर हुए। प्राचीन हिन्दू ग्राम इसी प्रकारका है।

आगेकी सारिणीसे पता चलेगा कि इन दोनों ही प्रक्रियाओंसे निकले हुए स्वर एक ही हैं; केवल चक्रिक ग्राममें दो स्वर अधिक हैं। ये दो स्वर भी संक्रमिक ग्राममे आ सकते हैं; पर इन प्रक्रियाओंकी युक्तिसे ही यह सिद्ध है कि चक्रिक ग्राममे २४ स्वरोंका और संक्रमिक ग्राममे २२ स्वरोंका होना स्वाभाविक है। यो तो यह मानना ही पड़ेगा कि इन दोनों ही प्रक्रियाओंमे कितने प्रकारके ग्राम हो सकते हैं, इसकी कोई निर्दिष्ट सीमा नहीं है।

नीचेकी सारिणीमें दोनों ही प्रक्रियाओंसे निकले हुए स्वर, तारता-क्रमसे, दिये जाते हैं जिससे तुलनामें सरलता होगी।

सारिणी ६

चक्रिक ग्राम		सक्रमिक ग्राम	
स्वर	अंतराल (सेवर्ट)	स्वर	अतराल (सेवर्ट)
स	०	स	०
र्	२३	स'	२३
स'	२८	र्	२८
ग्	४६	स''	४६
र	५१	र	५१
ग्	७४	र'	७४
र'	७६	ग्	७६
म्	९७	र''	९७
ग	१०२	ग	१०२
म	१२५	म	१२५
ग'	१३०	—	—
प्	१४८	म'	१४८
म'	१५३	प्	१५३
ध्	१७१	म''	१७१
प	१७६	प	१७६
ध्	१९९	प'	१९९
प'	२०४	ध्	२०४
न्	२२२	प''	२२२
ध	२२७	ध	२२७
न्	२५०	ध्	२५०
ध'	२५५	न्	२५५
स्	२७३	ध''	२७३
न	२७८	न	२७८
र्	२९६	—	—
न' (स)	३०६ (३०१)	सं	३०१

६८—साधृत-ग्राम[1]—इस प्रकारके एक ग्रामकी चर्चा पहले की जा चुकी है जिसमें एक सप्तकमें १२ अर्धस्वर बराबर अंतरालके होते हैं। यह भी बताया जा चुका है कि हिन्दुस्तानी संगीत-समाजमें इस प्रकारके ग्रामकी उपयोगिता सिर्फ़ अचल स्वरवाले वाद्योंमें संगतिके लिए है। यहाँ इस प्रकारके ग्रामो की रचना-विधिपर विचार किया जायगा।

प्राचीन कालमें पाश्चात्य देशोंमें उपर्युक्त पायथागोरसके ग्रामका प्रचार बहुत दिनो तक रहा। उस समय इस ग्रामके हर एक स्वरको स्वरित या षड्ज मानकर अनेक मूर्छनाएँ बनाई जाती थीं जिन्हें 'मोड' कहा जाता था। इस प्रकार अनेक उपग्राम या 'ठाठ' पैदा हो जाते थे जिससे संगीतमें विचित्रता आ जाती थी। आगे चलकर 'संहति' के प्रभावसे सभी मोडोंका लोप होकर केवल गुरुग्राम और लघुग्राम रह गये। इससे संगीतकी विचित्रता जाती रही और इसमें एकरसता आने लगी जो रसज्ञोंके लिए असह्य होती है। इस त्रुटिको यथा-सम्भव दूर करनेके लिए पाश्चात्य सगीतमें एक नई शैलीका प्रादु-र्भाव हुआ।

इस शैलीके अनुसार ग्रामको बिना बदले हुए स्वरित बदलते जानेकी प्रथा चल पड़ी अर्थात् संगीतका आरम्भ यदि स्वरित स से होता है तो बादको विचित्रता लानेके लिए र, ग आदि अन्य स्वरोंमें किसी एकको स्वरित मान लिया जाता है और उसी गानेको उसी ग्राममे इस नये स्वरितसे शुरू किया जाता है। इसमें प्रत्येक स्वर समान रूपसे ऊपर चढ़ जाता इसे 'स्वरित चालन' या 'मोड्युलेशन' कहते हैं। अब यह समझना आसान है कि पायथागोरसके ग्रामके साथ हार्मोनियम

---

१. इस ग्रामका नाम 'साधृत' इसलिए रखा गया है कि प्राचीन शास्त्रों में 'साधारण' शब्द दो स्वरोंकी, दो ग्रामोंकी या दो जातियोंकी संधिके अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। इस ग्रामके भी हरएक स्वर संधिसे ही बने हैं।

या प्यानो जैसे अचल स्वरवाले बाजोंमें यह स्वरित-चालन नहीं हो सकता। इसके लिए अनेक नये स्वरोंकी पटरियाँ बैठानी होंगी। दूसरी बाधा यह आ पड़ी कि संहतिमें इष्ट संघातोंका ही उपयोग होता है जिसमें आवर्त्तक या प्रकृत स्वर ही कामर्में आ सकते हैं। विशेष रूपसे गान्धारका इष्ट होना आवश्यक है। अर्थात् संहतिमें प्रकृत ग ५/४ का प्रयोग होना चाहिए, पायथागोरसके गान्धार (८१/६४) का नहीं।

इन्हीं कारणोंसे पायथागोरसके ग्रामका सदियोंतक पाश्चात्य देशोंमें साम्राज्य रहते हुए भी संहति-मूलक संगीतके आविर्भाव और पटरियोंवाले बाजोंके आविष्कारके बाद नये कृत्रिम ग्रामकी आवश्यकता पड़ी।

१—स्वर-साधृत ग्राम—इस दिशामें पहले प्रयासके फल स्वरूप 'स्वर साधृत ग्राम' की रचना हुई जिसका अधिकार सदियोंतक बना रहा। इस रचनाका उद्देश्य था गान्धारको संवादी बनाना जिससे उपर्युक्त दूसरी त्रुटिकी और कुछ अंशोंमें पहली त्रुटिकी भी पूर्ति होती थी। इसकी प्रक्रिया नीचे दी जाती है —

चक्रिक क्रममें स→प→र→ध→ग इन चार कड़ियोंमें गान्धारकी प्राप्ति होती है जहाँ एक कड़ीका मान स–प के बराबर या १७६ सेवर्ट है। इस गान्धारका मान पहले सप्तकमें १०२ सेवर्ट है। पर प्रकृत गान्धारका मान ५/४ या ९६·९ सेवर्ट है। इन दोनोंका अंतर ५·१ सेवर्ट हुआ। इसलिए प्रकृत गान्धारकी निष्पत्तिके लिए हर कड़ीको ५·१/४ या लगभग १·३ सेवर्ट छोटा करना पड़ेगा। अस्तु, पायथागोरसके चक्रकी हर कड़ी १७६ के बदले १७४·७ से· होना चाहिए। इस तरह प का मान अब १७४·७ से·। अत र का मान १७४·७+१७४·७=३४९·४ से· हुआ। इस र को उतारकर पहले सप्तकमें लानेपर इसका मान ३४९·४—३०१=४८·४ से· होता है। इस प्रमाणसे १२ स्वरोंका चक्र पूरा करने-पर और हर स्वरको पहले सप्तकमें उतारनेपर नीचे दिया हुआ ग्राम तैयार होता है —

सारिणी १०

स्वर	अन्तराल स से सेवर्ट	पारस्परिक	सात स्वर	स—ग
स	०			
		१८·९		
स'	१८·९		४८·४	
		२९·५		
र	४८·४			
		२९·५		९६·८
ग्	७७·९		४८·४	
		१८·९		
ग	९६·८			
		२९·५	२९·५	
म	१२६·३			
		१८·९		
म'	१४५·२		४८·४	
		२९·५		
प	१७४·७			
		१८·९		
प'	१९३·६		४८·४	
		२९·५		
ध	२२३·१			९६·८
		२९·५		
न्	२५२·६		४८·४	
		१८·९		
न	२७१·५			
		२९·५	२९·५	
सं	३०१			

सारिणीके निरीक्षणसे पता चलता है कि इस ग्राममें गान्धार तो प्रकृत (५/४) है पर इसके गुरु स्वर और लघु स्वर, इन दोनों अवयवोंको

मिलाकर बराबर हिस्सोंमें बाँट दिया गया है; इसलिए गान्धारके प्रकृत होनेपर भी द्विस्वरक ग्रामकी तरह स-र और र-ग बराबर हो गये हैं। इसीसे इसे स्वर-साधृत ग्राम कहा जाता था। यहाँ यह ध्यानमें रखनेकी बात है कि यह चक्र भी पहले चक्रकी तरह पूरा नहीं होता और इसलिए इस ग्राममें और भी स्वर घुसाये जा सकते हैं।

इस ग्राममें गान्धार तो संवादी मिल जाता है पर स्वरित-चालन कुछ ही स्वरोंमें सम्भव है। फिर पञ्चम बहुत ही विचलित हो जाता है और प' (ध्) और ऊपरले सप्तकके ग् का अन्तराल $\frac{३}{२}$ से अर्थात् पञ्चम सवादसे बहुत बड़ा हो जाता है। इसे 'उल्फइन्टर्वल' कहते हैं। किसी भी स्वरित-चालनमें इस अतरालसे बचना भी आवश्यक है।

२—सम-साधृत ग्राम—उपर्युक्त कृत्रिम ग्रामकी त्रुटियोंके कारण ही आगे चलकर उसकी जगह सम-साधृत ग्रामका आविष्कार हुआ जो अभीतक प्रचारमें है। इस ग्राममें स्वरित-चालनकी सुविधाके लिए गान्धार-सवादके मोहको त्याग दिया गया। इस ग्रामका पञ्चम भी अपेक्षाकृत अधिक सच्चा हो गया। अर्थात् पहले ग्राममें गान्धारको सच्चा बनानेमें जो विकार एक जगह इकट्ठा हो गया था वह १२ स्वरोंमें बँट गया। इस ग्रामकी रचनाकी प्रक्रिया आगे दी जाती है —

जैसा कि पहले बताया गया है, चक्रिक प्रक्रियामें चक्र वृत्तकी तरह पूरा नहीं होता बल्कि सर्पिल होकर घूमता है। अगर वृत्त पूरा हो जाय अर्थात् चक्रका १३ वाँ स्वर ठीक स पर पड़े तो यह आसानीसे समझा जा सकता है कि बारह-के-बारह स्वर आपसमें बराबर हो जायँगे और फिर कोई भी स्वर स्वरित-चालनमें काम आ सकता है। पर १२ प ७ सप्तकसे ५·८८ सेवर्ट ज़्यादा है। इसलिए वृत्तको पूरा बनानेके लिए यह आवश्यक है कि चक्रकी हर कड़ीमें से $\frac{५·८८}{१२}$=·४९ या लगभग ·५ से· काट लिया जाय। अर्थात् अब चक्रकी हर एक कड़ी १७६·१ के बदले १७५·६

होनी चाहिए। इस प्रमाणसे चक्र पूरा करनेपर १२ अर्ध स्वरोंके अंत-राल परस्पर बरावर होंगे और इनका मान लगभग २५ से॰ के होगा। इस ग्रामकी सारिणी।(७) पहले दी जा चुकी है (अनु॰५४)।

६६—जटिल ग्राम—सम-साधृत ग्राममें स्वरित-चालनकी समस्या तो प्राय हल हो जाती है पर सभी स्वर फिर भी अनिष्ट रहते हैं। इसलिए ऐसे ग्रामकी फिर भी आवश्यकता रहती है जिसमें इन दोनों उद्देश्योंकी सिद्धि हो जाय। यह तो ऊपरकी विवेचनासे स्पष्ट है कि पञ्चम-संवादका चक्र पूरा नहीं होता। इस चक्रको पूरा करनेके लिए ही प्रत्येक स्वरको खिसकाना पड़ता है जिससे वह अनिष्ट हो जाता है। अब अगर चक्रकी शृङ्खला इतनी बढ़ाई जाय कि आदि स्वर और अंत-स्वर एक-दूसरेके बहुत ही निकट आ जाएँ तो स्वरोंको विचलित करनेकी आवश्यकता प्राय न रहे। और तब स्वरित-चालनमें भी प्रकृत पञ्चम मिल सकता है। गणनासे यह विदित है कि—

जैसे १२ पञ्चम और ७ सप्तकमें लगभग $\frac{१}{४}$ (अर्धस्वर) का अंतर है
वैसे ही ४१ पञ्चम और २४ „ „ $\frac{१}{९}$ „ „
५३ „ ३१ „ „ $\frac{१}{२८}$ „ „
३०६ „ १७९ „ „ $\frac{१}{६०}$ „ „

यह शृङ्खला इतनी आगे बढ़ाई जा सकती है कि पञ्चमका कोई आवर्त्य सप्तकके किसी आवर्त्यके और भी निकट आ जाय। इससे पञ्चम तो अधिकाधिक शुद्ध होता चला जायगा, पर यह भी देखना है कि पञ्चमके अतिरिक्त गान्धार भी किस चक्रमें अधिक शुद्ध पड़ता है। इस दृष्टिसे विचार करनेपर ५३ स्वरवाला ग्राम सबसे अधिक उपयुक्त सिद्ध होता है। इस प्रकारका प्रस्ताव पहले पहल गेराडुंस मर्केटर (Gerardus Mercator) ने १६ वीं सदीमें किया था। उन्नीसवीं सदीमें लण्डनके बोसाकेने और श्प्रिफील्डके वाइटने अपने लिए ऐसे

हार्मोनियम बनवाये थे जिनमें एक सप्तकमें ५३ स्वर थे। पर ये व्यवहारमें नहीं आये, केवल कौतूहलकी वस्तु रह गये।

७०—जैसे चक्रिक प्रक्रियासे ५३ स्वरोंका ग्राम बनाया गया है वैसे ही देंनीलूने सक्रमिक प्रक्रियासे ५३ स्वरोंका ग्राम बनाया है। उनकी प्रक्रिया नीचेके चित्रके द्वारा समझाई जाती है। इस चित्रको समझनेके लिए कुछ सकेत पहले बताया जाता है; जैसे —

अन्तराल	सकेत	चढाव	उतार
लीमा २३ से.	ल	ल′	ल्‍
गुरु अर्धस्वर २८ से.	ल+	ल′+	ल्‍+
लघु अर्धस्वर १८ से.	ल–	ल′–	ल्‍–
कोमा		+	—

इन्हीं सकेतोंके द्वारा स्वरोंके टुकड़ोको बताया जाता है; जैसे —
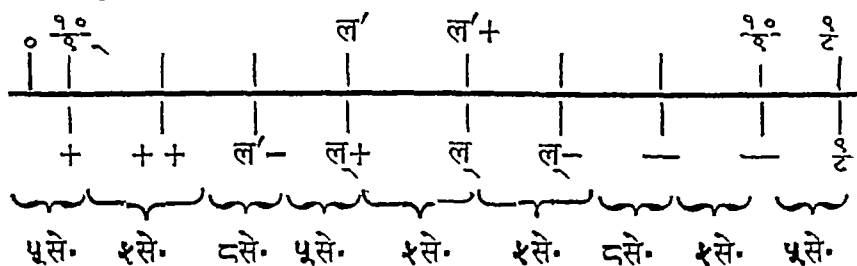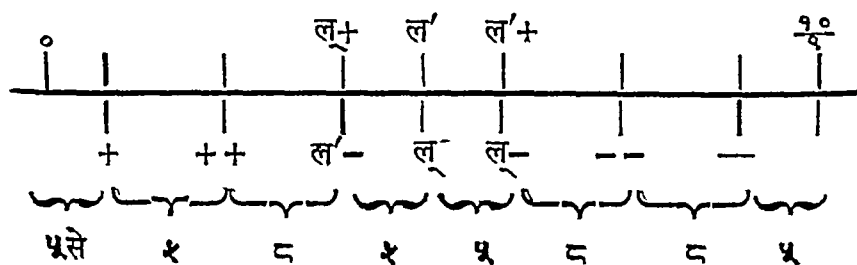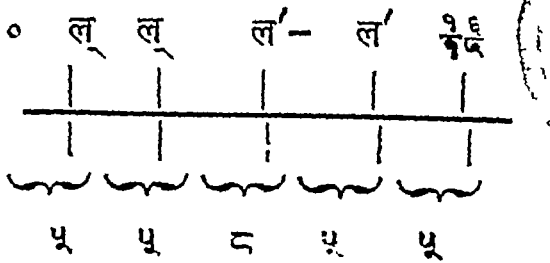
(३) गुरु अर्धस्वर—

ऊपरकी क्रियासे गुरु स्वर ९ भागोंमें, लघु स्वर ८ भागोंमें और गुरु अर्धस्वर ५ भागोंमें विभक्त होते हैं। एक सप्तकमें ३ गुरु स्वर, २ लघु स्वर और २ अर्धस्वर होते हैं इसलिए एक सप्तक कुल ५३ भागोंमें विभक्त हुआ।

इस विभाजन-प्रक्रियामें और चक्रिक विभाजन–प्रक्रियामें कोई विशेष अंतर नहीं है। जैसे इसमें एक अणु स्वर एक कोमाके बराबर होता है चक्रिक प्रक्रियामें भी प्राय वैसा ही होता है। अगर यह ग्राम व्यावहारिक हो तो इसमें उपर्युक्त तीनों ही प्रक्रियाओंसे निष्पन्न सारे ग्राम आ जाते हैं। पर इस प्रकारके जटिल ग्राम केवल कौतूहलकी वस्तु हैं, व्यवहार की नहीं।

---

१३. संगीत

७१—संगीतकी सृष्टि नादसे होती है। जिस तरह मिट्टी या पत्थरसे मूर्त्ति, रंगसे चित्र और ईंट-पत्थरोंसे महल तैयार होते हैं, उसी तरह नादसे संगीत प्रस्फुटित होता है। मिट्टी आदिकी तरह ही नाद सगीतका उपादान मात्र है। कोई नाद चाहे जितना भी श्रुति-मधुर हो, अकेला संगीतका रूप नहीं ले सकता। ऐसे नादमें ही संगीतका रूप देखना वैसा ही है जैसा किसी पत्थरके ढोंकेमे बुद्धकी मूर्त्ति या रंगोंके ढेरमें रम्भा-मदालसाका चित्र देखना। किसी भी कला-कृतिके लिए अच्छे उपादानको ग्रहण करना उचित है और इस दृष्टिसे संगीतके लिए कर्ण-प्रिय नाद भी आवश्यक है। पर कर्ण-प्रिय नाद स्वयं न तो संगीत है और न संगीतके लिए अनिवार्य है। कलाकी सृष्टि उसके उपादानके रीतिमत उपयोग या प्रबन्धसे होती है। यह प्रबन्ध कलावानकी कृति है। एक साधारण मनुष्य मीठी आवाज सुनकर ही तृप्त हो सकता है; पर सगीतका पारखी यह देखता है कि किसीने अपनी मीठी आवाज़का किस रीतिसे उपयोग किया है—मीठी आवाजकी भित्तिपर कैसी कारीगरी की है। जैसे अनेक रंगोंके प्रबन्धसे चित्र-कलाकी सृष्टि होती है वैसे ही भिन्न-भिन्न तारताके अनेक ऊँचे-नीचे नादोंके प्रबन्धसे संगीत-कलाकी सृष्टि होती है। किसी नादकी प्रिय या अप्रिय वेदना कर्णेन्द्रियतक ही सीमित होती है। यह कर्ण-तन्तुओंके स्पन्दनसे उत्तेजित केवल शुद्ध और परिच्छिन्न मानसिक विकार है। पर संगीतकी उत्पत्ति ऐसी अनेक मानसिक अनुभूतियोंके क्रम और पारस्परिक सम्बन्धसे होती है। एक आदिम मनुष्यको डूबते हुए सूरजका लाल चक्का देखकर हर्ष हो सकता है या खोखले बाँसकी नलीमें हवाके संचारसे निकली हुई ध्वनि सुनकर तृप्ति हो सकती है। पर न तो चित्रकला केवल लाल रंग है और न सगीत केवल बाँसकी ध्वनि।

इस दृष्टिसे संगीत केवल नाद नहीं वरन् भिन्न-भिन्न तारता या स्थानके ऊँचे-नीचे स्वरोंका क्रम-बद्ध प्रबन्ध है। अर्थात् संगीतके विकासकी पहली कड़ी 'अन्तराल' है (अनु० ४७)।

७२—डार्विनने अपने 'मानव-अवतरण' में अनेक वैज्ञानिकोंके निरीक्षणोंके आधारपर यह बताया है कि पशु-पक्षियोंकी ध्वनिमें भी भिन्न-भिन्न स्वरोंके अन्तराल पाये जाते हैं। और प्राय ये अन्तराल ऐसे होते हैं जिनका उपयोग मनुष्य-समाज अपनी संगीत-कलामें आज भी कर रहा है। 'कुत्ते, पालतू होनेके बाद चार या पाँच स्पष्ट स्वरोंमे भूकने लगे हैं।' 'घरेलू मुर्गे कम-से-कम एक दर्जन स्पष्ट स्वरोंमे बोलते हैं।' रेवरन्ड लौक उडने अमरीकामें पाये जानेवाले एक विशेष जातिके चूहेका वर्णन किया है। उन्होंने बताया है कि यह चूहा अपने गलेसे अर्धस्वरतकका सच्चा अन्तराल निकालता है। यह कभी-कभी अपने स्वरको ठीक-ठीक एक अष्टक नीचे उतारता है। उन्होंने इस चूहेके प्राकृतिक संगीतकी स्वर-लिपि भी तैयार की है। बहुतेरे पक्षियोंमें, जो गायक-जातिके समझे जाते हैं, गलेसे आवर्त्तक ग्रामके स्वर-संघात निकालनेकी क्षमता होती है।

वाटरहाउसके निरीक्षणसे पता चलता है कि वनमानुस जातिका गिब्बन आरोही और अवरोही मूर्छनामें अर्धस्वरके सच्चे अन्तरालका प्रयोग करता है और इसके निम्नतम और उच्चतम स्वरमे एक अष्टकका अन्तराल होता है। इसकी ध्वनि तीव्र और संगीतमय होती है। ओवेनने भी, जो एक गायक था, इस निरीक्षणकी पुष्टि की है। वनमानुस जातिमें और भी जाति विशेष के पशु हैं जो तीन-तीन स्वर शुद्ध अन्तरालके साथ गाते हैं।

वैज्ञानिक निरीक्षकोंका यह मत है कि पक्षियोंमे संगीतका उपयोग विशेष रूपसे निराशा, भय, क्रोध, विजय या केवल आनन्दके भाव प्रकट करनेमे होता है। पशुओंमें भी नर विशेषतः मैथुनकी ऋतुमे ही गाते हुए पाये जाते हैं जब उन्हें प्रेम, द्वन्द्व, ईर्ष्या, क्रोध, विजय आदि भावोंको प्रकट करनेकी प्रेरणा होती है। मनुष्यका कण्ठ-रज्जु स्त्रियोंके कण्ठ-रज्जुकी अपेक्षा लंबाईमे

तिगुना होता है। ऐसा समझा जाता है कि विकासके आदिम कालमें 'प्रेम, क्रोध, ईर्ष्या आदिकी उत्तेजनामें कण्ठके वार-वार व्यवहारसे' नरका कण्ठ-रज्जु लंबा हो गया है। जो हो, इतना सिद्ध है कि भिन्न-भिन्न भावोंको प्रकट करनेमें पशु-पक्षी भी भिन्न-भिन्न स्वरोंके संक्रमका उपयोग करते हैं और वहींसे संगीतका आरम्भ होता है।

७३—इस दृष्टिसे यह आश्चर्यकी वात नहीं कि मानव-जातिके विकासके आदिम कालमें भी संगीतका अस्तित्व पाया जाता है। पुरातत्त्व-वेत्ताओंने खोहोंमें पत्थरके औज़ारों और लुप्त जातिके पशुओंकी हड्डियोंके साथ रेनडीयर [प्राचीन जातिके हिरन] की हड्डीसे और सींगसे वनी हुई वाँसुरी पाई है। यह वहुत ही पुराने प्रस्तर युगकी वात है। लेओनार्ड ऊलेने ज़मीनके नीचेसे एक ११ तारोंका वाजा निकाला है जो प्रायः ५००० वर्ष पुराना है। इससे स्पष्ट है कि इतने प्राचीन कालमें भी मनुष्य भिन्न-भिन्न स्वरोंके संक्रमको जानता था और उससे आनन्द उठाता था। सुमेरी गायकोंका ४६०० वर्ष पुराना चित्र पाया गया है जिसमें कई तरहके वाजे और ढोलक दीख पड़ते हैं। मिश्र देशमें प्रायः ४५०० वर्ष पुराना एक चित्र पाया गया है जिसमें ७ गवैये हैं। इनमेंसे दो तारके वाजे और तीन वाँसुरी सरीखे वाजे वजा रहे हैं और दो इन सवोंके वीच तालियाँ दे रहे हैं।

तात्पर्य्य यह कि संगीतका विकास पशु-पक्षियोंसे लेकर मनुष्यतक लगातार होता चला आया है; और इसीलिए मानव-संगीतका विकास भी मानव-जातिके विकासके साथ-ही-साथ हुआ है। आदिम कालमें, पशु-पक्षियोंकी तरह ही, मानवजातिमें भी संगीतकी प्रेरणा प्रेम, ईर्ष्या, द्वन्द्व, विजय आदि भावोंके प्रदर्शनके लिए ही होती थी। मैक्समूलर आदि भाषातत्त्वज्ञोंकी धारणा है कि भाषाकी उत्पत्तिके पहले संगीतकी उत्पत्ति हुई है। क्योंकि विकासकी दृष्टिसे यह स्पष्ट है कि अन्य जीवोंकी भाँति मनुष्यको भी पहले केवल शुद्ध और व्यापक भावोंको व्यक्त करनेकी प्रेरणा होती होगी जो केवल स्वर-संघातोंसे किया जाता होगा। पहले

मनुष्य एक विशेष स्वर-संघातसे प्रेम, दूसरे स्वर-सघातसे ईर्ष्या और किसी तीसरे स्वर-संघातसे विजयकी भावनाकी घोषणा करता होगा। आगे चलकर जब मनुष्यका मस्तिष्क विकसित हुआ तो उसके एक-एक व्यापक भावसे विचारोंकी अनेक भिन्न-भिन्न धाराएँ खुल पड़ीं। इसी प्रकार प्रेम ईर्ष्या, द्वन्द्व, विजय आदि शुद्ध, व्यापक भाव जटिल होने लगे। यहींसे भाषाकी उत्पत्ति हुई, जब भावमय स्वर-सघातमे या स्वरके उतार-चढ़ावमें स्वर-व्यञ्जनमय शब्दो और वाक्योंको गूँथकर किसी व्यापक भावकी अनेक प्रतिक्रियाओंकी व्यञ्जना होने लगी। आज भी यह देखा जाता है कि जब किसी विचारको भावसे अनुप्राणित करना होता है या श्रोताओंके हृदयमे विचारोंके द्वारा किसी भावकी उत्तेजना पैदा करनेकी आवश्यकता होती है तो वक्ता एक स्वरके बदले स्वरोंके उतार-चढाव या अन्तरालसे काम लेता है, अर्थात् सार्थक वाक्योमे संगीतका पुट डालता है। साधारण बोलचालमें भी वाक्योंका उच्चारण एक तारतापर या एक स्वरमे नहीं होता। विधेयात्मक वाक्य अन्तमे षड्जसे निचले पञ्चमपर, मध्यमके अन्तरालसे गिरता है। प्रश्नसूचक वाक्य अन्तमे पञ्चमतक ऊपर उठता है। जहाँ किसी शब्द पर ज़ोर देना होता है वहाँ वह एक स्वर ऊपर उठता है।

संगीतका सम्पर्क केवल प्रेम-शृङ्गार या प्रसन्नताके भावोंसे ही नहीं है। यह आदिम मनुष्यके सारे भाव, सारी कामनाओंकी अभिव्यक्तिका साधन था। अब भी यह देखा जाता है कि शोक या दु खके समय विशेष रूपसे स्त्रियोंका विलाप सगीतके रूपमे ही होता है। 'अफ्रीकावासी हब्शी जब उत्तेजित होता है तो उसके मुँहसे वाक्य संगीतमे ही निकलते हैं; दूसरा हब्शी भी उसका जवाब संगीतमे ही देता है। धीरे-धीरे सारी मंडली एक सुरसे गाने लगती है।' आरम्भमें मानव-जातिके सारे भावोंका संकेत संगीतके द्वारा ही किया जाता था। आगे चलकर जब भाषा प्रस्फुटित हुई तो संगीतकी उपयोगिता कम हो गई। फिर भी जहाँ समष्टि रूपसे आनन्द या प्रसन्नताके प्रबल भावोंको व्यक्त करना या सारे समुदायको

युद्धके लिए उत्तेजित करना होता था वहाँ संगीतका उपयोग होता था। इसी प्रकार आदिम जातियोंमें समुदाय-संगीत और आगे चलकर सभ्य मानव-समाज में ग्राम्य-संगीतका प्रादुर्भाव हुआ।

७४—गानका आविर्भाव पहले हुआ या वाद्यका, इस विषयमें मतभेद रहा है। पर प्रमुख तत्त्वज्ञोंका यह मत है कि गानके बाद ही वाद्यका आविष्कार हुआ है। जो वाद्यका स्थान गानके पहले रखते हैं उनकी धारणा है कि मनुष्य पहले खोखले बाँसमें हवाकी गतिसे निकले हुए ध्वनिसे और धातुकी खनकसे आकर्षित हुआ होगा फिर उसके अनुरूप स्वर निकालनेका प्रयत्न करके उसने कण्ठ-संगीत या गानका आविष्कार किया होगा। यह धारणा तभी ठीक हो सकती है जब अन्तराल या स्वर-संक्रम नहीं बल्कि शुद्ध नादको ही संगीत मान लिया जाय। जब कण्ठ-संगीतका विकास पशु-पक्षियोंसे ही होता आ रहा है तो मानव-जातिमें आकर इस विकास-क्रमके टूट जानेका कोई कारण नहीं। इसलिए यह धारणा अधिक विश्वस्त मालूम होती है कि मानव-जातिमें गानकी प्रवृत्ति विकासके क्रमसे ही मौजूद थी। पीछे जब अनुभवसे मनुष्यने बाँसकी नलीमें वायुकी गतिसे या तारके छेड़नेसे निकली हुई ध्वनियोंको श्रुति-मधुर पाया तो इन उपकरणोंका उपयोग कण्ठ-संगीतकी नकल करनेमें किया। यह मानव-जातिके विकासके उस कालमें हुआ जब मनुष्यका मस्तिष्क अपनी सुविधाके लिए यन्त्रोंका आविष्कार करने लगा था।

७५—जैसे सम्भवत भाषाके बाद लिपि और उसके बाद व्याकरण-शास्त्रका निर्माण हुआ वैसे ही गानके बाद वाद्य और वाद्यके बाद संगीत-शास्त्र लिखा गया। वाद्य-यन्त्रके आविष्कारने संगीतको मूर्त्तिमान कर दिया जिससे मनुष्य संगीतका विश्लेषणकर इसकी शरीर-रचनापर विचार कर सका। केवल स्मृतिके बलपर विचार-विमर्श सम्भव नहीं होता। स्मृति अन्तर्दृष्टिके सामने बहुत छोटे क्षेत्रका ही चित्र रख सकती है। इसी-लिए लिपिकी भाँति ही वाद्य यन्त्र भी एक नया साधन प्राप्त हुआ जिसने

मस्तिष्कके सामने संगीतका पूर्ण और स्थायी रूप खड़ा कर दिया। इसके बाद ही व्याकरणकी तरह संगीत-शास्त्रका निर्माण हुआ जिसने ग्राम्य-संगीतको शास्त्रीय संगीतमें बदल दिया। प्राचीन-से-प्राचीन संगीत-शास्त्रको देखनेसे यही पता चलता है कि उसके प्रणेताने, चाहे पायथागोरस हों या भरत, तारके वाद्य-यन्त्रोंके आधारपर ही संगीतके नियम निर्धारित किये हैं। तात्पर्य यह कि वाद्य-यन्त्रोंके आविष्कारके बाद ही संगीत-शास्त्रका निर्माण हुआ है जिससे संगीतके विकासको नई स्फूर्ति मिली है।

७६—पशु-पक्षियोंके क्रिया-कलापमें भी नियम दिखाई पड़ता है और उनमें भी परिस्थितिके अनुसार निर्णयकी क्षमता पाई जाती है। पक्षियोंके घोंसलोंको देखनेसे मालूम होता है कि उन्होंने काफी समझदारीसे काम लिया है। शरीफेकी तरह बना हुआ अबाबीलका घोंसला देखकर यही धारणा होती है जैसे यह किसी शिल्पीकी कृति हो। पर पशु-पक्षियोंमें बोध होनेपर भी उन्हें सारी प्रेरणा स्वभावसे मिलती है। इसीलिए उनकी कृतियोंमें एक प्रकारकी समानता होती है जो एक ज्ञातिके पशु-पक्षियोंके कार्य्य-कलापमें अक्षुण्ण रहती है। अर्थात् उनकी कृतियोंमें व्यक्तिगत विशेषता नहीं रहती वरन् वर्गगत या ज्ञातिगत विशेषता रहती है। मानव-जातिमें मस्तिष्कके विकासके कारण स्वभाव बुद्धिके प्रभावसे दुर्बल हो जाता है इसलिए मानव-कृतियोंमें व्यक्तिगत विशेषता और विभिन्नता पाई जाती है। अत कलाका आरम्भ वहाँसे होता है जहाँ मनुष्यकी कृतियोंमें बुद्धिके उपयोगसे विभिन्नता आने लगती है। संक्षेपमें यह कहा जा सकता है कि कला मूलत कृत्रिम है, जिसका मुख्य उपकरण बुद्धि है। इसलिए यद्यपि संगीतकी आदिम प्रेरणा भाव है फिर भी संगीत-कला भाव-ही-भाव नहीं है। संगीत बुद्धिकी कारीगरीसे ही कलाके रूपमें खड़ा होता है। बुद्धिका उपयोग विवेक और विचारके रूपमें होता है। जीव-सगीत शुद्ध भावमय होता है। आदिम मानव-संगीतमें भाव प्रबल होता है, पर बुद्धिके प्रभावसे उसमें विभिन्नता और व्यक्तित्व आने लगता है। कलाका यहींसे आरंभ

होता है। पेर बुद्धि गौण होनेसे यह कलाका आदिम रूप है। जब मानव-संस्कृतिके विकासके साथ-साथ भाव बुद्धिसे अधिकाधिक नियन्त्रित होने लगता है तब कलाका सच्चा संस्कृत रूप प्रकट होता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सगीत-कलाका सच्चा विकास, सभी जातियोंमें, सभी देशोंमें, संगीत-शास्त्रके निर्माणके द्वारा हुआ है। अत शास्त्रीय संगीतको ही उच्च सगीत-कला मानना उचित है।

जब संगीत-कलाका विकास बुद्धिके द्वारा हुआ तो नि सन्देह, इसके गुण-तत्त्व और सौंदर्य्यको बुद्धिके द्वारा ही ग्रहण किया जा सकता है। और इस प्रकार संगीत-कलाका लक्ष्य भी क्षणिक इन्द्रिय-सुख नहीं बल्कि स्थायी बौद्धिक आनन्द है। इस उद्‌देश्यकी पूर्त्ति लक्ष्य-लक्षण युक्त सगीत-शास्त्रके अध्ययनसे ही हो सकती है। इतना ही नहीं, किसी भी देश या जातिकी या किसी भी युगकी सस्कृति और उसकी बौद्धिक दशाका मूल्य उसके सगीत-शास्त्रकी विवेचनासे आँका जा सकता है। आज यदि पाश्चात्य देशका सगीतज्ञ हिन्दुस्तानी सगीतको पसन्द नहीं करता या एक हिन्दुस्तानीको पाश्चात्य सगीतमें कोई रस नहीं मिलता तो इसका यह कारण नहीं कि हिन्दुस्तानी सङ्गीत या पाश्चात्य सगीत कला की दृष्टिसे हीन है। इसका मुख्य कारण यह है कि न तो पाश्चात्य सङ्गीतज्ञ हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धतिसे परिचित है और न हिन्दुस्तानियोंको पाश्चात्य पद्धति का ज्ञान है।

इसलिए किसी भी संगीत-प्रणालीका मूल्य उसकी पद्धतिके अध्ययन, उसकी परम्परापर विचार और उसकी प्रचलित परिपाटीमें क्रियात्मक रुचिके द्वारा ही समझा जा सकता है। प्रत्येक संगीत-पद्धतिका भूत, वर्त्तमान और भविष्य है। इसलिए उसके इतिहास, उसके व्यवहार और उसकी सम्भावनाओंपर सहानुभूतिके साथ विचार करके ही उसका महत्त्व समझा जा सकता है।

---

१४. प्राचीन स्वर-ग्राम

[क] वैदिक पद्धति

७७—भारतीय संगीतका आरम्भ वैदिक कालसे ही होता है। वैदिक स्वर- संक्रमसे ही भरत-ग्रामका विकास माना जाता है (अनु ८२)। भरतकी पद्धतिसे ही कालान्तरमें दाक्षिणात्य और उत्तरीय पद्धतियोंका जन्म हुआ।

भरतकी पद्धति और प्राचीन यूनानी पद्धतिके बीच बहुत अंशोंमे समता पाई जाती है। सम्भव है कि प्राचीन कालमें इन दोनों पद्धतियोंके बीच आदान-प्रदान हुआ हो। पर यह इतिहासज्ञोंकी विवेचनाका विषय है। मध्यकालमे उत्तरीय संगीत मुसलमानोंके सम्पर्कमें आया। पर मुसलमानी दरबारों और ओस्तादोंने भारतीय संस्कारको नष्ट न होने दिया। आदि मुसलमान संगीताचार्य अमीर ख़ुसरूने यह घोषणा कर दी कि वे तुर्क होकर भी हिन्दुस्तानी हैं और इसलिए उन्हें मिश्र या अरबसे कोई प्रेरणा नहीं मिली है। उनकी कला हिन्दुस्तानी ही है।[1] अमीर ख़ुसरूका यह आदर्श आज भी काम कर रहा है। उच्च कोटिके गायक और नायक, चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, संगीतका अनुशीलन आज भी भारतीय पद्धतिके अनुसार ही करते है। उनका आलाप, तान, सरगम आदि प्राचीन नियमोंके अनुसार ही होता है। मुसलमान ग्रन्थकारोंने भी भरत-शार्ङ्गदेवकी शैलीपर ही श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्छना आदिका विचार किया है।

---

१. Life and works of Amir Khusru' by Dr. Mohomed Vahid Mirza. The University of the Punjab, 1935.

अस्तु वाह्य सम्पर्कके होते हुए भी भारतीय सगीतका संस्कार अवाध रूपसे भारतीय ही रहा है। भारतीय सगीतकी गति-विधि समझनेके लिए वैदिक कालसे ही इस संस्कारके प्रवाहपर विचार करना आवश्यक है।

७८—प्राय सभी जातियों और सभी देशोंमें यह पाया जाता है कि ग्राममें स्वरोंकी संख्या पहले कम थी, जो क्रमश बढते-बढते सात हो गई। ग्राम्य संगीत प्राय. सभी देशोंमें पाँच स्वर वाली 'ओड़व' जातिके या एक ही चतु सघातके पाये जाते हैं। पहले अर्धस्वरके अन्तरालका उपयोग नही होता था—एक स्वर या इससे बड़े अन्तराल ही काममे आते थे। चीन, स्काटलैंड और आयर्लैन्डका मुख्य ग्राम्यगीत आज भी ओड़वमे ही गाया जाता है जिसकी मूर्छना 'स र म प ध सं' है। यह आधुनिक हिन्दुस्तानी पद्धतिका दुर्गा राग है।

यूनान (ग्रीस) देशके आदि गायक ओर्फियसके वाद्यमें चार ही तार थे जो 'स म प सं' में बँधे होते थे। बादको 'पंचम-सवाद' (अनु ६५) की विधिसे 'र' के लिए एक तार और जोड़ा गया। फिर टर्पेन्डरने, इसी न्यायपर, ग ध का समावेश किया और अंतमें पायथागोरस ने 'न' जोड़कर ग्रामको सम्पूर्ण कर दिया। चीन देशमे भी राजा त्साय्यूने सनातनी गायकोंके घोर विरोधके बीच चीनी ग्रामको ओड़वसे सम्पूर्ण किया।

हिन्दुस्तानमे तो ग्राम्य गीत अधिकत एक ही चतु संघाततक, अर्थात् स से म तक सीमित पाये जाते हैं जिनका आरम्भ तार स्थान से होता है। इसी तरह ओड़व राग भी प्रचलित हैं। हनुमत्मतके अनुसार राग-रागिनियोंके भेदपर ध्यान देनेसे यही धारणा होती है कि रागोंकी प्रवृत्ति स्पष्टत ओड़व या षाड़वकी ओर है। सम्भव है कि रागोंकी रचना रागिनियोंसे पहले हुई हो।

जो हो, यह तो तथ्य-सा ही प्रतीत होता है कि सभी जगह ग्राम थोड़े स्वरोंसे बढ़ता हुआ सम्पूर्ण हुआ है।

वैदिक गान पहले चार स्वरोंतक ही सीमित था। पीछे सामगानके

उत्तर कालमें सात स्वरोंका प्रयोग होने लगा। "ऋग्वेदमें ओड़व या षाड़वका प्रसंग नहीं आता है पर 'आर्चिनो गायन्ति' 'गाथिनो गायन्ति' 'सामिनो गायन्ति', ये पद मिलते हैं।" आर्चिक संगीत एक स्वरका, गाथिक दो स्वरोंका और सामिक तीन स्वरोंका होता था। आर्चिकका उपयोग ऋचाके उच्चारणमें, गाथिकका गाथा गानमें और सामिकका सामगानमें होता था। सामिकके स्वर तार स्थानके गं रं सं होते थे। तार गान्धार कभी-कभी कण रूपमे मध्यम लेकर चलता था जिससे स्वरोंकी संख्या तीनके बदले चार हो गई। इस मं गं रं सं वाले चतु स्वरक गानका नाम 'स्वरान्तर' हुआ।

७६—यजुर्वेदने वैदिक स्वरोंकी संज्ञा उदात्त, अनुदात्त और स्वरित बताई है। उदात्तका अर्थ ऊँचा और अनुदात्तका नीचा है। स्वरितका तात्पर्य्य उस स्वरसे है जिसपर उदात्त और अनुदात्तका मेल हो और जो बार-बार उच्चारित हो। सम्भवत. स्वरितसे मतलब आधार स्वरसे है जिसे बोलचालकी भाषामें सुर कहते हैं। नारदने अपनी शिक्षामें इन यजुर्वेदीय संज्ञाओंकी लौकिक स्वरोंसे समता बाँधी है। वैदिक संज्ञा सम्भवत एक ही चतु संघाततक सीमित थी; पर नारदने निम्न चतु संघात जोड़कर अष्टक पूरा कर दिया। यहाँ यह भी बता देना आवश्यक है कि वैदिक गानकी मूर्छना अवरोही थी जो तार गान्धार या तार मध्यमसे चलती थी।

नारदके मतानुसार वैदिक और लौकिक स्वर-संज्ञाओंकी तुलना नीचे दी जाती है —

मं	गं	रं	सं	न	ध	प	[म]
स्वरित	उदात्त	अनुदात्त	स्वरित	उदात्त	अनुदात्त	स्वरित	[स्वरित]

इसे आधुनिक आरोही मूर्छनामें इस प्रकार प्रकट करेंगे.—

पूर्वाङ्ग				उत्तराङ्ग			
स	र	ग	म	प	ध	न	सं
स्वरित	अनुदात्त	उदात्त	स्वरित	स्वरित	अनुदात्त	उदात्त	स्वरित

अपनी शिक्षामें पाणिनिने भी इसी तुलनाकी पुष्टि नीचे दिये हुए श्लोकसे की है —

'उदात्तो निषादगान्धारौ अनुदात्त ऋषभधैवतौ।
स्वरित प्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपञ्चमाः ॥'[१]

सामवेदके कालमें वैदिक गान पूरे सात स्वरोंमें गाया जाने लगा[२]। स्वरोंकी सामवेदीय संज्ञा, जो ऊपरकी सज्ञासे भिन्न है, आगे दी जाती है —

क्रुष्ट	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ	मन्द्र	अतिस्वर
म	ग	र	सं	न	ध	प

नारद शिक्षामें ध और न का स्थान उलटा है। जैसे—

यः सामगाना प्रथमः स वेणोर्मध्यमस्वरः।
यो द्वितीयः स गान्धारस्तृतीयस्त्वृषभः स्मृतः॥
चतुर्थः षड्ज इत्याहुः पञ्चमो धैवतो भवेत्।
षष्ठो निषादो विज्ञेयः सप्तमः पञ्चमः स्मृतः॥

इस व्यतिक्रमका कोई कारण नहीं जान पड़ता। पर प्राचीन यूनानी पद्धतिमें भी ऐसा व्यतिक्रम पाया जाता है। शायद यह सभी प्राचीन पद्धतियोंकी विशेषता हो।

सायणाचार्यका मत नारदके मतसे भिन्न है। उनके हिसाबसे स्वरों की व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिए —

---

१. चतुःसंघात का वेष्टन षड्ज, मध्यम, पञ्चम और तार षड्जसे बँधा हुआ है। ये स्वर अचल हैं जिन्हें अरिस्टॉट्लने 'संवादका शरीर' और यजुर्वेदने 'स्वरित' कहा है।

२. कहा जाता है कि तुम्बरुने स्वरोंकी संख्या बढ़ाकर, सामगानके लिए सात स्वर निर्धारित किये हैं।

क्रुष्ट	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ	मन्द्र	अतिस्वर
न	ध	प	म	ग	र	स

उनका वाक्य यह है·—

"लौकिके ये निषादादय सप्तस्वरा. प्रसिद्धा· त एव साम्नि क्रुष्टादयः सप्तस्वरा भवन्ति। तद्यथा—यो निषाद स क्रुष्ट, धैवत प्रथम, पञ्चम· द्वितीय, मध्यमस्तृतीय, गान्धारश्चतुर्थ, ऋषभो मन्द्र·, षड्जोऽतिस्वार्य· इति ॥"

८०—यहाँ स्वरितके अर्थपर विचार करना आवश्यक है। व्याकरणमें स्वरितकी परिभाषा '**समाहारः स्वरितः**' दी गई है जिसका अर्थ है—'उदात्त और अनुदात्तका जहाँ एकत्र समाहार या मेल हो वही स्वरित है।' इस परिभाषाके अनुसार स्वरितका स्थान अनुदात्त और उदात्तके बीच होना चाहिए। किन्तु नारदने उदात्त, अनुदात्त और स्वरितको क्रमश· गान्धार, ऋषभ और षड्ज माना है। यहाँ षड्जमें समाहारका भाव नहीं आता। इसलिए उदात्त और अनुदात्तके स्थानका स्वरितकी परिभाषाके अनुकूल निर्णय करना आवश्यक है।

यदि वैदिक स्वरलिपि एक-एक स्वरके अंतरसे 'न् स र स' मानी जाय जहाँ न् अनुदात्त और र उदात्त हो, तो स्वरितका समाहारत्व और बहुत्व अर्थात् बार-बार उच्चरित होनेका गुण, दोनों सिद्ध हो जाते हैं। इसी प्रकार प को स्वरित मानने पर 'म प ध प' समुदाय बनता है। इस स्वर-समुदायके साथ-साथ अर्धस्वरका गमक भी कभी-कभी लिया जाता है। इस हिसाबसे वैदिक स्वर-ग्राम ऐसा बनेगा—

अनु०	स्व०	उ०	ग०
न् →	स	र	ग्
	१ स्वर	१ स्वर	½ स्वर

अनु०	स्व०	उ०	ग०
म →	प	ध	न्
	१ स्वर	१ स्वर	½ स्वर

एक पूरा स्वर साधारणतः ९/८ का होता है पर 'स र स' या 'प ध प'

प्रयोगमें एक श्रुति उतरकर १०/९ रह जाता है (अनु० १४१)। अतएव उपर्युक्त ग्रामका मान सहित ऐसा रूप होगा —

न्	स	र	ग्	म	प	ध	न्
८/९	१	१०/९	३२/२७	४/३	३/२	५/३	१६/९

९/८	१०/९	१६/१५	९/८	९/८	१०/९	१६/१५

यह शुद्ध भरत ग्राम है (अनु० १०१)। वैदिक स्वर ग्रामका यह प्रबन्ध यदि ठीक माना जाय तो भरतकी वैदिक परम्परा सिद्ध होती है। सायण भी (अनु० ७९) सम्भवतः इसी विचारको मानते थे; क्योंकि उन्होंने न् को क्रुष्ट (गमक) और ध को प्रथमकी संज्ञा दी है। वैदिक अवरोही क्रममें इस स्वर-ग्रामका भी धैवत ही 'प्रथम' है और न् गमकसे आता है।

८१—कुछ विद्वानोंका मत है कि सामवेदके स्वरोंको ही भरत और शार्ङ्गदेवने अपने षड्ज ग्रामके शुद्ध स्वर माने हैं। इतना ही नहीं, आज भी सामवेद प्राचीन पद्धतिसे ही अर्थात् भरतके स्वरोंमें ही गाया जाता है। इस प्रसङ्गमें श्रीनिवास आय्यंगारका मत विचारणीय है जो उन्होंने गोविन्दकृत संग्रहचूड़ामणिकी भूमिकामें प्रकट किया है। वे लिखते हैं —

"संगीतके पहले शास्त्रकार भरत और उनके बादके शास्त्रकार शार्ङ्गदेव, इन दोनोंने सामवेदके स्वरोंको ही शुद्ध स्वर माना है। परम्परा प्राप्त सामवेद आज भी उसी रूपमें प्रचलित है जिस रूपमें वह आरम्भमें गाया जाता था। इस वेदके उच्चारपर ध्यानपूर्वक विचार करनेसे पता चलेगा कि इसके स्वर ग र स न ध प, जो तार-मध्य व्यापी हैं, और सामवेदियोंकी पद्धतिसे जिनका पर्य्याय प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र और अतिस्वर है, अवरोही क्रममें हैं। कभी-कभी जब ग का उच्चारण होता है तो म, जो सामवेदियोंका क्रुष्ट है, गमकके रूपमें आता है।

मध्यस्थानमें लानेपर सात स्वर ये हैं—

स	र	ग	म	प	ध	नि
तृतीय	द्वितीय	प्रथम	क्रुष्ट	अतिस्वर	मन्द्र	चतुर्थ
१	$\frac{१०}{९}$	$\frac{३२}{२७}$	$\frac{४}{३}$	$\frac{३}{२}$	$\frac{५}{३}$	$\frac{१६}{९}$ ”

संगीत-रत्नाकरके प्रणेता शार्ङ्गदेवने संगीतके, मार्ग और देशी, ये दो भेद बताये हैं। इनमेंसे मार्गका ब्रह्मा आदि देवोंने निरूपण किया और भरत आदिने इसका प्रयोग किया। देश-देशमें जो लोगोंको रुचिके अनुसार आनन्द देनेवाला है वह सङ्गीत देशी है (परि० २ ग १)। शार्ङ्गदेवने देशी सङ्गीतके नियमोंको ही निर्धारित किया है। इन्हीं भेदोंको उन्होंने आगे चलकर 'गान्धर्व संगीत' और 'गण-सङ्गीत' के नामसे बताया है।

रामस्वामीने रामामात्य कृत स्वरमेल-कलानिधिकी भूमिकामें इस मार्ग और देशी भेदपर विचार किया है। उनका मत है कि मार्गसङ्गीत वैदिक सङ्गीतका द्योतक है जिसकी सीमा चतुस्वरक स्वरान्तर तक है। पंचस्वरक ओड़वसे देशी सङ्गीतका आरम्भ होता है। सभी शास्त्रकारोंने सङ्गीतकी ओड़व, षाड़व, सम्पूर्ण ये तीन ही जातियाँ मानी हैं। रामामात्यने स्पष्टत ये भेद देशी सङ्गीतमें ही बताये हैं (परि० २ घ १)। रामस्वामीके मतानुसार 'आर्चिक', 'गाथिक', 'सामिक' और 'स्वरान्तर' ये जातियाँ तो मार्ग या वैदिक सङ्गीतमें प्रयुक्त होती हैं; और ओड़व, षाड़व और सम्पूर्ण देशी सङ्गीतमें[1] पीछे सामगानमे भी सात स्वरोंका प्रयोग होने लगा।

---

१. यह मत ठीक नहीं जान पड़ता; क्योंकि शार्ङ्गदेवने मार्गके प्रसंगमें भरतका भी नाम लिया है। शार्ङ्गदेवने मार्ग और गान्धर्वका एक ही अर्थ माना है। पर भरतने अपने सङ्गीतको गान्धर्व बताया है। ऐसा जान पड़ता है कि मार्गसे तात्पर्य्य उस प्राचीन अप्रचलित सङ्गीत-पद्धतिसे है जिसका अस्तित्व केवल नियमोंमें ही पाया जाता है। आज रत्नाकरकी पद्धति भी मार्गमें ही मानी जायगी।

पर यह चाहे तो संगीतके विकासक्रममें सन्धिकी दशाका द्योतक है या वैदिक सङ्गीतपर देशी संगीतका प्रभाव है।

ऊपरके विवरणसे यह स्पष्ट है कि भारतीय संगीतका क्षेत्र क्रमशः एक स्वरसे लेकर सात स्वरोंतक बढ़ता गया। इस विकास क्रमका उपक्रम वैदिक संगीतमें ही पाया जाता है। इन्हीं बातोंको नीचे सारिणीके द्वारा समाहार रूपमें बताया गया है।

सारिणी ११

जाति	स्वर-संख्या	प्रयोग	व्याख्या	सरगम
आर्चिक	१	वैदिक	ऋचा या मन्त्रोच्चार	
गाथिक	२		गाथा पाठ	
सामिक	३		सामगान	ग र स
स्वरान्तर	४		,,	म ग रं स
औड़व	५	लौकिक		
षाड़व	६			
सम्पूर्ण	७			स र ग म प ध न

८२—वैदिक संगीतका विधान ऋग्वेद प्रातिशाख्यमें पाया जाता है। नारदी, माण्डूकी, याज्ञवल्क्य आदि शिक्षा ग्रन्थोंमें भी वैदिक संगीतके नियमोंका ही प्रतिपादन है। पर इन शिक्षा ग्रन्थोंमें लौकिक संगीतकी संज्ञाओं और

नियमोंके द्वारा ही वैदिक संगीतकी व्याख्या की गई है। इन शिक्षा-ग्रन्थोंकी विशेषता यह है कि इनमें स्वरके स्थानोंका निर्धारण जीव-जन्तुओंके शब्दोंसे किया गया है। (परि० २ क) आगे चलकर मतङ्ग, शार्ङ्गदेव आदि शास्त्रकारोंने श्रुति-स्वरकी स्वतंत्र व्याख्या करते हुए भी इन्हींकी परिपाटीपर जीव-जन्तुओंके स्वरोंका प्रसंग दिया है।

(ख) भरत-पद्धति

८३—यों तो महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें संगीत और इसके अनेक नियमोंकी चर्चा पाई जाती है पर संगीत-शास्त्रके आदि आचार्य भरत ही माने जाते हैं। इनका लक्ष्य लौकिक संगीत था—शिक्षा-ग्रन्थोंकी तरह वैदिक संगीत नहीं। इन्होंने संगीतपर कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं लिखा है। इनका संगीतशास्त्र संक्षिप्त रूपमें इनके नाट्य-शास्त्रका एक अंग है।

भरतके मतानुसार षड्ज, ऋषभ, गांधार आदि सात स्वर हैं। जिनमें २२ श्रुतियोंका समावेश है। षड्ज, मध्यम और पञ्चममें चार-चार श्रुतियाँ, ऋषभ और धैवतमें तीन-तीन श्रुतियाँ और गांधार और निषादमें दो-दो श्रुतियाँ हैं। स्वरकी तरह ही श्रुति भी दो ध्वनियोंका अंतराल है जो स्वरसे बहुत छोटा है। इसे अणुस्वर कह सकते हैं। कई श्रुतियोंके योगसे एक स्वर बनता है। भरतकी श्रुतियोंका क्या परिमाण है इसपर अभी विचार न करके, केवल श्रुतियोंकी संख्याके आधारपर भरतका स्वर-संस्थान नीचे दिया जाता है—

```
०     ३   ५    ९     १३   १६  १८   २२
| | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
↓     ↓   ↓    ↓     ↓    ↓   ↓    ↓
स  ३  र २ ग  ४  म  ४  प  ३  ध २ न  ४  सं
```

भरतने स्वरोंका पारस्परिक सम्बन्ध चार प्रकारका माना है:—वादी, संवादी, अनुवादी और विवादी। किसी एक स्वरको यदि वादी मान लिया

जाय तो ६ या १३ श्रुतियोंके अतरका स्वर इसका सवादी होगा, २ या २० श्रुतियोंके अन्तरका स्वर विवादी होगा और बाक़ी सारे स्वर इसके अनुवादी होंगे। जैसे, स का म और प संवादी है। वैसे ही र का ध संवादी है, ग विवादी है और बाक़ी स्वर अनुवादी हैं। यहाँ संवाद दो प्रकारका हुआ—एक पञ्चम और दूसरा मध्यम-संवाद। पञ्चम-संवादका अंतराल १३ श्रुतियोंका और मध्यम-संवादका ६ श्रुतियोंका होता है। यह महत्त्वकी बात है कि भरतने वादी-संवादीका व्यवहार स्वरोंके पारस्परिक सम्बन्धके ही अर्थमे किया है (परि० २ ख १) अर्थात् ये स्वरके भेद बताये गये हैं। आधुनिक संगीतमें इसका व्यवहार रागोंमें होने लगा है और वादी अब उसी अर्थमें प्रयुक्त होता है जिस अर्थमें प्राचीन संगीतमें "अंश" का प्रयोग होता था।

८४—भरतने दो ग्रामों की चर्चा की है जिनमें से एक तो षड्ज ग्राम है जो ऊपर दिया जा चुका है। दूसरा मध्यम ग्राम है जिसका स्वर-संस्थान यह है —

```
०     ३   ५     ६     १२       १६  १८     २२
| | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
↓     ↓   ↓     ↓     ↓        ↓   ↓      ↓
स  ३  र २ ग  ४  म  ३  प   ४    ध २ न   ४  सं
```

षड्ज ग्राम और मध्यम ग्राममें भेद इतना ही है कि मध्यम ग्राममें पञ्चम एक श्रुति नीचे खिसका हुआ है। जहाँ षड्ज ग्राममें म-प अंतराल ४ श्रुतियोंका और प-ध ३ श्रुतियोंका है वहाँ मध्यम ग्राममे म-प ३ श्रुतियोंका और प-ध ४ श्रुतियोंका है।

अर्थात् —

षड्ज ग्राम—म ४ प ३ ध।
मध्यम ग्राम—म ३ प ४ ध।

मध्यम ग्राममें पञ्चमके एक श्रुति विचलित हो जानेसे षड्ज ग्रामका स-प संवाद तो टूट जाता है पर र-प संवाद स्थापित हो जाता है जिनका अंतर

अब ९ श्रुतियोंका है। अर्थात् स और र दोनोंका मध्यम-संवाद स्थापित हो जाता है। (परि० २ ख २) मध्यम ग्रामका आरम्भ षड्जसे नहीं, मध्यमसे होता है। स्वरोंका नाम बिना बदले हुए म से आरंभ करनेपर म-ग्रामका रूप ऐसा हो जाता है —

इन दो ग्रामोंके नामकरणके विषयमें स्ट्रैंग्वेज़ आदि निरर्थक भ्रममें पड़ गये हैं। भरतने यह स्पष्ट कर दिया है कि पहले ग्रामका नाम षड्ज-ग्राम 'संवादाधिक्य' के कारण पड़ा है; अर्थात् सातों स्वरोंमें षड्ज ही ऐसा है जिसके म और प, दो संवादी हैं। मध्यम-ग्राममे षड्जकी यह विशेषता नष्ट हो जाती है। अब, जब मध्यम-ग्रामको मध्यमसे आरम्भ करते हैं तो मध्यम ही ऐसा स्वर रह जाता है जिसके दो संवादी, न और सं हैं। इसलिए संवादाधिक्यके सिद्धान्तपर ही इस दूसरे ग्रामकी संज्ञा मध्यम ग्राम पड़ी है। तीसरे ग्रामकी संज्ञा गान्धार-ग्राम भी इसी नियमके आधारपर है (अनु० ९१)।

८५—भरतकी पद्धतिमे दो ही विकृत स्वर हैं जिन्हें स्वर-साधारण कहते हैं। जब गान्धार मध्यमकी दो श्रुतियाँ ले लेता है तब वह 'मध्यम-साधारण' होता है और इस गान्धारको 'अंतर गान्धार' कहते हैं। इसी प्रकार षड्जकी दो श्रुतियाँ लेकर शुद्ध निषाद 'षड्ज साधारण' होता है जिसे 'काकली निषाद' कहते हैं। पर इन अंतर स्वरोंका प्रयोग अल्पमात्रामे, केवल आरोहीमें होता है (परि० २ ख ३)। तात्पर्य यह कि इन विकृत स्वरोंका भरतकी पद्धतिमें केवल 'प्रवेशक स्वर' के रूपमे उपयोग होता है। तान जब नीचेके स्वरोंको छोड़कर किसी ठहरावके स्वरपर जाता है तो

इस स्वरसे दो श्रुति नीचेका स्वर छूकर जाता है। जैसे, सीधे 'प—सं' न लेकर 'प—न सं' लिया जाता है। जहाँ बड़े अंतरालका लंघन होता है वहाँ यह क्रिया स्वाभाविक है। यहाँ 'न' का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। यह प से सं में प्रवेश करनेका एक द्वार मात्र है इसीलिए ऐसे स्वरोंको 'प्रवेशक स्वर' कहते हैं। यह सदा स्थायी स्वर या स्वरितके साथ आता है।

प्रवेशक-स्वरके प्रसंगमें हेल्महोज़का मत नीचे दिया जाता है—

" 'तीव्र निषादका षड्जके साथ एक विलक्षण सम्बन्ध पैदा हो गया है, जो आधुनिक संगीतमें 'प्रवेशक स्वर' (लीडिंग् नोट) के नामसे व्यक्त किया जाता है। तीव्र निषादका तार षड्जसे अर्धस्वरका अंतर है जो ग्राममे सबसे छोटा अंतराल है। तार षड्जसे इस निकटताके कारण तीव्र 'न' का उच्चारण, ग्रामके ऐसे स्वरसे जानेपर भी जिनका तीव्र न से कोई सम्बन्ध नहीं, बड़ी सरलता और स्पष्टतासे होता है। जैसे, म—न का लंघन कठिन है, क्योंकि इन स्वरोंमें कोई सम्बन्ध नहीं है। पर जब गायक 'म—न सं' तान लेता है तो वह 'म—सं' की धारणा बाँधता है जो-सुगमतासे सम्पन्न हो सके, पर वह अपने स्वरको पहले इतना नहीं उठाता कि वह सं पर पहुँच जाय और इस प्रकार रास्तेमे 'न' का स्पर्श करता है। .. इसीलिए यह कहा जाता है कि 'न' के द्वारा सं में प्रवेश होता है या 'न' सं का प्रवेशक स्वर है।" "इसलिए सभी आधुनिक मूर्छनाओंमें—वहाँ भी, जहाँ 'न' का आना उचित नहीं—टीप (सं) तक पहुँचनेवाले आरोही तानोंमे तीव्र 'न' को प्रधानता दी गई है।" आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीतमें भी यह देखा जाता है कि काफी, खम्माज आदि रागोंमें, जहाँ कोमल न का प्रयोग होना चाहिए, आरोहीमें तीव्र न आता है। ऐसे रागोंमें जिनमें दोनों गान्धार और दोनों निषाद हों, नियमित रूपसे अवरोहीमें कोमल और आरोहीमें तीव्रका प्रयोग होता है। ऐसे रागोंमें तत्त्वत आरोहीमें निषाद और गान्धारको वर्ज्य मानना चाहिए। क्योंकि तीव्र न और तीव्र ग का प्रयोग तो स्वभावत प्रवेशक रूपमें होता है।

अंतर स्वरोंके प्रसंगमे भरतके आदेशका यही तात्पर्य है। ऊपरकी विवेचनासे भरतके इस नियमका औचित्य भी सिद्ध होता है।

८६—षड्जका प्रवेशक काकली न और मध्यमका प्रवेशक अंतर ग, इन दो ही विकृत स्वरोंकी कल्पनासे षड्ज और मध्यमका महत्त्व सिद्ध होता है। षड्जका महत्त्व तो निर्विवाद है योंकि यह अन्य ६ स्वरोंका जनक है। पर भरतने मध्यमकी भी बड़ी महिमा बताई है। उन्होंने इसे 'अविलोपी' माना है; इसीलिए ओड़व और षाड़वमें और सभी स्वर लुप्त हो सकते हैं पर मध्यमका लोप कभी नहीं होता। इसका कारण यह है कि भरत सप्तकके माननेवाले थे, जो दो संयुक्त चतु संघातोंसे बनता है। जैसे,
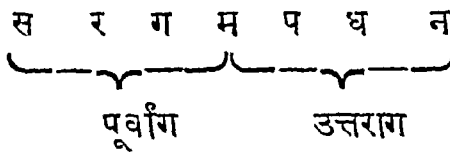
इसमे पूर्वांग या प्रथम चतु.संघातके सभी स्वरोंके पंचम-संवादी उत्तरांगमें हैं। केवल म का कोई पंचम-संवादी नहीं है जो दोनों चतु संघातोंको जोड़ता है। यदि तार षड्जको जोड़कर अष्टक बनाया जाय, जैसा कि प्रचलित प्रथा है, तो मध्यमका महत्त्व घट जाता है और पञ्चमको षड्जका महत्त्व मिल जाता है। क्योंकि अब अष्टक वियुक्त चतु संघातोसे बनता है जिसके उत्तरागमें प का वही स्थान है जो पूर्वांगमें स का है। जैसे —

स र ग म   प ध न सं

पूर्वांग   उत्तरांग
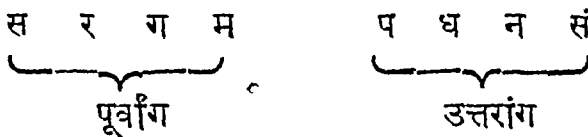
अब म समेत पूर्वांगके सभी स्वरोंका उत्तरागमे पंचम संवादी मौजूद है। भरत-पद्धतिमें मध्यमका महत्त्व संगीतकी पूर्वावस्थाका द्योतक है। जबतक कण्ठ-संगीतकी प्रधानता रहती है तबतक मध्यम ही प्रधान रहता है। जब वाद्यका अधिकार बढ़ता है तब पञ्चम मुख्य हो जाता है। क्योंकि कण्ठसे म अधिक स्पष्ट, और सरलतासे, निकलता है; पर वाद्यमें पञ्चम-संवाद अधिक स्पष्ट और पूर्ण होता है।

८७—विकृत स्वरोंके अभावमें सगीतका क्षेत्र दो ही ग्रामोंतक सीमित हो जाता है। इसलिए इस अभावको दूर करनेके लिए भरतने 'मूर्छना' की व्यवस्था की है। मूर्छना किन्हीं सात स्वरोंके क्रमबद्ध उतार-चढावको कहते है। एक ग्रामके किसी भी स्वरको आधार मानकर क्रमश सात स्वर नीचे उतरनेसे एक मूर्छना बन जाती है। इस प्रकार एक ग्राममें ७ मूर्छनाएँ हो सकती हैं। इस हिसाबसे प-ग्राम और म-ग्राम मिलाकर १४ मूर्छनाएँ होती हैं। इन मूर्छनाओंमें-से प्रत्येकके तीन-तीन भेद और हो सकते हैं। जैसे, (१) अतर गाधार या (२) काकली निषाद या (३) अंतर गाधार औ काकली निषाद वाली मूर्छना। अर्थात् प्रत्येक मूर्छनाके एक शुद्ध और तीन विकृत भेद मिलकर ४ भेद हुए। इस प्रकार मूर्छनाओंके कुल भेद ५६ हुए। इस प्रकार मूर्छनाओंके उपयोगसे एक ग्रामसे अनेक उपग्राम निकल पड़े और संगीतका क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया। ये मूर्छनाएँ अवरोही क्रमसे बनाई जाती थीं। भरत-कालमें वैदिक पद्धतिका अवरोही क्रम ही प्रचलित था। प्राचीन यूनानी ग्राम भी अवरोही क्रममें ही पाये जाते हैं। इसलिए ग्राम-मूर्छनाका यह क्रम प्राचीनताका द्योतक है।

दोनों ग्रामोंकी मूर्छनाएँ आरोही क्रममें श्रुति-सख्या और नामके साथ नीचे दी जाती हैं—

षड्ज ग्राम—

स ३ र २ ग ४ म ४ प ३ ध २ न ४ सं ३ रं २ गं ४ मं ४ पं ३ धं २ नं ४ सं।

१—[स] स ३ र २ ग ४ म ४ प ३ ध २ न ४ (सं)—उत्तर मन्द्रा।

२—[र] र २ ग ४ म ४ प ३ ध २ न ४ सं ३ (रं)—अभिरुद्गता।

३—[ग] ग ४ म ४ प ३ ध २ न ४ सं ३ रं २ (गं)—अश्वाक्राता।

४—[म] म ४ प ३ ध २ न ४ सं ३ र २ गं ४ (मं)—मत्सरीकृता।

५—[प] प ३ ध २ न ४ सं ३ रं २ गं ४ मं ४ (प)—शुद्ध षड्जा।

६—[ध] ध २ न ४ स ३ र २ ग ४ मं ४ प ३ (ध)—उत्तरायता।

७—[न] न ४ सं ३ रं २ ग ४ मं ४ पं ३ धं २ (न)—रजनी।

मध्यम ग्राम—

म़ ३ प़ ४ ध़ २ ऩ ४ स ३ र २ ग ४ म ३ प ४ ध २ न ४ सं ३ रं २ गं ४ मं

१—[म़] म़ ३ प़ ४ ध़ २ ऩ ४ स ३ र २ ग ४ (म)—सौवीरी ।

२—[प़] प़ ४ ध़ २ ऩ ४ स ३ र २ ग ४ म ३ (प)—हृष्यका ।

३—[ध़] ध़ २ ऩ ४ स ३ र २ ग ४ म ३ प ४ (ध)—पौरवी ।

४—[ऩ] ऩ ४ स ३ र २ ग ४ म ३ प ४ ध २ (न)—मार्गी ।

५—[स] स ३ र २ ग ४ म ३ प ४ ध २ न ४ (सं)—शुद्ध मध्या।

६—[र] र २ ग ४ म ३ प ४ ध २ न ४ सं ३ (रं)—कलोपनता ।

७—[ग] ग ४ म ३ प ४ ध २ न ४ सं ३ रं २ (ग)—हरिणाश्वा ।

प्राचीन यूनानी पद्धतिमें भी इसी तरहकी मूर्छनाओंका प्रयोग होता था जिन्हें 'मोड' कहते थे। इन मोडोंसे अनेक प्रकारके संक्रम तैयार होते थे। जब पाश्चात्य देशोंमें संहतिका प्रचार हुआ तो इन सारे मोडोंका लोप हो गया और गुरु ग्राम और लघु ग्राम—ये दो ही मोड रह गये, क्योंकि संहतिके लिए ये ही उपयुक्त समझे गये।

यह निश्चित है कि भरतके ग्रामोंमें मूर्छनाओंके स्वरोंका न तो स्थान बदलता और न संज्ञा ही बदलती है। किसी ग्रामकी ध-मूर्छना उस ग्रामके धैवतसे ही शुरू होती है (अनु० ६२); ऐसा नहीं कि धैवतको षड्ज मानकर सभी स्वरोंकी संज्ञा क्रमानुसार बदल दी जाय और इस प्रकार एक नया ग्राम बनाकर उसे सदेह मध्य सप्तकमें सरका दिया जाय। ऐसा करनेसे फिर मूर्छनाकी आवश्यकता न रहती—एक ग्राममें विकृत स्वरोंके प्रयोगसे ही काम चल जाता। दोनों ग्रामोंके प्रयोगसे और इनकी प्रत्येक मूर्छनाके अंतर ग और काकली न के साथ चार-चार भेदोंके विधानसे यह सिद्ध है कि मूर्छनामें भरतके स्वर अपना स्थान या संज्ञा नहीं छोड़ते; नहीं तो इन विकृत मूर्छनाओंका कोई अर्थ न होता। अचल मूर्छनाओंका यह विधान शार्ङ्गदेवके समयमें नहीं रहा; इसीसे उन्होंने १२ विकृत स्वरोंका प्रसंग दिया है (अनु० ६३)।

भरतकी पद्धतिमें मध्यमको प्रधानता दी गई है (अनु० ८६)। मूर्छनामें भी मध्यमका महत्त्व पाया जाता है। भरतने कहा है—**"मध्यमस्वरेण तु वैणेन मूर्छना निर्देशो भवति अनाशित्वात्। · मूर्छनाप्रयोगमपि स्थान-प्राप्त्यर्थः। स्थानं तु त्रिविधं ··।"** मतङ्गने सम्भवत इसीकी व्याख्या करते हुए कहा है—**"मध्यसप्तकेन मूर्छनानिर्देशः कार्यो मन्द्रतारसिद्ध्यर्थम्।"** किन्तु, 'मध्यम स्वर'का अर्थ 'मध्य सप्तक' उचित नहीं जान पड़ता। भरत-वाक्यका अर्थ है—"वीणा-वादक मूर्छनाका निर्देश मध्यम स्वरसे करते हैं, क्योंकि इसका नाश नहीं होता। ·· मूर्छनाका प्रयोजन भी स्थान प्राप्ति है। स्थान तीन प्रकारके हैं [मन्द्र, मध्य और तार]।" यहाँ मध्यम स्वरको 'अनाशी' बतानेसे यह स्पष्ट है कि इसका अर्थ स्वर है, सप्तक नहीं। इस दृष्टिसे भरतकी वीणाके स्वरोंके सम्बन्धमें बड़े महत्त्वकी बातें निकलती हैं।

भरतकी वीणामें १३ स्वर १३ सुन्दरियों पर स्थापित हैं। इन स्वरोंके साथ खुले तारका स्वर मिलानेसे १४ स्वर हो जाते हैं, जिनमें सातो मूर्छनाएँ आ जाती हैं। यह स्वर-संस्थान नीचे दिया जाता है—

↓

[म़] प़ ध़ ऩ   स र ग म प ध न   सं रं गं
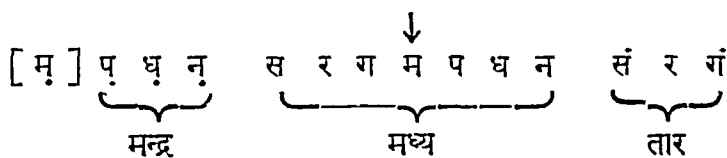
मन्द्र   मध्य   तार

इस प्रबन्धमें मध्यमका स्थान बीचोबीच है। साथ-ही-साथ इसका सम्बन्ध खुले तारके स्वर [म़] से है इसीलिए यह 'अनाशी' है। फिर म से [म़] तक पहली मूर्छना है इसलिए मध्यमसे मूर्छनाका आरम्भ होता है। मध्यमसे निषादतककी मूर्छनाएँ मन्द्र-मध्यव्यापी हैं और षड्जसे गान्धारतककी तार-मध्यव्यापी। इस तरह स्थानकी प्राप्ति होती है। मध्यम ग्रामके लिए 'प' को एक श्रुति कोमल करना होगा। यदि इसके लिए एक नई सुँदरी बैठाई जाय तो सुँदरियोंकी संख्या १४ हो जायगी।

आधुनिक वाद्योंमें भी यही १४ सुँदरियोंवाला प्रबन्ध प्रचलित है। इनमें भी मध्यमका स्थान ठीक बीचमें होता है। मध्यम ग्राम–'प' की जगह तीव्र मध्यमकी सुँदरी रहती है। यह आगे बताया जायगा कि मध्यम ग्राम 'प' ही मध्यकालमें मृदु प या तीव्र म के रूपमें बदल गया है (अनु. ६४)। फिर मन्द्रव्यापी और तारव्यापी मूर्छनाओंकी तरह हिन्दुस्तानी पद्धतिमे मन्द्रव्यापी रागों और तारव्यापी रागोंका अभी भी प्रचार है।

ऊपरका स्वर-समुदाय चार चतु संघातों (चार स्वरोंके संघात) से बना है। प्राचीन यूनानी स्वर-संस्थान भी ऐसे ही चार चतु संघातोंका बना होता था और वाद्योंमें इसीका व्यवहार होता था। वाद्यके बीचके तारको प्रधान माना जाता था जिसे 'मेसा' कहते थे। यह मेसा मध्यमका पर्याय है। इस स्वर-प्रबन्धमे सबसे नीचे एक स्वर 'मन्द्र मेसा' [मृ] और जोड़ दिया जाता था। इसे 'ग्रेट पर्फेक्ट सिस्टम' या 'बृहत्पूर्ण समुदाय' कहा जाता था।

यह एक नियम है कि 'न्यास स्वर' तार स्थानमें कभी न हो। यह न्यास स्वर सदा मूर्छनाके स्वरसे चार स्वर नीचे होता है (अनु. ८८)। ऊपरके स्वर-संस्थानमें सबसे ऊँची मूर्छना गं की है; इसलिए सबसे ऊँचा न्यास-स्वर मध्य स्थान का 'न' होगा जो गं-मूर्छना का न्यास है। इससे भी ऊपरके स्वर-संस्थानकी पुष्टि होती है।

८८—ऊपर दिये हुए मूर्छनाओंसे जातिकी उत्पत्ति हुई। भरत-पद्धतिमे जातिका वही स्थान है जो आधुनिक पद्धतिमें रागका। जैसे ठाटसे राग पैदा होता है वैसे ही मूर्छनासे जाति उत्पन्न होती है। जैसे राग का भेद ठाट, संवादी, वादी आदिपर निर्भर है वैसे ही जातिका भेद मूर्छना, ग्रह, अंश, न्यास आदिपर निर्भर है। 'ग्रह' वह स्वर है जिससे जाति-गानका आरम्भ होता है और 'अंश' वह है जो सबसे प्रधान है अर्थात् 'जीव स्वर' है। 'न्यास' वह स्वर है जिसपर गानकी

समाप्ति होती है। जैसे एक ठाटमें अनेक राग हो सकते हैं वैसे ही एक मूर्छनामें अनेक जातियाँ हो सकती हैं।

जातियोंके कई भेद हैं। जैसे—(१) शुद्ध, (२) विकृत और (३) संसर्गजात। शुद्ध जातियाँ वे हैं जिनका न्यास, अंश, ग्रह एक ही स्वर हो और जो सम्पूर्ण हों। न्यासका स्वर ही जातिकी संज्ञा होती है। जब न्यासको छोड़कर ग्रह, अश आदि बदल जाय या ओड़वता या षाड़वता आ जाय तो विकृत जाति बनती है। पर न्यास कभी विचलित नहीं होता। जो जातियाँ दो या अधिक शुद्ध जातियोंके मेलसे बनती हैं उन्हें ससर्गजात जातियाँ कहते हैं। शुद्ध जातियाँ ७ हैं, ससर्गजात ११ हैं और विकृत अनेक हैं।

प्रतिनिधि रूपमें ७ शुद्ध जातियोंकी सारिणी नीचे दी जाती है—

सारिणी १२

क्रम	जाति	अंश	न्यास	मूर्छना	षाड़व विद्वषी स्वर	ओड़व विद्वेषी स्वर
१	षाड्जी	स ग म प ध	स	उत्तरायता (ध)	न	०
२	आर्षभी	र ध न	र	शुद्ध षड्जा (प)	स	स प
३	गान्धारी	स ग म प न	ग	पौरवी (ध)	र	र ध
४	मध्यमा	स र ग म प ध	म	कलोपनता (रं)	ग	ग न
५	पञ्चमी	र प	प	,, (रं)	ग	ग न
६	धैवती	र ध	ध	अभिरुद्गता (र)	प	स प
७	नैपादी	स न ग	न	,, (रं)	प	स प

ऊपरकी सारिणीसे जातियोंकी प्रकृति प्रत्यक्ष हो जाती है। जैसे शुद्ध षाड्जीका न्यास, अंश आदि स है और यह सम्पूर्ण है। विकृत षाड्जीमें अगर अंश-विकृति हो तो स की जगह ग म प ध मे-से कोई एक अंश होगा; षाड़व विकृति हो तो न का लोप होगा। ओड़व भेद इसमें नहीं होता। इसी प्रकार शुद्ध आर्षभीका न्यास, अंश र होगा और यह सम्पूर्ण होगा। विकृतिकी दशामें अंश ध या न होगा; षाड़वमें स का लोप और ओड़वमें स-प का लोप होगा।

इन जातियोंपर ध्यान देनेसे कई बातें मालूम होती हैं। एक तो यह कि जातियोंमें सभी मूर्छनाओंका उपयोग नहीं हुआ है। शुद्ध-विकृत जातियोंमें तो ५ही मूर्छनाओंसे काम लिया गया है। संसर्गजात जातियाँ मिलाकर १० मूर्छनाओंका प्रयोग हुआ है। स—ग्रामकी दो मूर्छनाएँ, उत्तर मन्द्रा (स) और रजनी (न) और म—ग्रामकी दो मूर्छनाएँ, मार्गी (न) और हृष्यका (प)—ये नहीं पाई जातीं। (यहाँ यह बता देना उचित है कि प्राचीन यूनानी पद्धतिमें भी सभी 'मोड' काममें नहीं आते थे, विशेषरूपसे उत्तर मन्द्रा आदिकी तरह स का मोड, जो यूरपका आधुनिक गुरु ग्राम है, बहुत दिनोंतक बहिष्कृत रहा।) दूसरी बात यह है कि षाड़व-विकृतिमें प्रायः न्यासके नीचेका स्वर वर्जित है। पञ्चमी और नैषादीमें मूर्छनाकी समतासे ग और प वर्जित हुआ है। पञ्चमीमें तो म के अविलोपी होनेसे यह वर्जित हो ही नहीं सकता। फिर ओड़व-विकृतिमें तो नियमित रूपसे षाड़व-विद्वेषी स्वर और उसका पञ्चम संवादी वर्जित हुआ है। इससे भरतकी पद्धतिमें संवादका महत्त्व मालूम होता है; और ओड़व-षाड़व-विकृति भी नियमबद्ध जान पड़ता है।

तीसरी बात न्यासके सम्बन्धकी है। जातियोंमें न्यासकी प्रधानता तो प्रत्यक्ष है; क्योंकि न्यास-स्वरके नामपर ही जातिका नाम चलता है। पर न्यासमें और भी गुण हैं। यह पहले बताया जा चुका है स्वरोंका एक तो अपने निकटतम पड़ोसियोंसे अन्तरालका पारस्परिक सम्बन्ध होता है; दूसरा

इनका अलग-अलग एक आधार स्वरसे सम्बन्ध होता है। इस आधार स्वरको, जिससे सभी स्वर अलग-अलग नापे जाते हैं, सुर स्वरित या अंग्रेजीमें 'टोनिक' कहते हैं। आधुनिक-कालमें इस स्वरितकी भावना बड़ी प्रबल है। पाश्चात्य संगीतमें संघातके गुण इस 'टोनिक' पर ही निर्भर हैं। भारतीय संगीतमें गाना या बाजोंके साथ सुर भरनेकी अनिवार्य्य प्रथा है। इससे सभी स्वर शुद्ध निकलते हैं; राग बेसुरा या स्थानभ्रष्ट नहीं होने पाता। स्वरितका प्रभाव एक दृष्टान्तसे स्पष्ट हो जायगा। किसी बाजेमें यमनके स्वर बाँधकर बजाओ जिसका स्वरित स हो। अब मन्द्र न को स्वरित बाँधकर उन्हीं पटरियों या सुँदरियोंसे राग निकालो। दीख पड़ेगा कि बात-की-बातमें राग यमनसे भैरवीमें बदल गया। स्वरोंके स्थानमें कोई अंतर नहीं पड़ा फिर भी स्वरित बदलनेसे रागका सारा रंग बदल गया। स्वरितका प्रभाव इतना प्रबल होते हुए भी प्राचीन कालमें इसकी भावना दुर्बल थी। फिर भी विद्वानोंने वहाँ भी इसका कुछ आभास पाया है। जैसे हेल्महोज़ने बताया है कि अरिस्टॉट्लने अपने प्रश्नोंमें जो 'मेसा' के गुणकी ओर संकेत किया है वह 'टोनिक' का ही परिचायक है। प्राचीनकालमें चार 'आथेंटिक स्केल' या 'आस ग्राम' प्रचलित थे जिनकी मूर्छनाएँ क्रमश र, ग, म और प थीं। इन ग्रामोंका 'यह पुराना नियम था कि पहली मूर्छनाके गानकी समाप्ति र पर, दूसरीकी ग पर, तीसरीकी म पर और चौथीकी प पर होनी चाहिए'। हेल्महोज़ कहते हैं—'यह (नियम) इन स्वरोंको हम लोगोंके ही अर्थमें टोनिक निर्दिष्ट कर देता है।' पर प्राचीन भारतीय संगीतके विषयमें हेल्महोज़ने कहा है—"भारतवासियोंमें भी स्वरितकी धारणा थी, यद्यपि उनका संगीत भी ऐसा ही (प्राचीन यूनानी संगीतकी तरह ही) वैयक्तिक एककण्ठी था।[1] वे स्वरितको 'अंश' कहते थे।" हेल्महोजकी धारणाका आधार जोन्सका

१—पाश्चात्य पण्डितोंका विश्वास है कि स्वरित (टोनिक) की धारणा बहुकण्ठ-संगीत या संहति-संगीतमें ही प्रस्फुटित होती है।

विचार है जिन्होंने रागोंमें अंशकी प्रधानताके कारण ही,इसे स्वरित मान लिया है। आज भी रागमें वादीका वही महत्त्व है जो पहले अंशका था। पर वादी स्वरित नहीं होता। जातियोंके निरीक्षणसे यह स्पष्ट है कि यदि कोई स्वर स्वरित हो सकता है तो वह 'न्यास' ही है। न्यास ही ऐसा है जो जातिको संज्ञा देता है। और न्यास ही ऐसा है जो सबके विकृत होनेपर भी अचल रहता है। हेल्महोज़ने भी प्राचीन आत-ग्रामके प्रसंगमें न्यासको ही स्वरित माना है। पर भारतीय संगीतके सम्बन्धमें वे जोन्सके विचारसे भ्रममें पड़ गये हैं। जातियोंपर ध्यान देनेसे पता चलता है कि न्यास प्राय· मूर्छनाके स्वरसे कम-से-कम चार स्वर नीचे होता है। जैसे, आर्षभीकी मूर्छना 'प' और न्यास 'र' है; गान्धारीकी मूर्छना 'ध' और न्यास 'ग' है। न्यासका यह नियम प्राचीन यूनानी पद्धतिमें भी पाया जाता है। अब अगर वीणाका ऊपर बताया हुआ गं—म् स्वर-सस्थान (अनु· ८७) माना जाय जिसमे सातो मूर्छनाएँ आ जाती हैं, तो यह नियम भी सिद्ध हो जाता है कि न्यास तार स्वर कभी नहीं हो सकता। मूर्छना-प्रबंधका सबसे ऊँचा स्वर ग है जिससे चार स्वर नीचे न मध्य सप्तकमें पड़ता है। इस प्रकार किसी भी मूर्छनामे जातिका न्यास तार सप्तकमें नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त न्यास-स्वर मूर्छनाके बीचका स्वर होता है जिसमे 'मध्यम स्वर' की विशेषता आ जाती है और यह म की तरह ही अविलोपी हो जाता है।

ऊपरके विवरणसे यह स्पष्ट है कि भरतकी पद्धतिमे बड़े ही सरल नियमोंके द्वारा श्रुतिसे स्वर, स्वरसे ग्राम, ग्रामसे मूर्छना और मूर्छनासे जातिका प्रादुर्भाव हुआ है। इस पद्धतिकी प्राचीन यूनानी पद्धतिके साथ समता भी ध्यानमें रखनेकी बात है।

(ग) शार्ङ्गदेव-पद्धति।

८९—भरतकी पद्धतिके सरल होनेपर भी उनका जातिगान अज्ञात है। शताब्दियोंतक जिन जातियोंका प्रचार नहीं रहा, आज उनकी रूप-रेखाकी कल्पना भी सम्भव नहीं। भरतके बाद, मतंगके समयमे

ही जातियोंके बदले राग-पद्धतिका प्रचार हो गया था। मतंगने अपने बृहद्देशी नामक ग्रन्थमें पहले-पहले प्रचलित रागोंकी विवेचना की और यह भी स्पष्ट कर दिया कि भरतादि प्राचीनोंने रागोंकी चर्चा नहीं की है।[१] पर देशी रागोंका वर्णन अपनी कृतिका मुख्य उद्देश्य मानकर भी मतगने भरतकी ही पद्धतिका अनुकरण किया। मतंगके बाद शार्ङ्गदेवने भी मार्ग और देशीका भेद बताकर मतंगकी भाँति ही देशी रागोंका वर्णन किया है। पर संगीत-शास्त्रका जहाँतक सम्बन्ध है, शार्ङ्गदेवके संगीत-रत्नाकरको भरत-पद्धतिपर महाभाष्य समझना चाहिए। ऐसा जान पड़ता है कि शार्ङ्गदेवके समयमें ग्राम-जातियोंका प्रायः लोप हो गया था। ऐसी स्थितिमें शार्ङ्गदेव जैसे आचार्य यदि भरत-पद्धतिका मोह छोड़कर प्रचलित सगीतको ही स्वतन्त्र रूपसे नियमबद्ध करनेका प्रयास करते, जैसा कि भरतने किया, तो शार्ङ्गदेवकी पद्धति इतनी दुरूह न होती। यह ध्यान देनेकी बात है कि भरतने तो गान्धार-ग्रामकी चर्चा न की पर सदियों बादके आचार्योंने गान्धार ग्रामका संस्थान और इसकी मूर्छनाओंके नाम तक बताये हैं। शार्ङ्गदेवने भी इसका वर्णन किया है पर अन्तमें कह दिया है—" ...तं **नारदो मुनिः प्रवर्त्तते स्वर्गलोके ग्रामोऽसौ न महीतले ॥**" इस प्रकार प्रचलित और अप्रचलितके मेलके कारण रत्नाकरके राग भरतकी जातियोंसे भी अधिक दुर्बोध हो गये हैं। भरतकी पद्धति यदि अज्ञात है तो शार्ङ्गदेवकी पद्धति दुर्बोध है। पर आचार्य शार्ङ्गदेवकी विद्वत्ता निर्विवाद है। विस्तारमे और संगीतके सांगोपांग वर्णनमे रत्नाकरकी तुलना दूसरा कोई भी ग्रन्थ नहीं करता। इसीसे रत्नाकरके संगीतका सच्चा रूप आज पूरी तरह अज्ञात होने पर भी, दक्षिण और उत्तरके सभी संगीताचार्य रत्नाकरको सगीत-कलाका वेद ही मानते चले आये हैं। शार्ङ्गदेवकी

१—रागमार्गस्य यद्रूपं यन्नोक्तं भरतादिभिः।
निरूप्यते तदस्माभिर्लक्ष्यलक्षणसंयुतम् ॥
रागलक्षण-बृहद्देशी।

कृतिके बाद ऐसा शायद ही कोई ग्रन्थ रचा गया जिसका आधार रत्नाकर न हो।

९०—शार्ङ्गदेवने पहले नादके अनाहत और आहत नामक दो भेद करके आहतनादकी उत्पत्तिकी विवेचना गम्भीर वैज्ञानिक विधिसे की है। उन्होंने शारीरके आधारपर नादकी उत्पत्ति बताई है; यहाँतक कि २२ श्रुतियोंके लिए २२ नाड़ियोंकी भी कल्पना की है। यह ठीक है कि आज शार्ङ्गदेवकी धारणा निराधार प्रतीत होती है। पर शार्ङ्गदेवकी विवेचना उस युगके सर्वमान्य शारीर और तन्त्रके सिद्धान्तोंपर निर्भर है। फिर आहत नादके पाँच भेद बताये गये हैं। जैसे, पुष्ट, अपुष्ट, सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म और कृत्रिम। ये पाँचों नाद पाँच भिन्न-भिन्न स्थान या तारताके हैं (परि० २ ग २)। इस भेदका आधार व्यक्तिके कंठकी स्वाभाविक वृत्ति है। पाश्चात्य पद्धतिमें भी कंठनादके साधारणतः ये ही पाँच भेद माने गये हैं। जैसे—

बास्स — पुष्ट— } पुरुष कण्ठ
टेनर — अपुष्ट— }
आल्टो — सूक्ष्म— } स्त्री कण्ठ
सोप्रेनो — अतिसूक्ष्म— }

फॉल्सेटो—कृत्रिम—जब ध्वनि ऊँची होकर कण्ठके विस्तारके बाहर चली जाती है तब जो एक बनावटी मशीन आवाज़ निकलती है।

प्रत्येक व्यक्तिके कण्ठ-स्वरका विस्तार तीन सप्तकोंतक माना गया है। ये मन्द्र, मध्य और तार नामक स्वरके तीन स्थान हैं। हृदयमें मन्द्र, कण्ठमें मध्य और मस्तकमें तार पैदा होता है जो उत्तरोत्तर दूना होता जाता है (परि० २ग ३)। पाश्चात्य पद्धतिमें मन्द्रको 'चेस्ट वोयस' कहते हैं और तारको 'हेड वोयस'। मन्द्र सप्तकके स्वरोंकी आवृत्तिसे मध्य सप्तकके स्वरोंकी दूनी, और तारके स्वरोंकी चौगुनी होती है। तारकी लम्बाईसे स्वरोंके सम्बन्ध-निर्णयकी

भौतिक विधि पहले-पहल अहोबलने बताई है। पर ऐसा जान पड़ता है कि कम-से-कम तीन स्थानोंके स्थापनमें शार्ङ्गदेवने भी इस विधिसे काम लिया था।

९१—भरतके माने हुए दो ग्रामोंके अतिरिक्त रत्नाकरमे गान्धार-ग्रामका भी वर्णन मिलता है। गान्धार-ग्रामकी चर्चा अन्य ग्रन्थोंमें भी पाई जाती है। यहाँ तक कि कई पुराणोंमें भी इसका प्रसग आया है। पर भरतकी पद्धतिमें इसका सकेत भी न होना एक महत्त्वकी बात है। रत्नाकरके अनुसार गान्धार-ग्रामका संस्थान इस प्रकार है (परि० २ ग४)—

स २ र ४ ग ३ म ३ प ३ ध ४ न ३ सं

और ग्रामोंकी तरह गान्धार-ग्राम भी गान्धार-से ही आरम्भ होता है। इसलिए इसका प्रकृत रूप यों होगा—

ग ३ म ३ प ३ ध ४ न ३ स २ र ४ (गं)

इस ग्रामके नामकरणके सम्बन्धमें भी विद्वानोंने कल्पना लगाई है। पर और ग्रामोंकी तरह संवादाधिक्यके न्यायपर इस ग्रामका नाम गान्धार-ग्राम अनुचित नहीं है। क्योंकि इसमें गान्धार ही ऐसा स्वर है जिसके दो सवादी हैं। इस ग्रामकी भी नन्दा, विशाला, सुमुखी, चित्रा, चित्रावती, सुखा और अलापा, ये सात मूर्छनाएँ हैं। पर सभी प्राचीन शास्त्रकार मूर्छनाओं समेत इस ग्रामको लुप्त मानते हैं।

९२—मूर्छनाकी धारणामे शार्ङ्गदेवके समयसे ही परिवर्त्तनका सकेत मिलता है। यह बताया जा चुका है कि भरतकी मूर्छनामें स्वरोंकी सज्ञा और स्थान नहीं बदलते। पर शार्ङ्गदेवकी पद्धतिमें मूर्छना सदेह खिसका-कर मौलिक षड्जपर लाई जाती है और इस प्रकार सभी मूर्छनाएँ मध्य सप्तकव्यापी होती हैं (परि० २ ग ५)। इसी दृष्टिसे मतंगने भी कहा है कि—"**मध्यसप्तकेन मूर्छनानिर्देशः कार्यो**···" रत्नाकरके टीकाकार कल्लि-नाथने भी इस परिवर्तनकी ओर संकेत किया है। वे कहते हैं कि "मध्यम-ग्रामोत्पन्न मध्यमादि तोड़ी प्रभृतिका मध्य स्थानके मध्यमको छोडकर मध्य

भौतिक विधि पहले-पहल अहोवलने बताई है। पर ऐसा जान पड़ता है कि कम-से-कम तीन स्थानोंके स्थापनमें शाङ्गदेवने भी इस विधिसे काम लिया था।

६१—भरतके माने हुए दो ग्रामोंके अतिरिक्त रत्नाकरमें गान्धार-ग्रामका भी वर्णन मिलता है। गान्धार-ग्रामकी चर्चा अन्य ग्रन्थोंमे भी पाई जाती है। यहाँ तक कि कई पुराणोंमें भी इसका प्रसग आया है। पर भरतकी पद्धतिमें इसका सकेत भी न होना एक महत्त्वकी बात है। रत्नाकरके अनुसार गान्धार-ग्रामका संस्थान इस प्रकार है (परि० २ ग४)—

स २ र ४ ग ३ म ३ प ३ ध ४ न ३ सं

और ग्रामोंकी तरह गान्धार-ग्राम भी गान्धार-से ही आरम्भ होता है। इसलिए इसका प्रकृत रूप यों होगा —

ग ३ म ३ प ३ ध ४ न ३ स २ र ४ (गं)

इस ग्रामके नामकरणके सम्बन्धमें भी विद्वानोंने कल्पना लगाई है। पर और ग्रामोंकी तरह संवादाधिक्यके न्यायपर इस ग्रामका नाम गान्धार-ग्राम अनुचित नहीं है। क्योंकि इसमे गान्धार ही ऐसा स्वर है जिसके दो सवादी हैं। इस ग्रामकी भी नन्दा, विशाला, सुमुखी, चित्रा, चित्रावती, सुखा और अलापा, ये सात मूर्छनाएँ हैं। पर सभी प्राचीन शास्त्रकार मूर्छनाओं समेत इस ग्रामको लुप्त मानते हैं।

६२—मूर्छनाकी धारणामें शाङ्गदेवके समयसे ही परिवर्त्तनका सकेत मिलता है। यह बताया जा चुका है कि भरतकी मूर्छनामें स्वरोंकी संज्ञा और स्थान नहीं बदलते। पर शाङ्गदेवकी पद्धतिमें मूर्छना सदेह खिसका-कर मौलिक षड्जपर लाई जाती है और इस प्रकार सभी मूर्छनाएँ मध्य सप्तकव्यापी होती हैं (परि० २ ग ५)। इसी दृष्टिसे मतगने भी कहा है कि—"**मध्यसप्तकेन मूर्छनानिर्देशः कार्यो**..." रत्नाकरके टीकाकार कल्लि-नाथने भी इस परिवर्तनकी ओर संकेत किया है। वे कहते हैं कि "मध्यम-ग्रामोत्पन्न मध्यमादि तोड़ी प्रभृतिका मध्य स्थानके मध्यमको छोड़कर मध्य

तो यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि ष–मूर्छनामें ही र और ध को एक-एक श्रुति और प को दो श्रुति उतारकर तथा ग और न को एक-एक श्रुति चढ़ाकर ध–मूर्छना बनाई जा सकती है। अर्थात् अब शुद्ध स्वरोंके अलावा कोमल र, तीव्र ग, कोमल प, कोमल ध, तीव्र न ये पाँच विकृत स्वरोंकी कल्पना करनी पड़ती है। इस प्रकार मूर्छनाओंको एक सप्तकमें लानेका स्वाभाविक परिणाम विकृत स्वरोंकी उत्पत्ति है।

शार्ङ्गदेवने १२ विकृत स्वरोंका निरूपण किया है जो आगेकी सारिणीमें, श्रुति संज्ञा और श्रुति जातिके साथ दिया जाता है।

शार्ङ्गदेवके इस बारह विकृत स्वरोंके विधानसे यह मालूम होता है कि उनके समयमें 'स्वर' से दो पड़ोसी नादोंके बीचका अन्तराल समझा जाता था। तारता या स्थानकी भावना भी स्वरके साथ थी अवश्य, पर निरपेक्ष रूपमें नहीं थी। यह बात स्वरकी परिभाषासे भी प्रकट होती है जहाँ इसे स्निग्ध और अनुरणनात्मकके साथ-साथ श्रुत्यन्तरभावी भी कहा गया है (परि० २ ग ६)। यह इस विचारको पुष्ट करता है कि शार्ङ्गदेवके समयमें स्वरितकी भावना प्रस्फुटित होकर भी प्रबल न हो पाई थी। क्योंकि जबतक स्वरितकी भावना प्रबल नहीं होती तबतक प्रत्येक स्वरका अपने पड़ोसी स्वरोंसे अन्तराल ही मुख्य रहता है। स्वरितकी भावना प्रबल होनेपर प्रत्येक स्वरकी तारता स्वरितकी अपेक्षा निश्चित हो जाती है। स्वरके साथ इस द्वैधभावके सयोगसे जैसे किसी स्वरके स्थानच्युत होनेपर वह विकृत समझा जाता था वैसे ही अपने स्थानपर स्थिर रहकर, अन्तराल बदलनेपर भी वह विकृत समझा जाता था। जैसे, 'काकली निषाद अच्युत षड्ज' मे षड्जका स्थान नहीं बदला पर निषादके दो श्रुति ऊपर चढ जानेसे षड्जका अन्तराल अब दो श्रुति रह गया। इसीसे यह विकृत समझा गया। इसी प्रकार च्युत षड्ज ऋषभ भी विकृत माना गया यद्यपि ऋषभने अपना स्थान नहीं छोड़ा। दूसरी ओर, 'मध्यमग्राम प च्युत मध्यम' है जिसका अन्तराल तो पहले ही जैसा चार श्रुतियोंका ही है पर प के अपने स्थानसे विचलित होनेसे यह

सारिणी १३

जाति	संज्ञा	शुद्धस्वर	विकृत स्वर	विकृत स्वर संज्ञा
दीप्ता	तीव्रा		न' (१)	(१) कैशिकीनिषाद
आयता	कुमुद्वती		न''(२) } (३)	(२) काकली निषाद
मृदु	मन्दा		स्	(३) च्युतषड्जकै·नि·
मध्या	छन्दोवती	१· स	} (४)	(४) अच्यु·ष·का·नि·
करुणा	दयावती		} (५)	(५) च्युतषड्जऋषभ
म०	रञ्जनी			
मृ०	रक्तिका	२· र		
दी०	रौद्री			
आ०	क्रोधा	३· ग		
दी०	वज्रिका		ग' (६)	(६) साधारण गांधार
आ०	प्रसारिणी		ग''(७) } (८)	(७) अन्तर गांधार
मृ०	प्रीति		म् } (९)	(८) सा· ग·च्यु· म·
म०	मार्जनी	४· म		(९) अ· ग· अ· म·
मृ०	क्षिती		} (१०) } (११)	
म०	रक्ता			
आ०	संदीपनी		प्	(१०) म.ग्रा· प अ·म
क०	आलापिनी	५· प		(११) म·ग्रा·प च्यु·म
क०	मदन्ती		} (१२)	
आ०	रोहिणी			
म०	रम्या	६· ध		(१२) मध्यम ग्राम ध
दी०	उग्रा			
म०	क्षोभिणी	७· न		

विकृत समझा गया। रामामात्यके समयमें स्वरितकी भावना प्रबल हो गई थी। इसीलिए उन्होंने चार अच्युत विकृतिवाले स्वर और मध्यम ग्राम प की दो विकृतियोंमेंसे एकको त्यागकर सात ही विकृत स्वर माने हैं। जो स्वर अपने स्थानसे विचलित हुए हैं उन्हींको उन्होंने विकृत माना है (अनु० १०५)।

विकृत स्वरोंकी सारिणीसे एक बात और प्रकट होती है। वह यह कि सप्तकके सभी स्वर विकृतिमें विचलित हुए हैं पर र और ध अपने स्थानपर अचल हैं। इनमें अंतराल-विकृति पाई जाती है; पर स्थान-विकृति नहीं पाई जाती। इन दो स्वरोंको अचल माननेसे त्रिश्रुतिक र और त्रिश्रुतिक ध से छोटा इनका कोई विकृत रूप नहीं दीखता जिनका अस्तित्व मूर्छना-ओंमें पाया जाता है। पर इन दो स्वरोंका श्रुतिमान अब भी अनिश्चित-सा ही है; क्योंकि कर्णाटकी पद्धतिमें, जो आजतक भरत-शार्ङ्गदेवके ष-ग्रामको ही शुद्ध ग्राम मानती रही है, एक ही शुद्ध ऋषभको कोई शास्त्रकार त्रिश्रुतिक और कोई द्विश्रुतिक मानते हैं। यहाँतक कि कर्णाटकी शुद्ध ग्रामको गणितकी भाषामें व्यक्त करनेवाले आधुनिक विद्वानोंमें भी मतभेद मालूम होता है। पर र और ध में स्थान विकृति न होना इस बातको सिद्ध करता है कि ये स्वर दो-दो श्रुतिके हैं। र और ध की अचल प्रतिष्ठा शार्ङ्गदेवके ग्राम और आधुनिक कर्नाटकी ग्राम, दोनों ही में पाई जाती है। इससे यह परिणाम निकलता है कि कर्नाटकी ग्राम शार्ङ्गदेवका अनुकरण करता है। भरतका ग्राम इन दोनोंसे ही भिन्न है। (अनु० १०८)।

पर इन सारे विकृत स्वरोंकी कल्पना करके भी शार्ङ्गदेवने अपने रागोंकी व्याख्या भरतकी प्रणालीमें मूर्छनाके द्वारा ही की है। यदि वे विकृत स्वरोंका उपयोग करते तो आज उनकी राग-पद्धति इतनी दुर्बोध न होती। आगेके शास्त्रकारोंने भी इसी मार्गका अवलम्बन किया है जिससे आधुनिक प्रचलित राग-पद्धति अपने अतीतसे बिल्कुल कटी हुई-सी जान पड़ती है। क्योंकि इसका आधार परम्पराके सिवा कोई ऐसा ग्रन्थ नहीं जिसकी राग-पद्धतिको समझकर अतीत और वर्त्तमानकी तुलना की जा सके।

इन विकृत स्वरोंकी प्रकृतिसे और श्रुति-वीणामें रत्नाकरकी स्वर-स्थापनासे यह सिद्ध है कि भरत-शार्ङ्गदेवके स्वर भी ग्रामकी तरह ही अवरोही थे। अर्थात् षड्ज आदिकी श्रुतियाँ नीचेको जाती थीं—ऊपरको नहीं; जैसा कि कुछ आधुनिक विद्वानोंने मान लिया है। दी हुई सारिणीमें तीव्रा, कुमुद्वती, मन्दा और छन्दोवती इन चार षड्जकी निर्धारित श्रुतियोंमें षड्ज स्वर छन्दोवती पर स्थित है तीव्रा पर नहीं।

६४—शार्ङ्गदेवके शुद्ध-विकृत स्वरमय ग्रामका एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि भरतके दो ग्रामोंमें-से मध्यम ग्रामके परिचायक त्रिश्रुतिक प को षड्ज ग्राममें ही विकृत स्वरके रूपमें ग्रहण कर लिया गया। यही मध्यम ग्राम प आगे चलकर भारतीय सगीतमें तीव्र म या प्रति म के रूपमें प्रकट हुआ। मध्यमग्राम प के तीव्र म मे रूपान्तरकी प्रगतिकी ओर रत्नाकरके टीकाकार कल्लिनाथने साफ तौरसे संकेत किया है। रागविवेकाध्यायमें उन्होंने बताया है कि देशी रागोंमें दोनों ग्रामोंका भेद मिट गया और रामक्रिया जैसे क्रियाङ्गोंमें मध्यमने पञ्चमके दो श्रुतियोंपर अधिकार कर लिया[1] इससे यह प्रतीत होता है कि मध्यम ग्रामका पञ्चम ही आगे चलकर दो श्रुति उतरा हुआ तीव्र मध्यम होकर एक स्वतन्त्र विकृत स्वर बन गया है। भारतीय संगीतके विकासके इतिहासमें यह एक महत्त्वकी घटना है।

६५—यद्यपि शार्ङ्गदेवने श्रुति, स्वर, ग्राम, जाति आदिके वर्णनमें भरतका ही अनुकरण किया है, फिर भी इनकी पद्धतिमें प्रगति और विकासके लक्षणोंका अभाव नहीं है। मूर्छनाओंकी मध्य सप्तकमें स्थापना, विकृत स्वरोंकी कल्पना, मध्यम ग्रामका लोप और प्रति मध्यमकी उत्पत्ति ये सारी बातें रत्नाकरकी मौलिकता प्रकट करती हैं। इसी विकास क्रममें ग्राम-जातियाँ विलीन हो गईं और राग-पद्धतिका प्रादुर्भाव हुआ जिसका वर्णन शार्ङ्गदेवने विस्तारके साथ किया है।

१—'क्रियाङ्गरामक्रियायां मध्यमस्य पञ्चमश्रुतिद्वयाक्रमणं……'।

रत्नाकरके रागोंका रूप आज अज्ञात है; पर इसका यह अर्थ नहीं कि भारतीय संगीतपर रत्नाकरका कोई प्रभाव नहीं। रत्नाकरके राग चाहे दुर्बोध हों पर उसकी राग-पद्धति आज भी प्रचलित है। शार्ङ्गदेवके बताये हुए आलाप-आलप्ति, गमक, अलंकार, तान, कूटतान, वर्ण, धातु आदिके नियम और प्रयोग आज भी उसी रूपमें प्रचलित हैं। रत्नाकरका निबद्ध गान आज भी ध्रुपद (ध्रुवपद) के रूपमें जीवित है। रत्नाकरकी गायकी ही भारतीय संगीतकी गायकी है। इसीलिए भारतीय संगीतके आचार्यों और उस्तादोंको जितनी तृप्ति संगीत-रत्नाकरसे मिलती है उतनी और किसी दूसरे ग्रन्थसे नहीं।

(घ) श्रुति-स्वर-विचार

९६—भरत और शार्ङ्गदेवकी श्रुतियोंका मान क्या था और उन श्रुतियोंसे बने हुए स्वर और ग्राम कैसे थे इसकी विवेचना बहुतेरे विद्वानोंने की है। इसीलिए यहाँ भी इस विषयपर कुछ विचार करना आवश्यक है। श्रुति-विचारमें दो पक्ष प्रधान हैं, एक पक्ष असमानवादी है, दूसरा समानवादी। असमानवादी पक्षमें प्राय सभी पाश्चात्य विद्वान् हैं जो २२ श्रुतियोंको समान नहीं मानते। वे भरतके चतुश्रुतिक, त्रिश्रुतिक और द्विश्रुतिक स्वरोंको क्रमश मेजर टोन (गुरुस्वर), माइनर टोन (लघुस्वर) और सेमी टोन (अर्धस्वर) मानकर चलते हैं (अनु॰४७)। समानवादी पक्षमें प्राय देशी विद्वान् हैं जो सभी श्रुतियोंको समान मानते हैं। वे २२ श्रुतियोंसे बने हुए स्वर-प्रबन्धको, आधुनिक १२ समान अर्धस्वरोंवाले स्वर-प्रबन्धसे अपेक्षाकृत अधिक सच्चा पाकर सन्तुष्ट होते हैं। पर यह तो मानना ही पड़ता है कि भरत-शार्ङ्गदेवका श्रुति-स्वर-विचार कानोंके सूक्ष्म अनुभव और विश्लेषणपर निर्भर था, कुछ गणितकी जटिल क्रियाओं पर नहीं। उन्होंने कहीं भी श्रुति-स्वरोंके नाप-टाकका तरीक़ा नहीं बताया है जिससे उनके स्वरों और रागोंका

ठीक-ठीक पता चल सके। इसलिए श्रुतियोंके प्रसंगमें मतभेद होना स्वाभाविक है। पर आधुनिक गणितके साधनसे यह गुत्थी नहीं सुलझाई जा सकती।

६७—यह बताया जा चुका है कि प्राचीन शास्त्रकारोंने स्वरोंका स्थान पशु-पक्षियोंकी ध्वनिसे निर्धारित किया है (अनु. ८१)। रत्नाकरमें भी यह प्रसंग पाया जाता है (परि० २ ग ७)। पर आधुनिक पण्डित स्वर-निर्धारणके इस संकेतसे सर्वथा उदासीन रहे हैं। इसका कारण यह है कि आधुनिक परिपाटीमें ग्रामके प्रत्येक स्वरकी तारता एक ही स्वरितकी अपेक्षा निश्चित होती है। इसलिए किसी जीवकी ध्वनिको गान्धार और किसीकी ध्वनिको मध्यम तभी माना जा सकता है जब इन दोनोंका माप किसी एक ही स्वरितसे हो। ऐसे सर्वनिष्ठ स्वरितकी सम्भावना नहीं होनेसे स्वर निर्धारणकी यह प्राचीन प्रणाली उन्हें असंगत जान पड़ती है। पर प्राचीनोंके स्वर, कम-से-कम शार्ङ्गदेवके समय तक, दो ध्वनियोंके अन्तराल माने जाते थे। स्वरके साथ एक सर्वनिष्ठ स्वरितकी धारणा नहीं थी। गान्धारका मतलब किसी विशेष तारताके स्वरसे न था बल्कि षड्ज और गान्धारके बीचके अन्तरालसे था, चाहे गाधार और षड्जकी तारता कुछ भी हो। यह बताया जा चुका है (अनु. ७२) कि पशु-पक्षियोंके शब्द एक ही ऊँचाई या तारताके नहीं होते, उनमें उतार-चढ़ाव या अन्तराल होता है। अर्थात् इनकी आवाज़ नीचे सुरसे शुरू होकर बढ़ते-बढ़ते किसी ख़ास ऊँचाई पर पहुँचकर रुकती है। और यह क्रिया हर ज्ञातिके पशु-पक्षियोंमें सदा एक-सी पाई जाती है। यह सारी बातें सामान्य अनुभव और वैज्ञानिक निरीक्षणसे सिद्ध हैं। दृष्टान्तके लिए पञ्चमका निरूपण ले लें। सभी शास्त्रकारोंने कोकिलकी ध्वनिको पञ्चम माना है। कोकिल जब बोलता है तो इसकी आवाज़ एक निम्नतम स्थानसे शुरू होती है और धीरे-धीरे ऊपर उठकर एक उच्चतम स्थान पर पहुँचती है। कोकिलके स्वरका यह विस्तार

निश्चित मानका और स्वाभाविक होता है जो सभी कोकिलोंमें सदा एक-सा पाया जाता है। प्राचीन शास्त्रकारोंका कथन है कि कोकिलकी ध्वनिका यह साग विस्तार षड्ज-पञ्चमके विस्तार या अन्तरालको बताता है। इसी प्रकार अन्य जीवोंके स्वरोंकी भी व्याख्या की जा सकती है। यदि पशु-पक्षियोंकी ध्वनिके द्वारा स्वरोंका मान निर्धारित करनेमें शास्त्रकारोंका यही तात्पर्य्य हो तो प्राचीन स्वर-ग्रामके निर्णयका सूत्र मिल सकता है।

प्राचीन शास्त्रकारोंके इस निर्देशको जितना अनर्गल समझा जाता है सम्भवत यह उतना नहीं है। यह वैज्ञानिक तथ्य है कि जो अन्तराल नादके आवर्त्तकोंपर निर्भर हैं वे जैसे मनुष्यके गलेसे स्वाभाविक रूपसे निकलते हैं वैसे ही पशु-पक्षियोंके गलेसे भी। फिर मनुष्य-मनुष्यके बीच तो परिस्थिति और अभ्यासवश बहुत विभिन्नता आ जाती है। पर एक ज्ञातिके जन्तुओंमें इस आवर्त्तक अतराल या प्रकृत स्वरोंका उच्चारण सदा एक-सा पाया जाता है। डार्विनने हेल्महोज़के सिद्धान्तके आधारपर बताया है कि "हमारे ग्रामके किन्हीं भी दो स्वरोंके बहुतेरे आवर्त्तक उपस्वर एक हा हैं। इसलिए यह बहुत ही स्पष्ट प्रतीत होता है कि यदि किसी जन्तुको सदा एक ही गीत गानेकी इच्छा हो तो वह इसकी पूर्त्तिका प्रयास उन्हीं स्वरोंका एकके-बाद-एक, उच्चारण करके करेगा, जिनके बहुतेरे उपस्वर एक ही हों। अर्थात् वह अपने गानेके लिए उन्हीं स्वरोंको चुनेगा जो हमारे संगीत ग्रामके हैं।" इसलिए इसमें संदेह नहीं कि पशु-पक्षियोंकी ध्वनि मनुष्यके लिए स्वर-निर्धारणका प्रमाण मानी जा सकती है। पर बिना वैज्ञानिक अनुसंधानके यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि प्राचीन आचार्योंका यही तात्पर्य्य था और यदि था तो उनका निरीक्षण कहाँतक ठीक था। इस विषयके निर्णयके लिए यह आवश्यक है कि जिन पशु-पक्षियोंका प्रसंग आया है उनकी ध्वनियोंका रेकॉर्ड लिया जाय और फिर वैज्ञानिक विधिसे उनका अतराल निकाला जाय।

६८—जैसे भरतने प्रमाण-श्रुतिका निर्देश किया है वैसे ही शार्ङ्गदेवने भी श्रुति-वीणाके द्वारा श्रुति-स्वरको सिद्ध करनेकी विधि बताई है। पर दोनोंकी प्रक्रियामें मौलिक अंतर है। भरतने पहले ग्रामके स्वरोंकी स्थापना की है और उससे प्रमाण श्रुति निकाली है। पर शार्ङ्गदेवने पहले २२ श्रुतियोंकी स्थापना की है और फिर उनसे स्वरोंका मान निकाला है। भरतका निर्देश संक्षेपमें यों है—दो एक-सी वीणाओंको पहले षड्ज ग्राममें बाँधो। फिर इनमें-से एकके पंचमको एक प्रमाण-श्रुति उतारकर इसे मध्यम ग्रामका बना दो। इस उतरे हुए पंचमको स्थिर रखकर अब इसे फिर षड्ज ग्राम बनाओ। इस प्रकार दूसरी वीणाका हर एक स्वर पहली वीणाके स्वरोंकी अपेक्षा एक-एक श्रुति नीचे उतर जायगा। फिर इसी तरह उतारनेसे दूसरी वीणाके गान्धार और निषाद पहलीके र और ध से मिल जाएँगे। तीसरे उतारसे दूसरीके ऋषभ और धैवत पहलीके षड्ज और पंचममें और चौथे उतारसे दूसरीके षड्ज, मध्यम और पंचम पहलीके निषाद, गान्धार और मध्यममें मिल जायँगे। (परि० २ ख ४) इस प्रकार दोनों ग्रामोंकी २२ श्रुतियाँ जानी जा सकती हैं। मतलब यह कि भरतने २२ श्रुतियोंकी सिद्धि 'स्वर-वीणा' के द्वारा किया है। दूसरी ओर शार्ङ्गदेवने 'श्रुति-वीणा' का प्रयोग किया है। शायद उनका अभिप्राय भरतकी अस्पष्टताको दूर करना हो। उनकी भी दो वीणाएँ हैं जिनमेंसे हर एकमें बाइस-बाइस तार हैं। उनका निर्देश है कि हर एक अगले तारकी ध्वनि पिछले तारसे बहुत ही थोड़ी ऊँची हो इतनी थोड़ी कि दोनोंके बीच और कोई ध्वनि सुनाई न दे, (परि० २ ग ८) यही शार्ङ्गदेवकी प्रमाण-श्रुति है। इस प्रकार बाइस तारकी ध्वनियाँ लगातार एक-एक श्रुति चढ़ती जायँगी। अब चौथे तारपर षड्ज, सातवेंपर ऋषभ, नवेंपर गान्धार, तेरहवेंपर मध्यम, सत्तरहवेंपर पंचम, बीसवेंपर धैवत और बाइसवेंपर निषादकी स्थापना करनेसे षड्ज ग्राम तैयार हो जाता है। इसके बाद शार्ङ्गदेवने अचल-

वीणाकी अपेक्षा चलवीणाके स्वरोंको सारित करके भरतकी तरह ही बाइस श्रुतियोंको सिद्ध किया है। पर यह क्रिया भरतका अनुकरण मात्र है। क्योंकि जब बाइस श्रुतियाँ पहले ही निश्चित हो गईं तो फिर उनकी सिद्धिका कोई भी प्रयोजन नहीं रहता।

इन दोनों आचार्योंकी विधियोंकी तुलनासे यह परिणाम निकलता है कि भरतकी पद्धतिमें श्रुतियोंका समान होना आवश्यक नहीं है। पर शाङ्र्गदेवने निश्चय ही श्रुतियोंको समान माना है। इसीलिए असमान-वादीके आधार भरत हैं और समानवादीके शाङ्र्गदेव।

६६—अब इन दोनों पक्षोंके अनुसार श्रुतिस्वरका क्या मान निकलता है और प्राचीन ग्रामका कैसा रूप खड़ा होता है इसका विचार आवश्यक है। यदि शाङ्र्गदेवके संकेतपर श्रुतियोंका मान एक-दूसरेके बराबर माना जाय, तो एक सप्तक, अर्थात् स—स का अन्तराल २२ बराबर भागोंमें बँट जाता है। भिन्न-पद्धतिमें स-सं अन्तराल २ होता है। इसलिए २२ श्रुतियोंको परस्पर गुणा करनेसे २ के बराबर होना चाहिये। अर्थात् यदि एक श्रुतिके मानको 'श' मान लिया जाय तो

$$(\text{श} \times \text{श} \times \cdot \times \text{बाईसवाँ श}) = २$$

$$\text{या} \quad (\text{श})^{२२} = २$$

$$\text{या} \quad \text{श} = \sqrt[२२]{२} \qquad (\text{अनु० ४८})$$

अर्थात् एक श्रुतिका अन्तराल २ के बाइसवें मूलके बराबर हुआ। यह मूल निकालनेपर

$$\text{श} = १\cdot०३२ = \frac{१२९}{१२५}$$

पर सेवर्टकी पद्धतिसे यह सारी गणना बड़ी सरल हो जाती है। इसलिए ऊपर भिन्नका संकेत करके अब आगे सेवर्टमें ही गणना की जायगी।

अस्तु, स—सं अतराल ३०१ सेवर्ट होता है। इसलिए एक श्रुतिका अंतराल,

$$\text{श} = \frac{३०१}{२२} = १३\cdot७ \text{ सेवर्ट।}$$

इस हिसाबसे

चतु.श्रुतिक स्वर=१३·७ × ४= ५४·८ सेवर्ट
त्रिश्रुतिक स्वर=१३·७ × ३= ४१·१ ,,
द्विश्रुतिक स्वर=१३·७ × २= २७·४ ,,

आधुनिक स्वरोंके साथ तुलना करनेपर पता चलता है कि चतु श्रुतिक-स्वर गुरुस्वर (मेजर टोन) से लगभग चार सेवर्ट ऊँचा है; त्रिश्रुतिक स्वर लघुस्वर (माइनर टोन) से लगभग ५ सेवर्ट नीचा है; और त्रिश्रुतिक स्वर अर्धस्वर (सेमी टोन) के लगभग बराबर है (अनु० ४६)। इस हिसाबसे शार्ङ्गदेवका शुद्ध ग्राम ऐसा निकलता है—

स	र	ग	म	प	ध	न	सं
०	४१·१	६८·५	१२३·३	१७८·१	२१६·२	२४६·६	३०१

इसमें म इष्ट मध्यमसे लगभग २ सेवर्ट नीचा और प इष्ट पचमसे २ सेवर्ट ऊँचा है। ग और न भी आधुनिक कोमल ग और कोमल न से लगभग १० सेवर्ट उतरे हुए हैं। ये ग् ३२/२७ और न् १६/९ से भी लगभग ५ सेवर्ट छोटे हैं।

इस स्वर–प्रबन्धमें, जो किसी भी ज्ञात स्वर-प्रबंधसे नहीं मिलता, विचारनेकी मुख्य बात यह है कि इसका चतु श्रुतिक अंतराल गुरुस्वरसे भी ३·८ सेवर्ट या लगभग एक कोमा ऊँचा है। यह गुरुस्वर मध्यम और पंचमका अंतराल है; और ये दोनों ही स्वर प्राकृतिक हैं जो सभी देशों और सभी कालोंमें एकसे ही पाये जाते हैं। इसलिए यह मानना पड़ता है कि शार्ङ्गदेव जैसे आचार्य इसके मानमें त्रुटि नहीं कर सकते। जो हो, इसमें कोई संदेह नहीं कि शार्ङ्गदेवकी श्रुतियाँ शुद्ध गणितकी दृष्टिसे बराबर नहीं हैं और न उनका लक्ष्य सम-साधृत ग्रामकी रचना ही था जो आधुनिक पाश्चात्य संगीतमें संहतिकी एक विशेष समस्या लेकर कल्पित हुआ है।

१००—भरतके मार्गपर चलनेसे स्वरोंका मान पहले निश्चित करना होगा फिर श्रुतिका मान निकालना होगा। इस सम्बन्धमें अनेक विद्वानोंने भरतके चतुश्रुतिक स्वरको गुरुस्वर, त्रिश्रुतिकको लघुस्वर और द्विश्रुतिकको अर्धस्वर मान लिया है। ऐसा मान लेनेपर अनायास ही भरतका षड्ज ग्राम इस तरह तैयार हो जाता है:—

स	र	ग	म	प	ध	न	सं
१	$\frac{१०}{९}$	$\frac{३२}{२७}$	$\frac{४}{३}$	$\frac{३}{२}$	$\frac{५}{३}$	$\frac{१६}{९}$	२

$\frac{१०}{९}$ $\frac{१६}{१५}$ $\frac{९}{८}$ $\frac{९}{८}$ $\frac{१०}{९}$ $\frac{१६}{१५}$ $\frac{९}{८}$

यह बताया जा चुका है कि —

गुरुस्वर $\frac{९}{८}$=५१ सेवर्ट
लघुस्वर $\frac{१०}{९}$=४६ सेवर्ट
अर्धस्वर $\frac{१६}{१५}$=२८ सेवर्ट (अनु० ४९)

भरतकी पहली सारणामें चलवीणाका प्रत्येक स्वर अचलवीणाके प्रत्येक स्वरसे एक श्रुति उतरता है। यह बताया गया है कि पहली सारणा षड्ज ग्राम प और मध्यम ग्राम प के अन्तरके बराबर होती है। इसे ही प्रमाण-श्रुति कहते हैं। इस सारणासे मध्यम ग्राम प ऋषभका संवादी हो जाता है, इसलिए मध्यम ग्राम प का मान $\frac{१०}{९} \times \frac{४}{३} = \frac{४०}{२७}$ हुआ। इस प का षड्ज ग्राम प से अंतर $\frac{३}{२} \div \frac{४०}{२७} = \frac{८१}{८०}$ हुआ या ५ सेवर्ट हुआ। यह गुरुस्वर और लघुस्वरका अंतर है जिसे एक कोमा कहते हैं। अब चलवीणाके गान्धार और निषाद भी एक-एक कोमा उतर गये। दूसरी सारणामें चलवीणाके दोनों स्वर अचलवीणाके र और ध में मिल जाते हैं। इसलिए यह दूसरा उतार २३ सेवर्टका हुआ जिसे लीमा कहते हैं। इसलिए दूसरी श्रुति एक लीमा $\frac{२५६}{२४३}$ के बराबर हुई। इन दोनों उतारोंमें चल वीणाके र और ध एक अर्ध स्वर या २८ सेवर्ट उतर गये। इसलिए

ये स्वर अन्चल वीणाके स और प से १८ सेवर्ट ऊँचे रहे। तीसरी सारणामें र और ध, स और प से मिल जाते हैं। इसलिए तीसरी श्रुति एक लघु अर्धस्वर $\frac{25}{24}$ या १८ सेवर्टके बराबर हुई। अब स, म और प के कुल ४६ सेवर्ट उतरनेसे इनमें एक कोमा या ५ सेवर्ट रह गया। चौथी सारणामें ये तीनों स्वर न, ग और म मे मिल जाते हैं। अर्थात् चौथी श्रुति एक कोमाके बराबर हुई। संक्षेप मेः—

चतु श्रुतिक स्वर = कोमा + लीमा + लघु-अर्धस्वर + कोमा

$$= \frac{81}{80} \times \frac{256}{243} \times \frac{25}{24} \times \frac{81}{80}$$

= ५ + २३ + १८ + ५

= ५१ सेवर्ट = $\frac{9}{8}$

त्रिश्रुतिक = कोमा + लीमा + लघु अर्धस्वर

= ५ + २३ + १८ = ४६ सेवर्ट = $\frac{10}{9}$

द्विश्रुति = कोमा + लीमा

= ५ + २३ = २८ सेवर्ट = $\frac{16}{15}$

सभी श्रुतियोंको यदि ग्राममें सजा दिया जाय तो नीचे दिया हुआ चित्र तैयार होता है—

स र ग ↓ म प ध न ↓ सं

ल	ली	को	ली	को	को	ल	ली	को	को	ल	ली	को	ल	ली	को	ली	को	को	ल	ली	को

जहाँ—

को → कोम ५ सेवर्ट ($\frac{81}{80}$)

ल → लघु अर्धस्वर १८ सेवर्ट ($\frac{25}{24}$)

ली → लीमा २३ सेवर्ट ($\frac{256}{243}$)

इस चित्रके अनुसार अन्तर ग और काकली न वाणचिह्नित स्थानपर होंगे जिनका अन्तराल म और सं से एक अर्धस्वर ($\frac{16}{15}$) होगा। अर्थात् इनका मान क्रमश $\frac{5}{4}$ और $\frac{15}{8}$ होगा।

श्रुतियोंका यह मान-निर्णय भरतके सारणा-निर्देशपर हुआ है। पर बहुतेरे विद्वानोंने स्वतन्त्ररूपसे २२ श्रुतियोंका निरूपण किया है। इस निरूपणमें किन्हींने चक्रिक प्रक्रियाका उपयोग किया है, किन्हींने संक्रमिक प्रक्रियाका (अनु० ६५,६६)। दोनों ही प्रक्रियाओंमें अनेक प्रकारके श्रुति-प्रबन्ध बन सकते हैं। और इसका कोई भी उचित कारण नहीं दीखता कि एक श्रुति-प्रबन्धको दूसरेसे श्रेष्ठ या अधिक उपयुक्त क्यों समझा जाय। चक्रिक प्रक्रियामें यदि मध्यमसे आरम्भ करके पञ्चम (३/२) की कड़ीसे आरोहण करते जाँय और २२ वीं कड़ीपर रुक जाँय तो एक विशेष प्रकारका श्रुति-प्रबन्ध निकलेगा। पर यदि पंचमके प्रमाणसे ही अवरोहण करें तो दूसरा ही श्रुति-प्रबन्ध प्राप्त होगा। और यदि दोनों का मिश्रण करें तो अनेक प्रकारके श्रुति-प्रबन्ध सिद्ध किये जा सकते हैं। ऐसे ही सक्रमिक प्रक्रियाके द्वारा भी अनेक प्रकारके श्रुति-समुदाय तैयार किये जा सकते हैं। नीचे उदाहरण रूपमें मध्यमसे आरोही चक्रके द्वारा प्राप्त श्रुति-स्थानोंको सारिणीमें दिया गया है। साथ-ही-साथ, तुलनाके लिये, सक्रमिक प्रक्रियासे प्राप्त स्थानोंको भी दिया गया है जिसका निरूपण स्ट्रैंङ्गवेज़ आदि विद्वानोंने और जिसका अनुमोदन श्रीनिवास आयंगार, सुब्रह्मण्य अय्यर आदि भारतीय सङ्गीत-पण्डितोंने किया है।

ऊपरकी सारिणीमें दिये हुए सक्रमिक स्वरोंका निरूपण स्ट्रैंगवेज़ने पंचम-संवाद (आरोही और अवरोही) और गान्धार-सवाद (५/४) के प्रयोगसे किया है। क्लेमेन्टके संशोधनमें २५६/१३५ और ६४/४५ गान्धार-संवादी और ६३/४० और २१/२० सासिक-सवादी अर्थात् ध्वनिके सातवें आवर्त्तकसे निकले हुए स्वर हैं। इन स्वरोंका निरूपण उन्होंने पूना-निवासी देवलके प्रयोगोंके आधारपर किया है। श्रीनिवास आयगारके कथनानुसार अकलङ्कने ३२०/२४३, (१२० से॰) और १६०/८१ (२६६) और माने हैं अर्थात् २४ श्रुतियाँ मानी हैं।

इस सारिणीको देखनेसे यह मुख्य बात निकलती है कि चाहे चक्रिक स्वरोंको लें या संक्रमिक स्वरोंको, तीन ही प्रकारके अंतराल उपयोगमें आये

सारिणी १४

चक्रिक प्रक्रिया			संक्रमिक प्रक्रिया				
स्वर	स्थान (सेवर्ट)	अंतराल		भिन्न	सेवर्ट	विकल्प	
						स्ट्रैंगवेज़	क्लेमेन्ट
स	०		स	१	०		
न′	५	५		२५६/२४३	२२	८१/८० ५ से.	२१/२० — २१ से
स′	२८	२३		१६/१५	२८		
न″	३३	५		१०/९	४६		
र	५१	१८	र	९/८	५१		
स″	५६	५		३२/२७	७४		
र′	७९	२३		६/५	७९		
ग	१०२	२३	ग	५/४	९७		
र″	१०७	५		८१/६४	१०२		
म	१२५	१८	म	४/३	१२५		
ग′	१३०	५		२७/२०	१३०		
म′	१५३	२३		४५/३२	१४८		
ग″	१५८	५		६४/४५	१५३		६४/४५ १५३
प	१७६	१८	प	३/२	१७६	→ ४०/२७ १७१	
म″	१८१	५		१२८/८१	१९९		६३/४० १९७
प′	२०४	२३		८/५	३०४		
म‴	२०९	५	ध	५/३	२२२		
ध	२२७	१८		२७/१६	२२७		
प″	२३२	५		१६/९	२५०		
ध′	२५५	२३		९/५	२५५		
न	२७८	२३	न	१५/८	२७३		
ध″	२८३	५		२४३/१२८	२७८		२५६/१३५ २७८
सं	३०१	१८	सं	२	३०१		

हैं—एक कोमा (५ सें.), दूसरा लघु-अर्धस्वर (१८ से.) और तीसरा लीमा (२३ से.)। यह ध्यान देनेकी बात है कि भरतके तात्पर्यानुसार निकले हुए श्रुति-प्रबन्धमें भी ये ही तीनों अन्तराल पाये जाते हैं (अनु० १००) इससे यह स्पष्ट है कि समश्रुति-प्रबन्धको छोड़कर २२ श्रुतियोंकी अन्य सारी पाटियाँ मूलत समान हैं, इसमें अंतर केवल श्रुतियोंके क्रममें है।

१०२—इन श्रुति-निर्णयोंमें चाहे तो यह मान लिया गया है कि भरतका स्वर-ग्राम आधुनिक प्रकृत ग्राम ही है जिसके अन्तराल ९/८, १०/९ और १६/१५ हैं; या यह कि भरत-ग्राम चक्रिक प्रक्रियासे बना है पर २२ श्रुतियोंकी निष्पत्तिके लिए चक्रका २२ वीं कडीपर ही खण्डित हो जाना आवश्यक है पर ऐसा माननेका कोई कारण नहीं बताया गया है ।

इसलिए यह आवश्यक है कि बिना किसी उत्प्रेक्षाके भरतके निर्देशोंपर विचार किया जाय और यह देखा जाय कि ठीक-ठीक उन निर्देशोंपर चलकर हम कहाँतक आगे बढ सकते हैं।

पहले यह विचार करना है कि प्राचीन शास्त्रोंमें २२ श्रुतियाँ क्यों मानी गई । यों तो यदि षड्ज-ग्रामकी सातों मूर्छनाओंको, बिना श्रुति-मानका विचार किये हुए केवल यह मानकर कि तीन प्रकारके स्वर एक-दूसरेसे बड़े हैं, स और स के बीच स्थापित कर दिया जाय, तो यह देख पड़ेगा कि स–स के बीचके २० स्थान घिर जाते हैं। इसके अतिरिक्त स से लगा हुआ आरोही अतराल और स से लगा हुआ अवरोही अतराल बीचके अंतरालोंसे बहुत बडा रह जाता है । यदि इन अतरालोंको दो-दो हिस्सोंमें बाँट दिया जाय तो स–सके बीच अनायास २२ अतराल या श्रुतियाँ मिल जाती हैं। पर यह नहीं माना जा सकता कि भरतकी धारणा सभी मूर्छनाओंको एक स्थानमें लानेकी थी (अनु० ८७)।

भरतने तीन प्रकारके स्वर माने हैं जिनका अंतराल एक-दूसरेसे बड़ा है—एक सबसे छोटा, दूसरा इससे बड़ा और तीसरा सबसे बड़ा। यह उनकी बताई हुई वशमें तीनों प्रकारके स्वर निकालनेकी विधिसे विदित होता है।

(परि० २ ख ५)। ये तीनों स्वर संगीतोपयोगी हैं। इनमेंसे सबसे छोटे स्वरसे भी छोटा स्वर गलेसे या यन्त्रसे स्पष्ट निकाला जा सकता है; पर स्वतन्त्र रूपमें ऐसे स्वरका संगीतमें उपयोग नहीं होता। इस अनुपयुक्त, फिर भी सुसाध्य, अणुस्वरके मानको यदि एक श्रुति मान लें तो, अनायास ही संगीतोपयोगी लघुतम स्वरको दो श्रुति, इससे बड़े स्वरको तीन श्रुति और सबसे बड़े स्वरको चार श्रुति मानना पड़ेगा। इसमें श्रुतिके किसी निश्चित मानकी स्वीकृति नहीं है। इस प्रकार जब स्वरोंकी द्विश्रुतिक, त्रिश्रुतिक और चतुःश्रुतिक संज्ञाएँ निर्धारित हो जाती हैं तो एक सप्तकमें २२ श्रुतियोंका अस्तित्व सामान्य गणनासे ही सिद्ध हो जाता है।

अब भरतके स्वरोंका विचार करना है। भरतने मध्यम-संवाद और पञ्चम-संवादको बड़ी प्रधानता दी है। संवादके अर्थमें कोई संशय नहीं उठता। कल्लिनाथने जो रत्नाकरकी टीकामें संवादका अर्थ लगाया है निःसन्देह वही भरतको भी मान्य था।[1] अर्थात् दो स्वरोंके साथ-साथ उच्चारणकी इष्टताको ही संवाद कहते हैं। इसलिए यह सिद्ध है कि भरतका मध्यम और पंचम प्रकृत है जिसका मान क्रमशः $\frac{४}{३}$ और $\frac{३}{२}$ है। म और प के अंतरालको चतुःश्रुतिक माना गया है जिसका मान $\frac{९}{८}$ निश्चित है। सप्तकमें इन दोनों स्वरोंकी स्थापना इस प्रकार होगी —
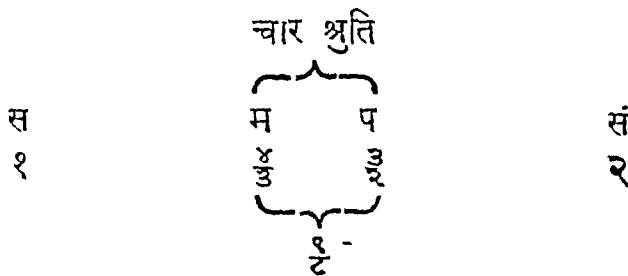
यह बताया गया है कि गान्धार और मध्यमके बीचका अंतराल चार श्रुतिका और उसी प्रकार निषाद और षड्जके बीचका अंतराल भी चार

---

[1] मध्यमस्याविलोपित्वं चाधस्तनानां सरिगाणामुपरितनानां पधनीनां च द्वयोर्द्वयोरेकत्र तन्त्र्यां वदनं संवादित्वं "इति।

श्रुतिका है। इसलिए इन दो स्वरोंका स्थान भी निश्चित हो जाता है। अर्थात् ग का मान $\frac{४}{३} \times \frac{८}{९} = \frac{३२}{२७}$ और न का मान $२ \times \frac{८}{९} = \frac{१६}{९}$ है। अब इन दो स्वरोंका भी समावेश होनेपर सप्तकमें चार स्वर इस प्रकार बैठेंगे —
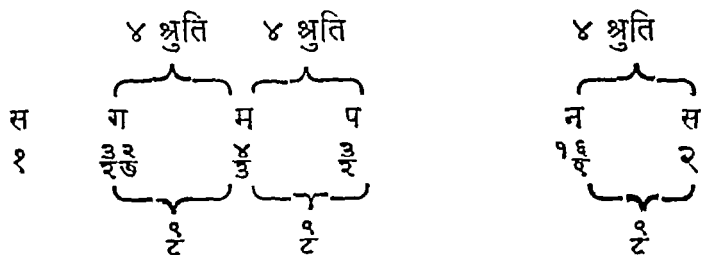
इन चार स्वरोंके स्थानोंमे कोई भी संशय नहीं हो सकता। र और ध का अंतर ग और न से दो-दो श्रुतियोका है। इनकी स्थापना एक महत्त्वपूर्ण संकेतके आधारपर की जा सकती है। भरतने दो श्रुति अंतर वाले ग–म और ध–न स्वरोंको परस्पर विवादी बताया है। यदि यह विवाद भी संवादकी ही भाति व्यापक अनुभवपर निर्भर है तो अवश्य ही इसका आधार प्राकृतिक है। प्राकृतिक अनुभव, निरीक्षण और प्रयोगके द्वारा हेल्महोज़ने यह सिद्ध कर दिया है कि दो स्वरोंमें सबसे अधिक विवाद तभी होता है जब इनका पारस्परिक अन्तर अर्धस्वर या $\frac{१६}{१५}$ होता है (अनु० ५६)। यदि भरतका विवाद भी अनुभवसिद्ध अतएव प्राकृतिक है तो निसन्देह र–ग और ध–न का अंतर $\frac{१६}{१५}$ है। इस प्रकार र का मान $\frac{३२}{२७} \times \frac{१५}{१६} = \frac{१०}{९}$ और ध का मान $\frac{१६}{९} \times \frac{१५}{१६} = \frac{५}{३}$ सिद्ध होता है।

अब भरतका सम्पूर्ण ग्राम इस प्रकार प्रस्तुत होता है —
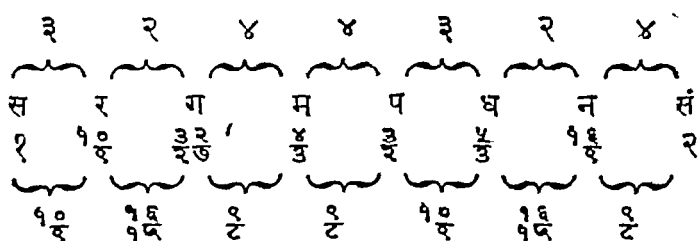
यह ग्राम-संस्थान बिल्कुल वैसा ही है जैसा अनु० १०० में दिया गया है। यदि 'संवाद' और 'विवाद' के प्राकृतिक आधारको मान लिया जाय तो भरत-ग्रामका यह संस्थान निर्विबाद सिद्ध हो जाता है।

अंतमे इस ग्रामके व्यावहारिक रूपपर भी थोड़ा विचार करना आवश्यक है। इस ग्रामका ऋषभ प्रचलित ग्रामोंके ऋषभसे एक कोमा उतरा हुआ है। पर भरतका ग्राम अवरोही था। और यह अनुभवसिद्ध है कि स्थिर स्वरोंको छोड़ शेष स्वरोंकी प्रवृत्ति अवरोहणमें आप-से-आप नीचे उतरनेकी और आरोहणमे ऊपर चढ़नेकी होती है। इसलिए यदि भरत-ग्रामको आधुनिक प्रथाके अनुसार आरोही क्रममें उपयोग किया जाय तो यह ग्राम आप-से-आप काफ़ी ठाठमे या मध्ययुगीय शुद्ध ग्राममे (अनु० ११३) बदल जाता है। इस विषयपर आगे भी प्रकाश डाला जायगा।

१०३—यहाँ एक बातपर और विचार करना उचित है। कुछ पाश्चात्य पण्डितोंका मत है कि प्रकृत अर्धस्वर (१६/१५) की धारणा तभी होती है जब प्रकृत गाधार (५/४) का प्रयोग होने लगता है। और तभी लघुस्वर (१०/९) का भी प्रादुर्भाव होता है। पाश्चात्य देशोंमे प्रकृत ग्रामका उपयोग, विज्ञानके प्रभावसे और पहले-पहल ज़ार्लिनो (१५४०–१५६४) के विधानपर होने लगा है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि भरत-ग्राममें लघुस्वरका अस्तित्व कष्ट-कल्पना मात्र है। पर भारतीय संगीतमे लघुस्वर (१०/९) और अर्धस्वर (१६/१५) परम्परासिद्ध हैं। आधुनिक विज्ञान तथा पाश्चात्य पद्धतिसे पूरी तरह अनभिज्ञ अहोबलने जो तारकी लंबाईसे स्वरोंको निर्धारित किया है, उनमे ये दोनों अंतराल निश्चित रूपसे मौजूद हैं, यद्यपि प्रकृत गाधार (५/४) की उन्होने चर्चा नहीं की है। पूर्वांगमें उनके स्वरोंका स्थान, अंतरालके साथ, इस प्रकार है—

स		र		ग		म
१		९/८		६/५		४/३
	९/८		१६/१५		१०/९	

(अनु० ११३)

इसमें दोनों ही प्रकृत अंतराल मौजूद है, सिर्फ़ उनके क्रममे भेद है। बात यह है कि लघुस्वर ($\frac{१०}{९}$) की उत्पत्तिके लिए प्रकृत गान्धार ($\frac{५}{४}$) उतना ही उपयोगी है जितना कोमल गान्धार ($\frac{६}{५}$)।

जब भारतीय परम्परामें इन स्वरोंका अस्तित्व पाया जाता है तो भरत-ग्राममें इनका होना असम्भव नहीं है। फिर भरत-ग्राम में यदि लघुस्वरका अस्तित्व न होता तो वे भी ग्रामको २४ श्रुतियोंमें बाँटते, जैसा कि प्राचीन यूनानी पद्धतिमें किया गया है। इस पद्धतिमें ग्रामको २४ डायसिसमें बाँटा गया है, जैसे—

४ ४ २ ४ ४ ४ २

भरतका २२ श्रुतियोंका निरूपण ही इस बातको सिद्ध करता है कि उनके ग्राममें लघुस्वरका अस्तित्व है।

———

१५—मध्यकालीन-स्वरग्राम

१०४—भारतीय संगीतकलाके विकासमें जिस परिवर्त्तनका उपक्रम मतंग-शार्ङ्गदेवके कालमें दीख पड़ता है वह मध्यकाल (१६ वीं सदी) मे पूरी तरह चरितार्थ हो गया। इसके अतिरिक्त इस कालमे स्वर, ग्राम आदि निरूपणकी नई विधियोंका आविष्कार हुआ जिससे इस युगकी धारणाएँ और आधारभूत सिद्धान्त आज सामान्यतः सुबोध जान पड़ते हैं। भारतीय संगीतमे इस नये युगके प्रतिनिधि, दक्षिणमे रामामात्य और उत्तरमे अहोबल माने जाते हैं।

इस युगमें मध्यम-ग्रामका निश्चित रूपसे लोप हो गया और केवल षड्ज-ग्राम ही संगीतका आधार रहा। शार्ङ्गदेवकी परिभाषामें स्वरके साथ जो अंतरालकी धारणा थी वह अब बदलकर स्वरित द्वारा निर्धारित स्थान या तारताकी धारणा प्रबल हो गई। अर्थात् षड्जको आधार स्वर या स्वरित माना जाने लगा। षड्ज और पंचम सदाके लिए नियत स्वर निर्दिष्ट हुए जिनमें किसी प्रकारकी विकृति नहीं हो सकती। मध्यम-ग्रामके अवशेष तीव्र मध्यम या प्रतिमध्यमका भारतीय संगीतमे स्वतन्त्र स्वरके रूपमें ग्रहण हुआ। मूर्छनाओंका चाहे तो लोप हो गया या नये अर्थमे इसका प्रयोग होने लगा। रागोंके वर्गीकरणके लिए विकृत स्वरोंके उपयोगसे मेलों का निरूपण हुआ। पर सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन यह हुआ कि स्वर-ग्रामका भरत-शार्ङ्गदेव द्वारा निर्दिष्ट अवरोही-क्रमका लोप होकर आरोही-क्रमकी प्रतिष्ठा हुई।

[क] दाक्षिणात्य पद्धति

१०५—मध्यकालीन स्वर-ग्रामकी विवेचनामें पहले रामामात्यकी दाक्षिणात्य पद्धतिका संक्षिप्त विवरण आवश्यक है। रामामात्यने शार्ङ्गदेवके १२ विकृत स्वरोंमेसे सातको रखकर पाँचका परित्याग कर दिया।

शुद्ध और विकृत मिलाकर उनके १४ स्वर ये हैं—

स, शुद्ध र, शुद्ध ग (पंचश्रुति र), साधारण ग, अंतर ग, च्युत-मध्यम ग, शुद्ध म, च्युत पचम म, शुद्ध प, शुद्ध ध, शुद्ध न (पच श्रुति ध) कैशिकी न, काकली न और च्युत षड्ज न। अच्युत षड्ज (काकली निषाद), च्युत षड्ज ऋषभ, अच्युत मध्यम (अंतर गान्धार), मध्यम ग्राम प (च्युत मध्यम) और मध्यम ग्राम ध, इन पाँच स्वरोंका स्थान नहीं वदलता इसलिए रामामात्यने इन्हें विकृत नहीं माना है। इससे यह सिद्ध है कि उन्होंने स्वरका प्रयोग नियत तारताकी ध्वनिके अर्थमें किया है। आरोही-ग्राम और षड्जको स्वरित माननेका यह स्वाभाविक परिणाम है। मध्यकालमें स्वरितकी भावना प्रवल हो गई थी जो आधुनिक भारतीय सगीतकी मुख्य भित्ति समझी जा सकती हैं (अनु० ११७)।

रामामात्यके अनुयायी सोमनाथने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि पूर्व आचार्यों द्वारा कल्पित ५ विकृत स्वर सम ध्वनि होनेके कारण विकृत नहीं माने जा सकते। उन्होंने यह भी वताया है कि देशी रागोंमें पंचमका विकार प्रचलित नहीं है (परि० २ च)। पर सोमनाथने रामामात्यके ७ विकृत स्वरोंकी जगह १५ माने हैं।

शुद्ध ग और शुद्ध न विकल्पसे पञ्चश्रुति र और पंचश्रुति ध मेल-रचनाके लिए ही कहे गये हैं। मेल-रचनाके इन दो सामान्य नियमोंको मेलकर्त्ताके सभी प्रवर्त्तकोंने माना है—एक, स्वर-संस्थान ७ स्वरोंका संपूर्ण हो; दूसरा, एक स्वरके दो भेद मेलमें एक साथ नहीं आ सकते। जैसे, किसी मेलमें शु ग और सा. ग या अ ग एक साथ नहीं आ सकते। ऐसा होनेसे मेलमें छ ही स्वर रह जाते हैं। इसलिए ऐसी दशामें शु. ग को पंचश्रुति र कहा जायगा, यद्यपि दोनोंके स्थानमें कोई भेद नहीं है। इसी तरह जिस मेलमें शु. र हो उसमें वह शु. ग ही कहा जायगा, पचश्रुति र नहीं। वैकल्पिक स्वर-संज्ञाका यही तत्त्व है।

रामामात्यने १४ शुद्ध-विकृत स्वरोंमेसे सात-सात स्वरोंको लेकर २० मेलोंकी रचना की। ये जनकमेल कहे गये जिनमें-से प्रत्येकसे ओड़व-षाड़व

आदि भेद करके अनेक जन्य राग निकाले जा सकते हैं। यह मेल आधुनिक हिन्दुस्तानी पद्धतिके 'ठाठ' का पर्याय है (अनु० १२४)। यो तो 'मेल', 'मेलन' आदिका प्रयोग पहले भी हुआ है पर मेलके द्वारा रागोंके विधिवत् वर्गीकरणके प्रवर्त्तक रामामात्य ही समझे जा सकते हैं। सोमनाथने जनक-मेलोंकी संख्या बढाकर २३ की। पर अंतमें वेंकटमखीने ७२ मेलकर्त्ताओंके विधानके द्वारा जनक-मेलोंकी संख्या चरम सीमातक पहुँचा दी, जिससे बड़ी संख्या किसी भी गणनासे नहीं प्राप्त हो सकती। यह ७२ मेलकर्त्ताका विधान आज भी दाक्षिणात्य पद्धतिमें माना जाता है।

रामामात्यने प्रयोगमें 'च्युत मध्यम गान्धार' और 'च्युत षड्ज निषाद' को 'अंतर गान्धार' और 'काकली निषाद' का प्रतिनिधि मान लिया है (पारि० २ घ २) इससे व्यवहारमें शुद्ध-विकृत मिलाकर १२ स्वर रह गये। यह १२ स्वरका ग्राम केवल भारतीय—दाक्षिणात्य और उत्तरीय—संगीतका ही आधार नहीं है, वरन् प्राय. सार्वभौम है। प्राय· सभी देशोंमें अब सप्तक १२ स्वरोंमें बाँटे जाते हैं। पाश्चात्य देशोंमे भो इसी 'क्रोमेटिक स्केल' का प्रचार है। इसी कारणसे १२ स्वरों वाले समसाधृत ग्रामका भी इतना अधिक प्रचार हुआ। इससे यह न समझना चाहिये कि· प्रत्येक पद्धतिमें इन बारह स्वरोंका मान भी एक ही है। पर अर्धस्वरक ग्राम आधुनिक विश्व-संगीतका सर्वव्यापी अंग-सा जान पड़ता है। वेंकटमखीने भी १२ स्वरोंको मानकर ही ७२ मेलकर्त्ताओंकी सृष्टि की है (अनु० १०६)।

१०६—रामामात्यने बड़े ही मौलिक ढंगसे 'स्वयम्भू स्वरों'की कल्पना की है। स्वयम्भू स्वरकी व्याख्यामे बहुतेरी कल्पनाएँ दौड़ाई गई हैं। रामामात्य इसकी परिभाषा बड़े ही सरल शब्दोंमें देते हैं। वे कहते हैं—"**स्वयंभुवः स्वरा ह्येते न स्वबुद्ध्या प्रकल्पिताः**"। इसका सीधा अर्थ यह है कि स्वयंभू स्वरोंकी कल्पना बुद्धिके द्वारा नहीं की गई है, अतएव ये कृत्रिम नहीं हैं। इनका आधार प्राकृतिक है। आगे वे कहते हैं कि रत्नाकरने ८ या १२ श्रुति अंतरवाले स्वरोंको परस्पर संवादी माना है। अब वे स्वरोंको प्रमाणित

करनेके लिए दूसरे मार्ग (नियम) का निरूपण करते हैं। फिर वे अपने शुद्ध मेल नामक रुद्रवीणाके चार तारोंके नीचे ६ सारियोंपर स्वरोंकी स्थापना करके इन सभी स्वरोको स्वयम्भू प्रमाणित करते हैं। उनकी स्वयम्भू स्वरोंकी इस निष्पत्तिसे यह सिद्ध है कि रामामात्यने उन स्वरोंको स्वयम्भू माना है जो किसी दूसरे प्राकृतिक स्वरसे षड्ज-पंचम या षड्ज-मध्यम भावसे निकाले जा सकें। उन्होंने बताया है कि षड्ज और पंचम तथा षड्ज और मध्यमको तो रत्नाकर आदिने भी परस्पर संवादी माना है। इसलिए रामामात्यके सिद्धान्तसे प और म स्वयंभू हैं। अब प और शुद्ध ग (हिन्दुस्तानी र) और फिर शुद्ध ग और शुद्ध न (हि. ध) में भी स-प सम्बन्ध ही है इसलिए शुद्ध ग और शुद्ध न भी स्वयंभू हैं। इसी तरह यह शृंखला आगे बढती है। अर्थात् रामामात्यने चक्रिक प्रक्रियासे स्वरोंका निरूपण किया है और इस प्रकियासे निरूपित स्वरोंको ही उन्होंने स्वयंभू माना है।

सोमनाथने रामामात्यके स्वयम्भू स्वरकी स्वतंत्र व्याख्या करनेका प्रयास किया है। वे कहते हैं कि 'संवादी स्वरोंका समाज (संहति) रंजनकारी होता हैं।' 'स-प स-म मुख्य सवादी हैं जिनका अतर १२ या ८ श्रुतियोंका है। अब स-प-म को स्वयम्भू होनेके लिए नियत श्रुतियोंकी कल्पना विना किये ही सुन्दरी और तारके स्पर्शके विना इसकी निष्पत्ति बताता हूँ।' फिर वे इसकी विधि बतलाते हैं कि वीणाके चौथे मन्द्र म के तारके नीचे दूसरी सुन्दरी मन्द्र प की है जिसपर तारको सटाये विना भी अँगुली रखनेसे वैसा ही मन्द्र प का स्वर निकलता है जैसा कि तारको सुन्दरीसे सटानेपर। सोमनाथने इस मौलिक युक्तिसे सभी स्वयभू स्वरोंको प्रमाणित करनेकी चेष्टा की है। इस व्याख्याका इतना अश तो समीचीन है कि जिन स्वरोंमें १२ या ८ श्रुतियोंका अंतर है वे स्वयभू हैं। पर तारको सुन्दरीमें विना सटाये स्वयभू स्वर निकालनेकी युक्ति असंगत ही नहीं, पूरी तरह भ्रान्त हे। शायद सोमनाथकी इसी युक्तिसे प्रेरित होकर रामस्वामीने

स्वरमेलकलानिधिकी भूमिकामें स्वयंभू स्वरको आवर्त्तक उपस्वर सिद्ध करनेका प्रयास किया है। पर उनकी यह कल्पना निराधार प्रतीत होती है। उन्होंने रामामात्यके सरल और सुस्पष्ट अर्थकी उपेक्षा करके ध्वनि–विज्ञानके आवर्त्तककी धारणा खींच निकालनेकी चेष्टा की है। आवर्त्तकका ज्ञान संगीतके पण्डितके लिए आवश्यक नहीं है। पर रामामात्यके लिए यह प्रशंसाकी बात है कि उन्होंने सम्भवतः भारतीय संगीतके इतिहासमें पहले-पहल चक्रिक-प्रक्रियाका प्रयोग ग्रामकी रचनामें इस दक्षतासे किया है।

१०७—स्वयंभू स्वरोंकी कल्पनाके आधारपर रामामात्य द्वारा स्वरोंका निरूपण चित्रमें दिखाया जाता है जिससे इस विचारकी भी पुष्टि होती है कि उनका स्वयंभू स्वरोंका तात्पर्य पंचम (या मध्यम) चक्र द्वारा प्राप्त स्वरोंसे था। चित्रमें शुद्धमेल-रुद्रवीणाके चार तार स़. प़, स, म़, के नीचे ६ सारियोंपर रामामात्य द्वारा निर्दिष्ट स्वरोंकी संज्ञा दी गई है और साथ-साथ सरल गणनासे निकला हुआ मान भी दिया गया है। स्वरोंकी उत्तरोत्तर उत्पत्तिकी सीढ़ियाँ कोष्ठकमें अङ्क देकर और बाणोंके द्वारा सूचित की गई हैं।

तार →	१	२	३	४
सारी ↓	स़ १/२	प़ ३/४	(१) स १	म़ ४/३
१	[१२८/२४३ शु ऱ]	[६४/८१ शु ध़ (५)]	[२५६/२४३ शु. र]	[च्यु पं म़ १०२४/७२९]
२	[९/१६ शु. ग़.]	[२७/३२ शु नि़ (२)]	[९/८ शु ग]	[(१) शु प ३/२]
३	[१६/२७ सा ग़]	[८/९ कै नि़ (४)]	[३२/२७ सा ग.]	[शु ध (५) १२८/८१]
४	[८१/१२८ च्यु म ग़.]	[२४३/२५६ च्यु ष नि़ (३)]	[८१/६४ च्यु म ग]	[(२) शु. नि २७/१६]
५	[२/३ शु म़]	[१ शु. स]	[४/३ शु म]	[कै नि (४) १६/९]
६	[७२९/१०२४ च्यु प म़.]	[२१८७/२०४८ शु र]	[७२९/५१२ च्यु. प म]	[च्यु. ष नि (३) २४३/१२८]
	↓ १	↓ २	↓ ३	↓ ४

छः सारियोंपर स्वरोंकी स्थापनाके बाद रामामात्य स्वरोंको प्रमाणित करते हैं। वे कहते हैं (परि० २ घ ३) कि चौथे तारके नीचे दूसरी सारीपर मंद्र पंचम, [प़ (१)] स्वयंभू है [स़ (१) की अपेक्षा]

इसलिए दूसरी सारीपरके सभी स्वर स्वयंभू हैं। दूसरी सारीपर दूसरे तारके नीचे अनुमद्र शुद्ध निषाद, [शु·नि (२)] के प्रमाणसे चौथे तारके नीचे चौथी सारीपरका मद्र शुद्ध निषाद [शु·न (२)] स्वयंभू है; इसलिए चौथी सारीपरके सभी स्वर स्वयंभू हैं। चौथी सारीपर दूसरे तारके नीचे अनुमद्र च्युतषड्ज निषाद [च्यु·ष-न् (३)] के प्रमाणसे चौथे तारके नीचे छठीं सारीपरका मंद्र च्यु·ष-न (३) स्वयभू है; इसलिए छठीं सारीके सभी स्वर स्वयभू हैं। पाँचवीं सारीपर स और म स्वयंभू हैं; इसलिए इसपरके सभी स्वर स्वयभू हैं। चौथे तारके नीचे पाँचवीं सारीपर मंद्र कैशिक निषाद [कै·न् (४)] के प्रमाणसे दूसरे तारके नीचे तीसरी सारीपरके कै·न् (४) को मानयुक्त करनेपर इससे उत्पन्न सभी स्वर स्वयंभू हैं अर्थात् तीसरी सारीपरके सभी स्वर स्वयभू हैं। तीसरी सारीपर चौथे तारके नीचे मंद्र शुद्ध धैवत [शु-ध (५)] के प्रमाणसे दूसरे तारके नीचे पहली सारीपरके अनुमद्र शुद्ध धैवत [शु-ध (५)] मानयुक्त होनेपर सभी प्रामाणिक स्वर उत्पन्न होते हैं; अर्थात् पहली सारीपरके सभी स्वर स्वयभू हैं।

इस प्रकार रामामात्यने छ सारियोंपर स्थापित सभी स्वरोंको प्रमाणित किया है। इन प्रमाणित स्वरोंका मान अब बड़ी सरलतासे निकाला जा सकता है। जैसे, स् १ से दूसरी सारीके शु·प् का मान ३/२ हुआ इसलिए दूसरी सारीके अन्य स्वरोंका मान—

शु·प् ३/२ → शु-गाधार (शु·ग) = ३/२ × ३/४ = ९/८ → शु·न = ९/८ × ३/४ = २७/३२, शु·न २७/३२ → शु-न् (२) २७/१६, इससे चौथी सारीके स्वरोंका मान शु-न (२) २७/१६ → च्युत मध्यम गाधार (च्यु-म-ग्-) = २७/१६ × ३/४ = ८१/६४ → च्युत षड्ज निषाद (च्यु ष.न्) = ८१/६४ × ३/४ = २४३/२५६। इस प्रकार कड़ी·कड़ी आगे बढते जानेसे सभी स्वरोंका मान निकल आता है। रामामात्यने यथार्थ कहा है कि इन स्वरोंकी प्रामाणिकताको कोई 'अन्यथा नहीं कर सकता'। यही तात्पर्य रामामात्यके '**न स्वबुद्धया प्रकल्पिताः**' का है। इस विधिसे प्रत्येक स्वरका मान निकालकर चित्रमें स्वरोंके साथ दे दिया गया है।

चित्रके सभी स्वरोंके मानको मध्य सप्तकमें लाकर नीचे दिया जाता है—

स	शु. र	शु. ग	साधारण ग	च्युत मध्यम ग
१	$\frac{२५६}{२४३}$, $\frac{२१८७}{२०४८}$	$\frac{९}{८}$	$\frac{३२}{२७}$	$\frac{८१}{६४}$

शु. म	च्युत पंचम म	शु. प	शु. ध	शु. न
$\frac{४}{३}$	$\frac{१०२४}{७२९}$, $\frac{७२९}{५१२}$	$\frac{३}{२}$	$\frac{१२८}{८१}$	$\frac{२७}{१६}$

कैशिकी न	च्युतषड्ज न	सं
$\frac{१६}{९}$	$\frac{२४३}{१२८}$	२

इनमें शु. र और च्यु.पं.म के दो-दो मान है। शु. र का पहला मान $\frac{२५६}{२४३}$ एक लीमा (२३ से.) है और दूसरा $\frac{२१८७}{२०४८}$ एक ऍपोटोम (२८.६ सेवर्ट) है। यह एक अर्धस्वरका मान है। इसलिए $\frac{२१८७}{२०४८}=\frac{१६}{१५}$ लिया जा सकता है। इसी तरह च्यु. पं. म. का पहला मान $\frac{१०२४}{७२९}$=१४७.६ से. $=\frac{४५}{३२}$ है; और दूसरा मान $\frac{७२९}{५१२}$=१५३.४ से. $=\frac{६४}{४५}$ है। इसलिए इसके दोनों मान क्रमश $\frac{४५}{३२}$ और $\frac{६४}{४५}$ लिये जा सकते हैं। इस संशोधनके बाद ऊपरका स्वर-समुदाय इस प्रकार लिखा जायगा—

स	शु. र	शु. ग.	सा. ग	च्यु. म. ग	शु. म
१	$\frac{२५६}{२४३}$, $\frac{१६}{१५}$	$\frac{९}{८}$	$\frac{३२}{२७}$	$\frac{८१}{६४}$	$\frac{४}{३}$

च्यु.पं.म	शु.प	शु. ध	शु. न	कै. न	च्यु. ष. न
$\frac{४५}{३२}$, $\frac{६४}{४५}$	$\frac{३}{२}$	$\frac{१२८}{८१}$	$\frac{२७}{१६}$	$\frac{१६}{९}$	$\frac{२४३}{१२८}$

स।
२

शु. र और च्यु. पं. म के दोनो मानो में एक-एक कोमाका अंतर है। इसका कारण यह है कि शु. र ($\frac{१६}{१५}$) और च्यु. पं. म ($\frac{६४}{४५}$) आरोही पञ्चम-चक्रसे निकला है और शु. र ($\frac{२५६}{२४३}$) और च्यु. पं. म ($\frac{४५}{३२}$) अवरोही पंचम-चक्रसे। इन दो स्वरोंके दो-दो मानोंमें-से कोई भी एक आवश्यकतानुसार प्रयोगमें आ सकता है। किसी एकको यों ही ग्रामसे निकाल देनेका कोई कारण नहीं; क्योंकि गमामात्यके इस ग्राममें आरोही

और अवरोही दोनों ही प्रकारके चक्रसे निकले हुए स्वर सम्मिलित हैं—स से आरोही चक्रके ९/८, ८१/६४, ३/२, २७/१६ और २४३/१२८ ये पायथागोरसके ग्रामके स्वर तथा १६/१५ और ६४/४५ हैं और स से अवरोही चक्रके २५६/२४३, ३२/२७, ४/३, ४५/३२, १२८/८१ और १६/९ है। रामामात्यका शुद्ध ग्राम—

स	र	ग	म	प	ध	न	सं
१	२५६/२४३	९/८	४/३	३/२	१२८/८१	२७/१६	२

निकलता है। यहाँ र-ध सवादके उद्देश्यसे र १६/१५ के वदले र २५६/२४३ रखा गया है। इस शुद्ध मेलको 'मुखारी' या 'कनकागी' कहते हैं। आधुनिक दाक्षिणात्य पद्धतिमें भी सिद्धान्त रूपमें यही शुद्ध मेल माना जाता है। स्वयभू स्वरके सिद्धान्तपर इन १२ स्वरोंका निरूपण हुआ है। इस समुदायमें रामामात्य द्वारा स्वीकृत अतर गान्धार और काकली निषादका अस्तित्व नहीं पाया जाता। सम्भवत ये दो स्वर क्रमश प्रकृत ग (५/४) और इसका संवादी न (१५/८) हैं। ये पंचमचक्र (आरोहो और अवरोही) की प्रक्रियासे नहीं निकल सकते। ये तो गान्धार-संवाद या पचम आवर्त्तकके उपयोगसे ही पैदा होते हैं। इसलिए इनका रामामात्यके स्वर-समुदायमें नहीं पाया जाना आश्चर्यकी वात नहीं। इसीलिए उन्होंने च्यु॰ म॰ ग और च्यु॰ष॰ न को इनका प्रतिनिधि मान लिया है। पर इन दो स्वरोंका अभाव भी इस धारणाको पुष्ट करता है कि स्वयभू स्वरका अर्थ चक्रिक क्रियासे प्राप्त स्वर ही है। यदि स्वयभूका तात्पर्य रामस्वामीके कथनानुसार, उपस्वरोंसे होता तो रामामात्य ग ५/४ को कभी न छोड़ते, क्योंकि यह तारके उपस्वरमें स्वभावत स्पष्ट पाया जाता है। आधुनिक हिन्दुस्तानी स्वरोंसे दाक्षिणात्य स्वरोंकी तुलना नीचे दी जाती है—

दाक्षिणात्य—	स	र	ग	म	प	ध	न	स
हिन्दुस्तानी—	स	र्	र	म	प	ध्	ध	सं

इस ग्रामकी विशेषता यह है कि इसके दोनों अगोंमे पहले लगातार दो अर्धस्वर आते हैं फिर एक वड़ा अतराल ३२/२७ (ग्) का आता है। यह प्राचीन यूनानी अर्धस्वरक जातिका ग्राम है (अनु॰ ६७)।

१०८—यहाँ एक बातपर विचार करना आवश्यक है। रामामात्यने विकल्पसे अपने शुद्ध र २५६/२४३ और शु. ग ९/८ को त्रिश्रुतिक र और पंचश्रुतिक र कहा है। उन्होंने ऐसा इसलिए किया है कि उनके मतानुसार यह ग्राम भरत-शार्ङ्गदेवका शुद्ध ग्राम है। दाक्षिणात्य पण्डित आज भी इस बातको मानते हैं कि दक्षिणमें प्रचलित शुद्ध मेलमें ही भरत-शार्ङ्गदेवकी परम्परा पाई जाती है। पर भरतका जो षड्ज ग्राम पहले निर्धारित हुआ है उससे यह दाक्षिणात्य शुद्धमेल बहुत ही भिन्न है। जिन आधुनिक दाक्षिणात्य विद्वानोंने उपर्युक्त भरत-ग्रामको माना है और साथ-ही-साथ आधुनिक दाक्षिणात्य शुद्ध स्वरोंके ऊपर दिये हुए मानोंको भी स्वीकार किया है वे भी यह घोषित करते हैं कि दाक्षिणात्य शुद्धमेल प्राचीन भरत-ग्राम ही है। यह प्रत्यक्ष विरोध मान्य नहीं हो सकता। भरत-ग्राम दाक्षिणात्य शुद्धमेलसे निस्सन्देह भिन्न है। इस विरोधकी आशङ्कासे ही कुछ दाक्षिणात्य पण्डितोंने शु. र को द्विश्रुतिक र, शु॰ ग को चतु श्रुतिक र और साधारण ग को षट्श्रुतिक र माना है। ऐसा माननेसे दाक्षिणात्य-मेलका भरत-ग्रामसे विभिन्नता स्पष्ट हो जाती है। भरतके निर्देशानुसार म-प और ग-म अंतराल समान हैं, जो चतु श्रुतिक माने गये हैं। कनकागी में ग-म अतराल म-प अंतरालसे बहुत बड़ा है। ग-म ३२/२७ और म-प ९/८ है। इस प्रत्यक्ष विभेदके कारण कनकागीको भरतका शुद्ध ग्राम मानना उचित नहीं है।

दाक्षिणात्य ग्राम और शार्ङ्गदेव-ग्राममें समता स्पष्ट है। दाक्षिणात्य पद्धतिमें स्वरोंकी विकृति केवल तीव्रताकी ओर होती है। इसका उत्तरीय-पद्धतिसे यही भेद है, जिसमें विकृति तीव्रता और मृदुता, दोनों ओर होती है। दाक्षिणात्य पद्धतिमें स-र और र-ग अंतराल आध-आध स्वरके हैं। इसलिए न तो 'र' को उतारा जा सकता और न 'ग' को। क्योंकि अर्धस्वरसे छोटा अंतराल संगीतोपयोगी नहीं होता। इसीलिए ऋषभकी विकृति चतु श्रुतिक या पंचश्रुतिक ऋषभमें और गांधारकी साधारण गांधार आदिमें होती है।

पर तथ्य यह है कि दाक्षिणात्य पद्धतिमे र और ध की कोई विकृति नहीं होती। चतु श्रुतिक र और षट्श्रुतिक र शुद्ध ग और साधारण ग के ही दूसरे नाम हैं। ऐसे ही चतु श्रुतिक ध और षट्श्रुतिक ध शुद्ध न और कैशिकी न से भिन्न नहीं हैं। यह संज्ञा-विकल्प भिन्न-भिन्न मेलोंकी रचनाके लिए काममे लाया जाता है (अ० १०५)। र से स और ग तथा ध से प और न एक-एक अर्ध-स्वरके अंतराल पर हैं। इस तरह र और ध, दोनों क्रमश स और ग तथा प और न के बीच ऐसे फँसे हैं कि इधर-उधर विचलित नही हो सकते। अर्थात् दाक्षिणात्य पद्धतिमें र और ध में कोई विकार नही होता और ग और न की विकृति तीव्रताकी ओर होती है। शार्ङ्गदेवके शुद्ध ग्राममें भी र और ध अचल रहते हैं और ग और न तीव्रताकी ओर विकृत होते हैं (अनु० ९३)। इस समतासे यह सिद्ध होता है कि शार्ङ्गदेवका शुद्धग्राम दाक्षिणात्य शुद्ध ग्राम कनकागीसे भिन्न नहीं था। अर्थात् दाक्षिणात्य शुद्धग्राममे भरतकी नहीं वरन् शार्ङ्गदेवकी परम्परा पाई जाती है। शार्ङ्गदेवके पितामह भास्कर पण्डितका आदि निवास काश्मीर था। पर बादको ये देवगिरिके यादव राजाके दरबारमें चले गये थे। शार्ङ्गदेवने वहीं १३ वीं शताब्दिके अंतमें रत्नाकरकी रचना की है। इसलिए इनका कर्नाटकी पद्धतिका विधायक होना स्वाभाविक है।

१०९—सत्तरहवीं शताब्दिमें वेंकटमखीने अपने ग्रन्थ चतुर्दण्डी-प्रकाशिकामें ७२ मेलोंका निरूपण किया है। उन्होंने पाँच विकृत स्वर माने हैं; जैसे, साधारण गान्धार (ग′), अन्तर गान्धार (ग″), वराड़ी मध्यम (म′), कैशिकी निषाद (न′) और काकली निषाद (न″)। इस प्रकार इनके ग्राममें १२ स्वरोंके स्थान हैं। जैसे —

स र ग ग′ ग″ म म′ प ध न न′ न″ स।

हिन्दुस्तानी स्वर-सकेतके अनुसार इन्हें इस प्रकार लिखेंगे —

स र् र ग् ग म म′ प ध् ध न् न सं।

इनमे ग और ग′ तथा न और न′ के दो-दो नाम हैं; जैसे, ग के शुद्ध गान्धार और पंचश्रुतिक ऋषभ, ग′ के साधारण गान्धार और षट्-श्रुतिक ऋषभ, न के शुद्ध निषाद और पचश्रुतिक धैवत और न′ के कैशिकी निषाद और षट्श्रुतिक ऋषभ। मेलमे तीन प्रकारके ऋषभों, गान्धारों, धैवतों और निषादोंका भेद दिखानेके लिए वेंकटमखीने इनके क्रमश र, रि, रु; ग गि गु, ध धि धु और न नि नु सकेत माने हैं। जैसे—

(१) शुद्ध ऋषभ — र

(२) शुद्ध गान्धार } ग
पंचश्रुतिक ऋषभ } रि

(३) साधारण गान्धार } गि
षट्श्रुतिक ऋषभ } रु

(४) अन्तर गान्धार — गु

(परि० २ छ १)

इन १२ स्वरोंमे-से भिन्न-भिन्न 'मेलों' की रचनाके लिए कोई ७ स्वर लिये जाते हैं जिनमे स, प और दो मे से एक म का होना आवश्यक है। शेष चार स्वरोंमे पूर्वांग और उत्तरांगके अवशिष्ट चार-चार स्वरोंमे-से कोई दो-दो सम्मिलित किये जाते हैं। इस नियमके अनुसार यह गणितसे सिद्ध किया जा सकता है कि ७२ मेलसे अधिक नहीं बनाये जा सकते। यहाँ दृष्टान्त रूपमे पूर्वांग (स—म) के ६ सम्भव समुदाय दिये जाते हैं जिनमें ऊपर वेंकटमखीकी स्वर-संज्ञा और नीचे हिन्दुस्तानी स्वर संज्ञाक व्यवहार किया जाता है। (परि० २ छ २) जैसे—

(१) स र ग म
स र् र म

(२) स र ग′ म
स र् ग् म

(३) स र ग″ म
स र् ग म

(४) स ग ग′ म
स र गू म

(५)	स	ग	ग″	म
	स	र	ग	म
(६)	स	ग′	ग″	म
	स	ग्	ग	म

इसी प्रकार उत्तरांग (प-स) के भी ६ समुदाय बन सकते हैं। अब पूर्वांगके ६ समुदायोंमेंसे किसी एकको उत्तरागके किसी समुदायसे जोड़ दिया जाय तो ७ स्वरोंका पूरा मेल तैयार हो जाता है। इस प्रकार पूर्वाङ्गके एक-एक समुदायसे छ-छ मेल तैयार होते हैं और इस तरह शुद्ध म वाले मेलोंकी कुल संख्या ३६ होती है। फिर इसी क्रियासे तीव्र म वाले मेलोंकी संख्या ३६ होगी अतएव मेलोंकी चरम संख्या ७२ होगी। वेंकटमखीने इन ७२ मेलकर्त्ताओंकी भिन्न-भिन्न सज्ञाएँ दी हैं जिनमे अब कुछ परिवर्त्तन हुआ है। (परि० १ क).

इन ७२ मेलोंकी रचना वेंकटमखीने केवल गणितके कौतूहलकी तृप्तिके लिए नहीं की थी। इन मेलोंके आधारपर अनेक नये रागोंकी रचनाएँ भी हुईं जो आज भी प्रचारमे पाये जाते हैं, यद्यपि सभी मेल काममे नहीं आते (परि० २६३)।

यह माना जाता है कि यह ७२ मेलकर्त्ताओंकी व्यवस्था वेंकटमखीकी ही उद्भावना है। पर १९३४ ई० में मद्रास म्युजिक ऐकेडेमीके सम्मेलनमे इदौरके नासिरुद्दीन खाँने बताया था कि यह पद्धति वेंकटमखीसे प्राय ३०० वर्ष पहले भी प्रचलित थी। प्रमाणमें उन्होंने बैजूनायकके चार ध्रुपद बताये जिनमें ७२ मेलकर्त्ताओंके नाम आये हैं।[1]

१—ऐसा जान पड़ता है कि वेंकटमखीने उत्तरीय संगीतकी भी शिक्षा ग्रहण की थी। वे अपने गुरुका नाम 'तानप्पा' बताते हैं (परि० १ छ ४)। सम्भव है कि ये 'तानप्पा' तानसेन ही हों। इसकी पुष्टि इस बातसे भी होती है कि वेंकटमखीने गोपाल नायककी दो स्थानोंमें चर्चा की है, जो तानसेनकी गुरु-परम्पराके आदि आचार्य थे(परि० २छ५)।

[ख] उत्तरीय पद्धति

११०—मध्यकालीन उत्तरीय पद्धतिके प्रतिनिधि अहोबल, हृदयनारायण, लोचन और श्रीनिवास समझे जाते हैं जो प्राय समकालीन हैं। इनके ग्रन्थ क्रमश. संगीतपारिजात, हृदयकौतुक, रागतरंगिणी और रागतत्त्व-विबोध हैं। इनमे अहोबल प्रमुख माने जाते हैं क्योंकि अन्य ग्रन्थकार इन्हीके अनुयायी हैं।

इस युगकी उत्तरीय पद्धतिमे भी वे सारे परिवर्त्तन पाये जाते हैं जिनका प्रसंग पीछे दाक्षिणात्य पद्धतिमें आ चुका है। बल्कि रत्नाकरकी पद्धतिमे जिन परिवर्त्तनोंको दाक्षिणात्य पण्डितोने संकोचके साथ ग्रहण किया है, अहोवल आदिने उनका निश्चयके साथ निरूपण किया है। जैसे, व्यवहारमे चम और षड्जको नियत स्वर मानकर भी रामामात्यने स्वर संज्ञामे च्युत षड्ज न और च्युत पंचम म का प्रयोग किया है। ऐसे ही सोमनाथने यह बताकर भी कि पंचमकी विकृति नहीं होती, 'मृदु प' का व्यवहार किया है। अहोबल आदिकी पद्धतिमे पंचमकी कोई भी विकृति नहीं पाई जाती।

१११—भरतके निर्देशके अनुसार ही अहोबलने भी ग्रामके स्वरोंमे षड्ज-पंचम संवादको महत्त्व दिया है। वे कहते हैं—**'षड्ज-पञ्चमभावेन षड्जे ज्ञेयाः स्वरा बुधैः।'** अर्थात् बुद्धिमान षड्ज ग्राममें षड्ज-पंचम भाव से स्वरोंको जानते हैं। इसे स्पष्ट करते हुए, श्रीनिवासने कहा है—

"सपयो रिधयोश्चैव तथैव गनिषादयोः।
संवादः संमतो लोके मसयोः स्वरयोर्मिथः॥"

यहाँ म-संमे षड्ज-पंचम भाव निर्धारित होनेसे यह सिद्ध है कि अहो-बल-श्रीनिवासका ग्राम आठ स्वरोंवाला अष्टक था, न कि सात-स्वरोवाला सप्तक। इसका निष्कर्ष यह है कि ये भी स्वरके साथ स्थानकी धारणा मानते थे, अंतरालकी नहीं। यह सामान्य अनुभवकी बात है कि ८ खभोंके

बीच ७ द्वार होते हैं। अब यदि इस सारे क्षेत्रको द्वारोंसे व्यक्त करें तो ७ मानना पड़ेगा और यदि खंभोंसे व्यक्त करें तो ८ मानना पड़ेगा। भरत-शार्ङ्गदेवके स्वरकी तुलना द्वारसे की जा सकती है और मध्यकालीन स्वरकी खंभेसे।

११२—अहोवल-श्रीनिवासने १२ मुख्य स्वर माने हैं—७ शुद्ध और ५ विकृत। इन्हीं स्वरोंकी श्रुतियोंको सार्थक मानकर इन्होंने शेष १० श्रुतियों का निराकरण किया है। श्रीनिवासने साफ तौरसे कहा है—

"श्रुतयो द्वादशैवात्र स्वरस्थानतयोदिताः।
तथोक्तवारिताः सर्वाऽस्वरस्थानतयादिशेव्॥"

अहोवलने गौण रूपसे अतिविकृत स्वरोंकी भी चर्चा की है—यहाँतक कि उन्होंने बाइस-की-बाइस श्रुतियोंका उपयोग किया है और विकल्प रूपमे स्वरके कोमल और तीव्र दोनों ही भेदोंका निरूपण किया है। यह अहोवलकी विशेषता है। इनके स्वर ये हैं —

स, पूर्व र, कोमल र, शुद्ध र (पूर्व ग), कोमल ग (तीव्र र), शुद्ध ग (तीव्रतर र), तीव्र ग, तीव्रतर ग, तीव्रतम ग, शुद्ध म (अति तीव्रतम ग), तीव्र म, तीव्रतर म, तीव्रतम म, शुद्ध प, पूर्व ध, कोमल ध, शुद्ध ध (पूर्व न), कोमल न (तीव्र ध), शुद्ध न (तीव्रतर ध), तीव्र न, तीव्रतर न, तीव्रतम न।

यहाँ यह देखनेमें आता है कि अहोवलने भरतके स्वरोंका श्रुतिमान ज्यों-का-त्यों रखा है।

विकृत स्वरोंकी बहुतेरी अहोवली संज्ञाका व्यवहार आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीतमें भी होता है। अतितीव्रतम और पूर्व, ये संज्ञाएँ प्रचारमें नहीं हैं। ऊँचाईकी दिशामें तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम तथा निचाईकी दिशामें कोमल, अतिकोमल और सहकार माने जाते हैं।

११३—अहोबलने भारतीय संगीतमें पहले-पहल तारकी लंबाईसे स्वरोंका मान निर्णय किया है। इसमे संदेह नहीं कि अहोबल और उनके अनुयायी पण्डितोंने इस विधिको महत्त्व नहीं दिया है। श्रीनिवासने कहा है कि 'यह विधि उनके लिए बताई गई है जिन्हें स्वरज्ञान नहीं है। स्वर-स्थापनाका असल साधन तो स्वर-संवादित्वका ज्ञान है।'[१] पर ऐतिहासिक दृष्टिसे अब इसका मूल्य बहुत अधिक है। क्योंकि इसीसे मध्यकालीन स्वर-ग्रामका पता निश्चित रूपसे मिलता है। प्राचीनकालमें पायथागोरसने इस साधनका उपयोग किया था।

यह विधि पूरी तरह वैज्ञानिक आधारपर अवलंबित है। यह बताया गया है कि तारकी लंबाई और उसकी आवृत्तिमें व्युत्क्रम (उलटा) अनुपातका सम्बन्ध है (अनु० १२); और दो नादोंका अंतराल उनकी आवृत्तियोंके अनुपातसे मापा जाता है। इसलिए स्वरोंका निर्धारण तारकी लंबाईसे सहज हो जाता है।

अहोबलके आदेशानुसार वीणाके पूरे तार (स) के आधेपर तार स (सं) और दोनों स के बीच म होना चाहिए। पूरे तारको त्रिभाग करके पहले भागपर प, स और प के बीच ग और स—प को त्रिभाग करके पहले भागपर र की स्थापना होनी चाहिए। फिर प और सं के मध्य देशमें ध और प—सं को त्रिभाग करके अंतिम भागपर न की स्थिति होनी चाहिए (परि० २ ज०)। ये अहोबलके शुद्धस्वर हैं। श्रीनिवासने भी बिलकुल यही व्यवस्था बताई है। स्वरोंकी यह व्यवस्था, तारकी पूरी लंबाई ३६ इंच मानकर, लबाईके अंश और मान तथा अंतरालके साथ चित्रमें दिखाई जाती है—

१—"स्वरज्ञानविहीनेभ्यो मार्गोऽयं दर्शितो मया।
स्वरसंवादिताज्ञानं स्वरस्थापनकारणम्॥"

स्वर		अंतराल		अंश		लंबाई
स		१ (०)	←|→	१		३६ इं॰
र	←	९/८ (५१ से॰)	←|→	८/९	→	३२
ग	←	५/४ (७६)	←|→	४/५	→	३०
म	←	४/३ (१२५)	←|→	३/४	→	२७
प	←	३/२ (१७६)	←|→	२/३	→	२४
ध	←	२७/१६ (२२७)	←|→	१६/२७	→	२१ १/३
न	←	१५/८ (२५५)	←|→	८/१५	→	२०
स	←	२ (३०१)	←|→	१/२	→	१८

यहाँ धैवतका स्थान शास्त्र वचनकी दृष्टिसे विवादग्रस्त है। अहोवलने तो ध की स्थिति स—प के 'मध्यदेश' या क्षेत्रमें बताई है पर श्रीनिवासने स्पष्ट कहा है कि '**पञ्चमोत्तरषड्जाख्यमध्ये धैवतमाचरेत्**'। अब यदि धैवतको सं—प के बीचोबीच मानें तो इसकी लबाई २१ इञ्च और अंतराल ३६/२१ या १२/७ निकलता है। इस धैवतका अतराल प से ८/७ या ५८ से. है। यह अतराल अज्ञात नहीं है और न असगत है। यह सप्तम आवर्त्तकसे बना है और 'बृहत्स्वर' के नामसे इसका प्रयोग अरबी और प्राचीन यूनानी संगीतमें हुआ है। हिन्दुस्तानी संगीत भी सप्तम आवर्त्तकसे अपरिचित नहीं है। पर यहाँ यह अहोवल आदिके माने हुए पूर्वांग और उत्तरांगके सवादी-सिद्धान्तके विरुद्ध पड़ता है।

इसीलिए आधुनिक पंडितोंने र—ध सवादके आधारपर ध का मान २७/१६ माना है।

यह अहोबल आदिका शुद्धग्राम आधुनिक हिन्दुस्तानी पद्धतिका काफ़ी ठाठ या दाक्षिणात्य पद्धतिका खरहरप्रियमेल है।

यहाँ यह एक ध्यान देनेकी बात है कि एक ओर रामामात्य आदि दाक्षिणात्य पण्डितोंने अपने शुद्ध र १६/१५ को त्रिश्रुतिक माना है और दूसरी ओर अहोबल आदिने भी अपने शुद्ध र ९/८ को त्रिश्रुतिक माना है। इसमें दोनो पद्धतियोंके पंडितोंका भरत-परम्पराको अक्षुण्ण रखनेका आग्रह दीख पड़ता है। पर विचारसे यह जान पड़ता है कि भरतका शुद्ध ग्राम अहोबलके शुद्ध ग्राममें ही रक्षित है। भरत-ग्राम अवरोही है इसलिए उसमें नियत और प्रकृत स्वरोंको छोड़, चल स्वरोंका एक-एक-श्रुति उतर जाना स्वाभाविक है। पर आरोही क्रमका प्रचार होते ही भरत-ग्रामका काफ़ी-ठाठमें बदल जाना अनिवार्य है। यह प्रत्यक्ष है कि भरतके स्वर-ग्रामको ही आरोही-क्रममें व्यक्त करनेसे अहोबलका शुद्ध-ग्राम निकल आता है। जैसे.—

९/८   १६/१५   १०/९   ९/८   ९/८   १६/१५   १०/९

भरत—सं ४ न २ ध ३ प ४ म ४ ग २ र ३ स

अहोबल—स ४ र २ ग ३ म ४ प ४ ध २ न ३ सं

१   ९/८   ६/५   ४/३   ३/२   २७/१६   ९/५   २

९/८   १६/१५   १०/९   ९/८   ९/८   १६/१५   १०/९

इस विचारसे यह परिणाम निकलता है कि व्यावहारिक रूपमें भरतका ग्राम उत्तरमें ही जीवित रहा है, दक्षिणमे नहीं। इतना ही नहीं, भरतने जो षड्ज-पञ्चम संवादको महत्त्व दिया था उसकी प्रतिष्ठा उत्तरीय पद्धतिमे जितनी दृढ़ दीख पड़ती है उतनी दाक्षिणात्य पद्धतिमे नहीं।

शुद्ध स्वरोंकी भाँति ही विकृत स्वरोंका स्थान-निरूपण भी वीणाके तारके द्वारा ही किया गया है। नीचे श्रीनिवासके निर्देशानुसार (परि० २ भ) विकृत स्वरोंका मान दिया जाता है:—

सारिणी १५

स्वर	तारकी लम्बाई (इं०)	अंतराल
र्	३३ $\frac{१}{३}$	$\frac{२७}{२५}$ → ३४ से.
ग′	(क) (ध २१ $\frac{१}{३}$) → २८ $\frac{२}{३}$	$\frac{५४}{४३}$ → ९९ ,,
	(ख) (ध २१) → २८ $\frac{१}{२}$	$\frac{२४}{१९}$ → १०१ ,,
म′	(क) (ग′ २८ $\frac{२}{३}$) → २५ $\frac{१}{९}$	$\frac{१६२}{११३}$ → १५६ ,,
	(ख) (ग′ २८ $\frac{१}{२}$) → २५	$\frac{३६}{२५}$ → १५८ ,,
ध्	२२	$\frac{१८}{११}$ → १९४ ,,
न′	(क) (ध २१ $\frac{१}{३}$) → १९ $\frac{१}{९}$	$\frac{८१}{४३}$ → २७५ ,,
	(ख) (ध २१) → १९	$\frac{३६}{१९}$ → २७६ ,,

यहाँ ग′, म′ और न′ के (क) और (ख), ये दो-दो भेद दिये गये हैं। इनमें (क) ऋषभ-सवादी अनुमित धैवतके और (ख) श्रीनिवासोक्त धैवतके आधारपर निकाला गया है। दोनों ग′ क्रमश दोनों न′ के सवादी हैं। म′ (ख) का र् के साथ मध्यम-सवाद है। पर र् और ध् में सवाद नहीं दीख पड़ता। विकृत स्वरोंके निर्णयमे श्रीनिवासने सम्भवत स्वरोंके परम्परागत श्रुतिमानका ध्यान रखा है। स-र क्षेत्रको त्रिभाग करनेके आदेशसे ही यह जान पड़ता है। पर मुख्य बात यह है कि इस प्रबन्धका उद्देश्य 'स्वरज्ञान-विहीन' व्यक्तियोंको मार्ग दिखाना है। इसलिए स्वरोंके मानमें त्रुटि होनेपर भी तारके सरल अशोंपर ध्यान रखा गया है। इससे स्वभावत श्रीनिवासके वचनसे

निर्दिष्ट स्वर अपेक्षाकृत अधिक इष्ट हो गये हैं। पर श्रीनिवासने पूर्वांग-उत्तरांग-संवादकी अवज्ञा नहीं की। इन स्वरोंके निर्देशके बाद वे कहते हैं कि 'उक्त स्थानपर स्थित शुद्ध-कोमल स्वरोंमें यदि परस्पर संवाद न हो तो चतुरोंको चाहिए कि स्वरोंको एक यव या आधा यव उतार दें।'[1] यहाँ यह भी ध्यान देनेकी बात है कि श्रीनिवासने संवादित्वके लिए स्वरोंको उतारनेकी बात कही है, चढ़ानेकी नहीं। इससे सिद्ध है कि वे अपने धैवतको चढा हुआ समझते थे अत उसके आधार पर निर्दिष्ट स्वरोंको भी चढ़ा हुआ मानते थे। इसलिए ऊपरके स्वरोंके (क) भेदको ही ग्रहण करना उचित है। ऐसा करनेसे श्रीनिवासका गान्धार लगभग प्रकृत ग ($\frac{5}{4}$) हो जाता है। ध् को भी र् के संवादसे निकालने पर इसकी लंबाई २२ इं॰ के बदले २२$\frac{2}{3}$ इं॰ हो जाती है।

११४—उत्तरमें रागोंका-वर्गीकरण उतना नियमित नहीं दीख पड़ता जितना दक्षिणमें। जनकमेलकी धारणा उत्तरके मध्यकालीन पण्डितोंकी पद्धतिमें नहीं पाई जाती। अहोबलने मेलोंका वर्णन स्वरोंके संस्थान-विशेषके ही अर्थमें किया है पर इसका उपयोग वर्गीकरणमें नहीं किया। उन्होंने ओड़व-षाडव-सम्पूर्ण भेदसे मेलोंकी ११३४० संख्या बताई है जिससे स्पष्ट है कि उनके मेल और रागमें कोई अंतर नहीं था। श्रीनिवास भी इसी मार्गपर चले हैं। लोचन और हृदयनारायणने १२ राग-संस्थितियोंकी चर्चा की है, जो जनकमेलकी द्योतक है। उन्होंने रागनियोंका भी प्रसंग दिया है। फिर भी उत्तरके पण्डितोंने इस दिशामें कोई नियमित, सर्वमान्य पद्धतिका निरूपण नहीं किया है।

११५—सम्भवत इसी युगमें अहोबल आदिकी शास्त्रीय पद्धतिके साथ-साथ उत्तराखण्डमें एक दूसरी धारा भी चल रही थी। यह बताया गया है कि अहोबल आदिका शुद्ध मेल आधुनिक काफी ठाठ था। पर

1—"संवादिनौ न चेदुक्तस्थानगौ शुद्धकोमलौ।
ता यवार्धयवाभ्यां वा कार्यौ न्यूनौ विचक्षणैः॥"

उसी समय प्रचारमें बिलावल ठाठ, शुद्ध मेलके रूपमे, आ गया था। शायद इसके प्रवर्त्तक अमीर खुसरू हैं जिनके द्वारा उत्तरीय संगीतपर फारसी संगीतका प्रभाव पड़ा। जो हो, इसमें सदेह नहीं कि शुद्धमेलमें यह परिवर्त्तन पाश्चात्य मुसलमानी संस्कृतिके संपर्कसे ही हुआ। यूनानी पायथागोरसका ग्राम और अरबी-फारसी ग्राम सदासे आधुनिक बिलावल ठाठ जैसा ही रहा है। आधुनिक पाश्चात्य गुरु-ग्राम भी पायथागोरसकी परपरासे ही पैदा हुआ है। पर ऐसा जान पड़ता है कि फारसी संगीतका प्रभाव केवल शुद्ध मेलके संस्थानपर ही पड़ा। और बातोंमें उत्तरीय संगीत-पद्धति पूरी तरह भारतीय बनी रही। बल्कि यों कहना चाहिए कि मध्यकालीन मुसल्मान गायकों और नायकोंने भारतीय सस्कारको बनाये रखा। यह इस बातसे प्रकट होता है कि मुसल्मान शास्त्रकारोंने भी इस शुद्ध-ग्रामको फारसी संगीतसे नहीं जोड़कर भरत-पद्धतिके आधारपर ही इसका निरूपण किया है। भरतका ग्राम अवरोही होनेसे प्रत्येक स्वरकी श्रुतियाँ नीचेकी ओर चलती हैं। अब यदि स्वरोंका श्रुतिमान भरतके आदेशनुसार ही मानकर-केवल प्रत्येक स्वरकी श्रुतियोंको ऊपरकी ओर जाता हुआ मानें तो बिलावल ठाठकी रचना होती है। षड्जकी तीव्र, कुमुद्वती, मन्दा और छन्दोवती, ये चार श्रुतियाँ मानी जाती हैं जो उत्तरोत्तर ऊँची होती जाती हैं। भरत-शार्ङ्गदेवके षड्जका स्थान छन्दोवतीपर है। पर यदि षड्जको तीव्रापर मान लें और इसी तरह और स्वरोंके स्थानको निम्नतम श्रुतिपर मानें तो भरतका ग्राम आप-से-आप बिलावल ठाठमें बदल जाता है। जैसे —

९/८ १०/९ १६/१५ ९/८ ९/८ १०/९ १६/१५

भरत—ऩ ←स← र ← ग ← म ←—प←—ध ← न

| | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |

बिलावल—स → र—→ ग—→ म —→प—→ ध → न → स

↓ ९/८ ↓ १०/९ ↓ १६/१५ ↓ ९/८ ↓ ९/८ ↓ १०/९ ↓ १६/१५ ↓

१ ९/८ ५/४ ४/३ ३/२ २७/१६ १५/८ २

यह भी कहा जा सकता है कि यह बिलावला शुद्ध ग्राम भरतके षड्ज ग्रामकी नैषादी या रजनी मूर्छना है।

इस प्रकार यह देखा जाता है कि यह शुद्धग्रामविशेष जो फारसी संगीतके सम्पर्कसे ही हिन्दुस्तानी सगीतमे आया था, भारतीय परम्परा बनाये रखनेके लिए भरतकी पद्धतिसे जोड़ दिया गया है। यह ग्राम हरिदास-तानसेनके समयमें भी प्रचलित था। पीछे उत्तरीय सङ्गीतकी बहुत-सी गड़बड़ियोंको दूर करनेके लिए जयपुरके महाराज प्रतापसिंह देवने (१७७६—१८०१ ई.) संगीत-पण्डितोका एक सम्मेलन किया जिसके विचार-विनिमयके फल स्वरूप सङ्गीत-सार ग्रन्थकी रचना हुई। इस ग्रन्थमें बिलावली ग्रामको ही शुद्ध ग्राम माना गया है। फिर १८१३ ई॰ मे पटना निवासी महम्मद रज़ाने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'नग़माते आसफी' की रचना की, जिसका शुद्ध ग्राम बिलावल ही है।

आधुनिक हिन्दुस्तानी पद्धतिमें भी बिलावल ठाठको ही शुद्ध ग्राम माना जाता है। पर मुख्य बात यह है कि शुद्धग्रामके प्रबन्धमें यह परिवर्त्तन अहोबल आदिके समयमें ही सम्पन्न हो गया था।

११६—जैसे मध्यकालके प्रचलित संगीतमें अहोबली ग्रामसे भिन्न बिलावली शुद्धग्राम चल रहा था वैसे ही रागोंके वर्गीकरणकी भी मेलकर्त्तासे भिन्न राग-रागनोकी प्रणाली चल रही थी। इस प्रणालोका सामान्य प्रबन्ध था सभी रागोको ६ पुरुष रागों, ३० या ३६ रागनियों और उनके पुत्रों तथा पुत्रभार्याओंमें बाँटना। इस प्रणालीके भी कई मत थे; जैसे—शिव-मत, कृष्णमत, भरतमत, हनुमानमत, कल्लिनाथमत, सोमेश्वरमत, इन्द्रप्रस्थमत इत्यादि। पर इनमेंसे भरत और हनुमानमतका ही प्रचार अधिक रहा है। आधुनिक कालमें हनुमानमत ही माना जाता है।

संगीत-दर्पणकार दामोदर. ने (१६२५ ई०) वर्गीकरणकी इस प्रणालीका प्रसंग दिया है। उन्होंने तीन मतोंकी चर्चा की है। जैसे—

(क) शिवमत—६ राग और ३६ रागनियाँ।

(१) श्रीराग—मालश्री, त्रिवेणी, गौरी, केदारी, मधुमाधवी, पहाड़िका।

(२) वसत—देशी, देवगिरी, वराटी, टोड़िका, ललिता, हिन्दोली।

(३) भैरव—भैरवी, गुर्जरी, रामकिरी, गुणकिरी, बंगाली, सैंधवी।

(४) पञ्चम—विभाषा, भूपाली, कर्णाटी, नड़हंसिका, मालवी, पटमंजरी।

(५) मेघ—मल्लारी, सोरठी, सावेरी, कौशिकी, गाधारी, हरशृङ्गारा।

(६) बृहन्नाट—कामोदी, कल्याणी, अमीरी, नाटिका, सारगी, नट्टहम्वीरा। (या नटनारायण)

(ख) रागार्णव— ६ राग और ३० रागनियाँ।

(१) भैरव—बगाली, गुणकिरी, मध्यमादि, वसत, धनाश्री।

(२) पचम—ललिता, गुर्जरी, देशी, वराड़ी, रामक्री।

(३) नाट—नट्टनारायण, गान्धार, सालग, केदार, कर्णाट।

(४) मल्लार—मेघमल्लारिका, मालकौशिक, पटमंजरी, आशावरी।

(५) गौड़मालव—हिन्दोल, त्रिवण, गान्धारी, गौरी, पटहसिका।

(६) देश (देशाख्य)–भूपाली, कुड़ाली, कामोदी, नाटिका, बेलावली।

(ग) हनुमान-मत–६ राग, और ३० रागनियाँ।

(१) भैरव—मध्यमादि, भैरवी, बगाली, वराटिका, सैंधवी।

(२) कौशिक—तोड़ी, खम्त्रावती, गौरी, गुणक्री, ककुभा।

(३) हिन्दोल—वेलावली, रामकिरी, देशाख्या, पटमजरी, ललिता।

(४) दीपक—केदारी, कानड़ा, देशी, कामोदी, नाटिका।

(५) श्री—वासंती, मालवी, मालश्री, धनासिक, आशावरी।

(६) मेघ—मल्लारी, देशकारी, भूपाली, गुजरी, टङ्का।

'राग-निरूपण' में, जिसके प्रणेता नारद कहे जाते हैं, दसपु राग, और हरेककी पाँच-पाँच स्त्रियाँ, चार-चार कुमार और चार-चार स्नुषाएँ बताई गई हैं। इस प्रकार १४० रागोंके नाम आये हैं। इन दस रागोंमें ६ तो हनुमानमतके और शेष चार वसंत, पचम, नटनारायण और हंसक

हैं। इन चारोंमें-से तीन ऊपर आ चुके हैं। पर इन सभीकी स्त्रियाँ उपर्युक्त रागनी-विभागसे भिन्न हैं।

ये वर्गीकरण प्रतिनिधि रूपमें दिये गये है। इस थोड़े उदाहरणोंसे ही यह सिद्ध हो जाता है कि उत्तरीय पद्धतिमें वर्गीकरण विषयक कितने मत-मतान्तर प्रचलित थे। फिर किसी भी वर्गीकरणका कोई नियमित आधार नहीं जान पड़ता है।

जो हो, पर हनुमानमतकी परम्परा प्राचीनकाल से आजतक चली आयी है। प्राचीन पद्धतिके हिन्दू-मुसल्मान गायक आज भी इसी वर्गीकरणको याद रखते हैं। उनके लिए परिवार सहित ये छः राग स्थूल ऐतिहासिक सत्य हैं जिनमें नियम या रीति-नीति ढूढ निकालनेकी उन्हें आकांक्षा नहीं होती। भैरवरागकी मध्यमादि, भैरवी आदि रागनियाॅ क्यों है, यह प्रश्न उनके लिए उतना ही असंगत है जितना यह प्रश्न कि दुष्यन्तकी रानी दमयन्ती क्यो हुई। इन रागोंके साथ युग-युगका प्रभाव है, महिमा है, चामत्कारिक इतिहास है—वैसे ही जैसे पौराणिक महापुरुषोंके साथ है। इसीलिए एक विदग्ध कलाकारके द्वारा इन रागोंके प्रस्तारमे इतनी श्रद्धा-भक्तिका गाम्भीर्य प्रकट होता है। दो शब्दोंमें कह सकते हैं इस वर्गीकरणका आधार पौराणिक है, वैज्ञानिक नहीं।

इन रागोंमे एक बात देखनेमे आती है। इनकी स्वर-रचनापर विचार करनेसे पता चलता है कि इनमे कौशिक (मालकौंस), हिन्दोल और मेघ तो निश्चय ही ओड़व जातिके हैं। श्री ओड़व सम्पूर्ण है; और भैरवको भी पहले ओड़व ही माना जाता था। जो हो, श्री और भैरवमे कोमल ऋषभ और तीव्र गाधारके प्रयोगसे र्—ग अंतराल, वैसे ही ध्—न अंतराल, बहुत बड़ा हो जाता है। दीपक लुप्त समझा जाता है। पर दीपककी जो एक-दो चीज़ें बताई जाती हैं उनमे भी र्—ग और ध्—न अंतरालका प्रयोग होता है। ऊपरके ओड़व रागोंमें भी वर्जित स्वरके कारण बड़े

अंतराल पैदा हो जाते हैं। यह सामान्य अनुभवकी बात है कि इस प्रकारका बड़ा अंतराल शान्त रसको प्रस्फुटित करता है। इस बातमें इन छ रागोंकी गति एक-सी है। इन रागोंकी ओड़व-प्रवृत्तिसे यह भी धारणा होती है कि सम्भवत उत्पत्तिकी दृष्टिसे रागोंका काल पहले हो।

---

१६ आधुनिक-स्वरग्राम

[क] स्वरित

११७—आधुनिक भारतीय संगीतका, विशेष रूपसे उत्तरीय संगीतका आधार 'स्वरित' है। इसे उत्तरके गवैये 'सुर' या 'खरज' (षड्ज) कहते हैं; दक्षिणके गवैये 'श्रुति' कहते हैं। पाश्चात्य विद्वानोंकी यह धारणा है कि एक-कण्ठ सङ्गीतमें स्वरितकी चेतना बड़ी दुर्बल होती है। हेल्महोज़के ऐसे ही विचार थे। यह बात चाहे प्राचीन ग्राम्य सङ्गीतोंके लिए ठीक हो पर कलापूर्ण, सांस्कृतिक भारतीय सङ्गीतके लिए बिलकुल ग़लत है। बल्कि बात उलटी है। हिन्दुस्तानी सङ्गीतमें स्वरितका अधिकार जितना प्रबल, स्पष्ट और अनिवार्य है उतना पाश्चात्य सङ्गीतमें नहीं। पाश्चात्य संहति-संगीतमें स्वर-संघातोंका प्रयोग होता है जिनकी रचना और गुण उन संघातोंके 'टोनिक' या स्वरितपर निर्भर है। शायद इसीलिए पाश्चात्य विद्वानोंको ऐसी धारणा हुई हो कि जहाँ संहति-संगीतका प्रचार नहीं वहाँ टोनिकको प्रधानता नहीं दी जाती। पर संहतिमें तो स्वर-संघातोंके प्रयोगसे तीन भिन्न-भिन्न स्वरोंका एक साथ ही उच्चारण होता है। इसलिए स्वरोंके समूहमें-से स्वरितको चुन लेना इतना आसान नहीं होता। इसमें स्वरोंका सम्बन्ध प्रत्यक्ष होनेपर भी स्पष्ट नहीं होता। इसके विपरीत, जहाँ स्वरोंका उच्चारण एकके-बाद-एक होता है वहाँ स्वरोंके सम्बन्धकी अनुभूति स्मृतिके द्वारा होनेसे परोक्ष होती है पर यह अनुभूति बड़ी ही स्पष्ट है। और यह स्पष्टता स्वरितके दृढ़ संस्कारपर ही निर्भर है। फिर संहतिकी पद्धतिमें स्वरितान्तरकी युक्तिका प्रयोग होनेसे आधार-स्वरितकी प्रधानता नहीं रहने पाती। इसीलिए मुख्य स्वरितको चैतन्य रखनेके लिए आधार स्वर-संघातका बार-बार उपयोग होता है। भारतीय

संगीतमें यह उपद्रव नहीं होता। इसमें तो स्वरितका उच्चारण लगातार होता रहता है जिससे न तो स्वरित भ्रष्ट होने पाता और न दूसरे स्वर अपने उपयुक्त स्थानसे विचलित होने पाते। स्वरितके सतत चैतन्य रहनेसे अन्य स्वरोंका स्वरितसे सम्बन्ध भी बहुत ही स्पष्ट बना रहता है।

स्वरितकी ऐसी दृढ धारणा आधुनिक संगीतकी विशेषता है, पर इसका विकास भरत-कालसे ही होता चला आया है। पिछले अध्यायोंमें यह बताया जा चुका है कि जैसे-जैसे स्वरितकी धारणा प्रबल होती गई है वैसे-ही-वैसे स्वरका अर्थ और ग्रामका संस्थान भी बदलता चला गया है। ग्रामके प्रथम स्वरकी 'षड्ज' संज्ञासे ही संगीतके आदिकालमें भी स्वरितके अस्तित्वका पता चलता है। इसीलिए आज भी 'खरज' स्वरितके अर्थमें ही प्रयुक्त होता है। प्राचीनकालसे ही संगीत-शिक्षाकी यह प्रथा है कि शिक्षार्थी महीनोंतक 'षड्जसाधन' करता है। इसकी विधि यह है कि शिक्षार्थी अपनी आवाज़को एक स्थानपर बाँध लगातार स्वरका उच्चारण करता है जिससे धीरे-धीरे वह स्वर उसके गलेमें बैठ जाता है। वही उसके कंठका स्वरित या 'षड्ज' होता है।

११८—आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीतमे स्वरितकी इतनी प्रधानता है कि कोई भी सस्कारी संगीत इसके बिना नहीं होता। गान हो या वाद्य, स्वरितकी लगातार संगति आवश्यक है (अनु० ८८)। शहनाई या बाँसुरीके गिरोहमें भी एक सुर भरनेवाला अवश्य रहता है। यहाँतक कि तबला या पखावज भी सुरमे मिला रहता है जो स्वरितका काम देता है। पर उत्तरमें स्वरितकी संगतिके लिए सबसे मुख्य बाजा तमूरा है। उत्तरके गवैयोंके लिए इसका व्यवहार अनिवार्य है। कुछ लोगोंका मत है कि यह पौराणिक गायक तुम्बरू गंधर्वका आविष्कार है। पर प्राचीन ग्रन्थोंमें इसकी चर्चा नहीं पाई जाती। यह भी हो सकता है कि यह ख़ुरासानी तम्बूरका ही (मुसलमानी कालमे आया हुआ) रूपान्तर हो। पर ख़ुरासानी तम्बूरमें वीणाकी तरह ग्रामके स्वर बँधे होते हैं और इसलिए

इसका उपयोग रागके लिए होता है, स्वरितकी संगतिके लिए नहीं। इससे तो यही मानना पड़ता है कि यह हिन्दुस्तानी संगीतका मध्ययुगीय आविष्कार है। यह सम्भव है कि इसका नाम खुरासानी तम्बूरके ही तौलपर रखा गया हो। इस बाजेमें जवारीका प्रयोग, जो प्राचीन वाद्योंके 'जीवा'का ही रूपान्तर है, इसकी भारतीय परम्पराको प्रमाणित करता है। इस यंत्रका प्रधान अंग लौकीका तूमा होता है। सम्भव है इसीसे इस बाजेका नाम तमूरा पड़ा हो। ऐतिहासिक दृष्टिसे तमूरा एकतारेका विकसितरूप है जिसका आज भी निर्गुण गानेवाले गोसाँई स्वरित और लयके लिए व्यवहार करते हैं।

तमूरेमें चार तार होते हैं जिनमे पहला मंद्र पञ्चम (प़) में, चौथा मंद्र षड्ज (स़) मे और बीचके दोनो तार मध्य षड्ज (स) मे मिले होते हैं। इसे 'पंचम-मेल' कहते हैं। कभी-कभी 'प़' वाले तारको 'म़' मे मिलाकर 'मध्यममेल' का उपयोग किया जाता है। पर ऐसा उपयोग उन्हीं रागोंके साथ होता है जिनमे पंचम वर्जित हो और शुद्ध-मध्यमका प्रयोग हो। व्यापक रूपसे ऐसी अवस्थामें भी पंचम-मेलका ही व्यवहार होता है क्योंकि 'प़-स' योग मध्यमका ही संस्कार पैदा करता है। पंचम वर्जित म' वाले रागोंमे भी यही मेल काम आता। यहाँ पंचम म' के स्थान-निर्णयमें सहायक होता है। इसलिए पंचम-मेल ही प्रधान होनेसे इसपर थोड़ा विचार करना आवश्यक है।

प्राचीन कालमे प्रत्येक वीणामे जीवाका प्रयोग होता था। अब यह 'जवारी' के नामसे सिर्फ तमूरेमें ही लगाई जाती है। तमूरेमे चारों तार नीचे तूमे पर बैठाई हुई लकड़ी या हड्डीकी घोड़ीपर होकर जाते हैं। इस घोड़ी पर तारोंके नीचे रेशम या ऊनके धागे लगा दिये जाते हैं जो तारोंके लिए गद्दीका काम देते हैं। इस ऊन या रेशमके धागेको ही 'जवारी' कहते हैं। इसके कारण तार घोड़ीकी कोरसे कुछ उठ जाता है। परिणाम यह होता है कि जब तार छेड़ने पर काँपता है तो घोड़ीकी कोरपर ठोकर

खाता है। यह ठोकर यदि तारमे ठीक उस समय लगे जब वह कम्पनमें अपनी दिशा बदलता है तो कम्पनका विस्तार बढता जायगा और ठोकरसे बार-बार नई शक्ति मिलते रहनेसे कम्पन देरतक होता रहेगा (अनु० ३७)। इसे ही प्राचीन शास्त्रकारोंने स्वरका 'अनुरणनात्मकत्व' गुण कहा है। ठोकरका विस्तारके अंतमें लगना अर्थात् ठोकरकी आवृत्ति और कम्पनकी आवृत्तिका एक होना आवश्यक है; इसीसे घोड़ीके सारे तलपर एक ही स्थान ऐसा है जहाँ जवारी ठीक बैठती है। तमूरा मिलानेवालेको जवारी धीरे-धीरे खिसकाकर उस स्थानपर लाना होता है। उस स्थानपर जवारीके पहुँचते ही तारमें भन्नाहट होने लगती है। जवारी न हो तो एक तारकी ध्वनि बंद होनेपर ही दूसरे तारकी ध्वनि सुनाई पड़ेगी। जवारी ठीक होनेपर चारों तारोंकी ध्वनि एकमें मिलकर 'संहति' का गुण पैदा करती है।

जवारीकी क्रियाकी विवेचना कार और गुन्नैयाने वैज्ञानिक मीमासा और प्रयोगके द्वारा किया है। इनका विचार है कि जवारीके कारण कोरके समकालिक अभिघातसे केवल मौलिक ही नहीं, उपस्वर भी तीव्र हो उठते हैं। पर एक बातमें दोनों वैज्ञानिकोंमें मतभेद है। कारके प्रयोगमें सम आशिक ही प्रस्फुटित होते हैं और विषम आशिक दब जाते हैं। गुन्नैयाके प्रयोगमे, सम-विषम, सारे आशिक तीव्र हो जाते हैं। यह मत-भेद, सम्भवत जवारीके प्रयोग-भेदके कारण ही हुआ है। एकमें आधे कम्पन पर ही ठोकर लगती है जिससे ठोकरकी आवृत्ति तारकी आवृत्तिसे दूनी हो जाती है। दूसरेमे ठोकरकी आवृत्ति और कम्पकी आवृत्ति एक होती है। गुन्नैयाने १५ वें आशिक तकका पता लगाया है। व्यवहारमे सभी आशिकों का अस्तित्व पाया जाता है। यंग-हेल्महोज़के नियम (अनु० ३२) के विरुद्ध छेड़नेके स्थानका इन आशिकोपर कोई असर नहीं पडता। तारके छेड़नेके स्थानपर जिन आशिकोंकी ग्रन्थि होती है उन्हें नियमानुसार दब जाना चाहिए; पर बार-बार अभिघातके कारण वे भी तीव्र हो जाते हैं।

इस प्रकार यह देखा जाता है कि जवारीके प्रयोगसे तारकी ध्वनि केवल तीव्र और लगातार ही नहीं होती बल्कि इसके आवर्त्तक बली हो उठते हैं।

११६—तमूरेके इस संक्षिप्त विवरणके बाद इसके महत्त्वपर भी ध्यान देना आवश्यक है। संगतिके लिए तमूरेमे कई विशेषताएँ हैं। पहली तो यह कि षड्ज और पंचमका इतना घनिष्ठ संवाद है कि इन दोनोंका साथ-साथ उच्चारण बड़ा ही इष्ट होता है। बल्कि, पंचमके कुछ नये आवर्त्तकों (अनु० ५७) के कारण इस स–प संघातमे नया रंग, नयी रोचकता आ जाती है। दूसरी, सप्तकके पूर्वांग और उत्तरांग, दोनोंके आदिस्वर स्वरितमें मौजूद होनेसे दोनो अंगोंका सामञ्जस्य और तौल बना रहता है। इस तौलका हिन्दुस्तानी संगीतमें बड़ा मूल्य है (अनु० १३०)। तीसरी, सभी आशिकोंके तीव्र होनेसे ये स्वतन्त्र रूपसे और अपने परिणामि स्वरों (अनु० ४४) के द्वारा प्राकृतिक (अनु० ६४) सप्तकके प्राय सभी स्वर उत्पन्न कर देते हैं जिससे तमूरेमे केवल स्वरितकी ही संगति नहीं, बल्कि गलेके सभी स्वरोंकी संगति होती है।

तमूरेके चार तारोंमे दो तो जोड़के होते हैं; इसलिए तीन ही स्वरों की 'संहति' होती है—स़ $\frac{१}{२}$, प़ $\frac{३}{४}$ और स १। इनके आशिक नीचे दिये जाते हैं—

स		१		२		३		४	५	६
प़	$\frac{३}{४}$		$\frac{३}{२}$		$\frac{९}{४}$	३	$\frac{१५}{४}$	$\frac{९}{२}$	..	...
स़	$\frac{१}{२}$	१	$\frac{३}{२}$	२	$\frac{५}{२}$	३	$\frac{७}{२}$	४...	...	..

यो तो एक ही ध्वनिके उपस्वरोंमें आवर्त्तक ग्रामके सभी स्वर निहित रहते हैं (अनु० ६४), पर यहाँ प़ और स़ के उपस्वरोंसे र ($\frac{९}{८}$), ग ($\frac{५}{४}$) और न ($\frac{१५}{८}$) की विशेष रूपसे पुष्टि होती है। फिर नू ($\frac{७}{४}$), एक नया स्वर प्रस्फुटित होता है जो सामान्यत व्यवहारमें नहीं आता।

पर इन आवर्त्तकोंके अलावा इनके परिणामि स्वर बड़े प्रबल होते हैं, क्योंकि 'जवारी' की क्रियासे स्वरोंकी तीव्रता बहुत बढ जाती है। नीचे स्वरोंका विवरण दिया जाता है—

(१) स—प़——→ यौगिक—१+$\frac{३}{४}$=$\frac{७}{४}$ (क) नू॰
शैषिक—१−$\frac{३}{४}$=$\frac{१}{४}$ (ख) स़
(२) स—स़——→ यौगिक—१+$\frac{१}{२}$=$\frac{३}{२}$ (ग) प
शैषिक—१−$\frac{१}{२}$=$\frac{१}{२}$ (घ) स़
(३, प़—स़——→ यौगिक—$\frac{३}{४}$+$\frac{१}{२}$=$\frac{५}{४}$ (च) ग
शैषिक—$\frac{३}{४}$−$\frac{१}{२}$=$\frac{१}{४}$ (छ) स़

इस प्रकार परिणामि स्वर स, प, ग और नू॰ को पुष्ट करते हैं। यह हिन्दुस्तानी गवैयोंका अनुभव है कि सच्चे मिले हुए तमूरेमें गान्धार साफ सुनाई पड़ता है। नू॰ कोमल निषाद ($\frac{१६}{९}$) से भी कुछ उतरा हुआ है। जहाँ स्वतन्त्र रूपसे, केवल स्वरितके साथ नू का उच्चारण होता है वहाँ शायद इसी सात्तिक निषादका प्रयोग होता है। क्लेमेन्टने कहा है कि "सात्तिक अतरालों अर्थात् सप्तम आवर्त्तकसे बने हुए स्वरोंको जो महत्त्व दिया गया है उसने हिन्दुस्तानके संगीतको संगीत-कलाके बौद्धिक विकासमें सबसे ऊँचे स्थानपर पहुँचा दिया है।" दाक्षिणात्य संगीत-पण्डित सुब्रह्मण्य अय्यर लिखते हैं—"फोक्स स्ट्रैंग्वेज आदिके इस (श्रुति-निर्णय) विधानमें $\frac{७}{६}$, $\frac{७}{४}$ और $\frac{९}{८}$ ये तीन मुख्य स्वर नहीं पाये जाते, यदि हम अपनेको स—म, स—प के आधारपर २२ श्रुतियोंके विधानतक ही सीमित रखें। मैं जब इन स्वरोंको वेलामे निकालता हूँ तो इन्हें इनके अनुनाद और आशिकोंसे पहचान लेता हूँ। ये सुन्दर स्वर हैं और निश्चित रूपसे दाक्षिणात्य रागोंमें प्रयुक्त होते हैं।"[१] इनका विश्वास है कि ग् $\frac{७}{६}$ का

---

1. The grammar of south Indian (Karnatic) Music.

भैरवी (आसावरी) और आनन्द भैरवमें, म′ $\frac{७}{५}$ का रामप्रियमें और न् $\frac{७}{४}$ का सुरतिमें अवश्य प्रयोग होता है। ये सारे दाक्षिणात्य राग हैं। हिन्दुस्तानी रागोंपर इस दृष्टिसे किसीने विचार नहीं किया है। पर यह सम्भावना अवश्य है कि तमूरेके साथ गानेमें कम-से-कम न् $\frac{७}{४}$ का प्रयोग होता है; क्योंकि यह स्वर स़ के आंशिकोंमें और स—प़ के यौगिकमें मौजूद है। यह माना जा सकता है कि न् $\frac{९}{५}$, न्‌‌ $\frac{१६}{९}$ और न्‌ ७ $\frac{७}{४}$, इन तीन प्रकारके कोमल निषादोंमें न् का प्रयोग ग् $\frac{६}{५}$ के संवादमें, न्‌ का प्रयोग म के संवादमें और न्‌ ७ का स्वरित (स) के साथ होता है। इस प्रसंगपर आगे भी विचार किया जायगा।

[ख] स्वर-ग्राम

१२०—यह बताया जा चुका है कि आधुनिक हिन्दुस्तानी पद्धतिमे शुद्ध-ग्राम बिलावल ठाठ (अनु० ५३) माना जाता है। उत्तरमे संगीतका पहला पाठ बिलावलके स्वर-साधनसे ही आरम्भ होता है। हिन्दुस्तानी पद्धतिमे इस बिलावल ठाठका कब प्रवेश हुआ इसपर भी विचार किया जा चुका है (अनु० ११५)। तमूरेके ध्वनि-विश्लेषणके बाद यहाँ इतना और कहा जा सकता है कि वैज्ञानिक दृष्टिसे तमूरेके आविर्भाव और व्यवहारके साथ बिलावल ठाठका शुद्ध-ग्रामके रूपमे प्रकट होना स्वाभाविक है। क्योंकि बिलावलके स्वरोंकी ही तमूरेके स्वरोंके साथ सर्वांगीण संगति है।

दाक्षिणात्य पद्धतिमे कनकांगी (अनु० १०७) के स्वर ही शुद्ध माने जाते हैं। इसमे दो अर्धस्वर लगातार आते हैं। इसके चतु संघातका प्रबन्ध यों है —

$$\underbrace{स \quad \tfrac{१}{२} \quad र \quad \tfrac{१}{२} \quad ग}_{\frac{९}{८}} \; \underbrace{\quad १\tfrac{१}{२} \quad म}_{\frac{३२}{२७}}$$ [1]
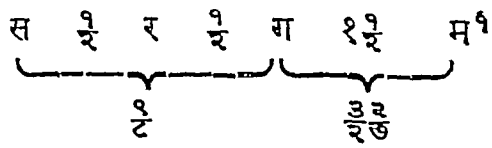
१—यहाँ $\frac{१}{२}$ अर्धस्वरके, १ एक स्वरके और १$\frac{१}{२}$ डेढ़ स्वरके अंतरालोंका अन्दाज़ है।

हिन्दुस्तानी स्वर-संज्ञामें इसका रूप स १/२ र् १/२ र १ १/२ म होगा। चतु संघातका ऐसा विभाग 'अर्ध-स्वरक' (क्रोमेटिक) के नामसे प्राचीन यूनानी पद्धतिमें भी प्रचलित था (अनु० ६७)। पर दो अर्धस्वरोंका उच्चारण एक-के-बाद-एक साधारणत· कठिन है। संगीतकी दृष्टिसे इसमें कोई सुन्दरता भी नहीं आती। फिर ये दोनों अर्धस्वर समान भी नहीं हो सकते। यदि स—र को १६/१५ माना जाय तो र—ग १३५/१२८ या एक लीमा (२३ से·) होगा; और यदि ग को १०/९ मानें तो दूसरा अर्धस्वर इससे भी छोटा २५/२४ अर्थात् १८ से· होगा। इसीलिए सुब्रह्मण्य अय्यर कनकागीका स्वर-प्रवन्ध

स	र	(ग)	म	प	ध	(न)	सं
१	२५/२४	१०/९	४/३	३/२	२५/१६	५/३	२
[स	र्	र	म	प	ध्	ध	सं

देकर लिखते हैं 'यह कोई पूछ सकता है कि २५/२४ और १६/१५ इन दो अंतरालोंका लगातार उच्चारण सम्भव है या नही। हाँ, सम्भव है, यदि स्वरको बीचमें तोड़ दिया जाय।'[1] पर ऐसी सम्भावना संगीतके कामकी नहीं। यह भी देखा जाता है कि दाक्षिणात्य पद्धतिमें इस कठिनाईको दूर करनेके लिए आरोही-अवरोहीमें दो मेंसे एक स्वरको छोड़ देते हैं। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि स्वरकी दो मुख्य प्रकृतियाँ हैं—एक गमक और दूसरा लीनक। फिर गमकके अनेक भेद हैं। गमकका सामान्य लक्षण है गति। जब ध्वनि किसी स्वरपर ठहरती नहीं और भिन्न-भिन्न युक्तियोंसे उस स्वरका स्पर्शकर दूसरेपर चली जाती है तो उसे 'गमक' कहते हैं। कम्पन, आन्दोलन, मीड़, कण आदि इसीके अन्तर्गत हैं। जब ध्वनि किसी एक स्वरपर देरतक एकतान ठहरती है तो उस ठहराव या 'मुक़ामके' स्वरको 'लीनक' कहते हैं।

---

1. The grammar of south Indian (Karnatic) music pp. 84.

तात्पर्य यह है कि ध्वनि उस स्वरमें लीन हो जाती है। गमक और लीनककी दृष्टिसे विचार करें तो यह मानना पड़ता है कि गमकमें दो अर्धस्वरोंका उच्चारण सम्भव है पर लीनकमें ऐसा प्रयोग अनायास नहीं हो सकता। इसीसे व्यवहारमें अब दक्षिणमें भी मालवगौड़ा (भैरव) को ही शुद्ध मेल मानते हैं और संगीतकी शिक्षा इसीसे आरम्भ होती है। दाक्षिणात्य पद्धतिमें यह परिवर्त्तन कर्नाटकके मेधावी सन्त-गायक पुरन्दरदासने किया। यह मालवगौड़ा मेल भी कनकागी की तरह ही अर्धस्वरक है; पर दोनों अर्धस्वरोंको अलग-अलग कर दिया गया है। जैसे,

स $\frac{1}{2}$ र १$\frac{1}{2}$ ग $\frac{1}{2}$ म
[स र् ग म]

पर एक अस्वाभाविकता इसमे भी रह जाती है। स्वरितके बाद लगातार अर्धस्वरका उच्चारण आसान नहीं होता। इसीलिए हिन्दुस्तानी संगीतके भैरव आदि रागोंमें 'न स ग म' तानका ही प्रयोग होता है। 'स र्' प्रयोग उतना ही कृत्रिम है जितना 'सं न'। इसके विपरीत आरोहीमें 'न सं' और अवरोही में 'र् स' अनायास आता है। यहाँ र् और न का प्रयोग प्रवेशक स्वर (अनु० ८५) के रूपमें होता है। इस विचारसे मालवगौड़ा भी शुद्ध मेलके लिए बहुत उपयुक्त नहीं है।

पर महत्त्वकी बात यह है कि दक्षिणमे शंकराभरण (बिलावल) राग सबसे अधिक लोकप्रिय समझा जाता है। यह इस बातकी ओर संकेत करता है कि दक्षिणमें भी बिलावलको ही शुद्ध मेल माननेकी ओर झुकाव है।

प्रश्न यह है कि 'शुद्ध' का तात्पर्य क्या है। कुछ लोगोका विचार है कि साम-गानके ग्रामको ही 'शुद्ध' कहते हैं। सामगानके ही ग्रामको भरतने स्वीकृत किया है इसलिए भरतग्राम 'शुद्ध' है। दाक्षिणात्य पण्डितोंकी धारणा है कि अर्धस्वरक कनकागी मेल ही भरतग्रामका सच्चा रूप है। इसीलिए दाक्षिणात्य पद्धतिमे कष्टसाध्य कनकागी मेलकोही

शुद्ध मेल माना गया, जिससे स्वरोंमें चार-चार श्रुति तककी विकृति करनी पड़ी। पर यह सभी मानते हैं कि भरतग्राम द्विस्वरक था जिसका कनकागीसे कोई सम्पर्क नहीं। फिर 'शुद्ध' का ठीक अर्थ है 'प्राकृत'। जो ग्राम 'प्राकृत' हो, गलेसे अनायास निकल सके, उसी ग्रामको शुद्ध कहना चाहिए। प्रत्येक संस्कारी संगीत-पद्धतिका आधार होता है ग्राम्य-संगीत, और इसलिए ग्राम्य-संगीतका सरल, प्राकृत स्वर-प्रबन्ध ही संस्कारी संगीतमें 'शुद्ध' के नामसे गृहीत होता है। संस्कृति उन्हीं शुद्ध स्वरोंको नाना युक्तियोंसे विकृत कर, नाना कृत्रिम ग्रामोंकी रचना करती है और इस प्रकार शुद्ध-ग्रामके आधारपटपर स्वरोंकी रोचक चित्रकारी होती है।

इस दृष्टिसे देखा जाय तो विलावलको शुद्ध मेल मानना अनिवार्य हो जाता है। इसीके स्वर सुसाध्य और प्राकृत हैं। इसीका आधार ग्राम्य-संगीत है। प्रकृति इसका आधार है; इसीलिए यह इतना व्यापक है कि प्राय सभी देशोंके प्राचीन और नवीन संगीतमें यह पाया जाता है।

१२१—विलावलमें ही भरतकी परम्परा भी मौजूद है। भरतकी संगीत-पद्धति सीधे ग्राम्य संगीतसे निकली है। यह अनुभव सिद्ध है कि ग्राम्य संगीतका क्रम प्राय अवरोही होता है। भरत-संगीत भी अवरोही क्रममें ही है। अवरोही-क्रममें प्राकृत ग्रामका काफी-मेलमें वदल जाना स्वाभाविक है; क्योंकि अवरोहीमे स्वर अनायास नीचे उतर जाते हैं। फिर 'सं न' के प्रयोगसे 'सं न्' का प्रयोग अधिक सुन्दर होता है। भरत-ग्रामकी इसी रीतिसे रचना हुई है। संस्कारी सगीतमें आरोही क्रमका प्रवेश होते ही विलावलका अधिकार आ जाता है। ये दोनों ही मेल द्वि-स्वरक हैं। भरत-ग्रामसे किस प्रकार, केवल स्वर-श्रुतियोंका क्रम वदल देनेसे विलावल मेल तैयार हो जाता है, यह वताया जा चुका है (अनु ११५)।

प्राचीन यूनानी ग्राम भी भरत-ग्रामकी तरह ही अवरोही था। इस ग्रामका प्रवन्ध हिन्दुस्तानी स्वरोंमे श्रुति-संकेतके साथ दिया जाता है—

(८) (७) (६) (५) (४) (३) (२) (१)
स २ र ४ ग ४ म ४ प २ ध ४ न ४ सं।

←————————
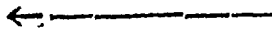
इसे 'डोरियन' कहते थे, जो हिन्दुस्तानी भैरवी मेलके ही समान है। पायथागोरसने इन्हीं स्वरोंके अंतरालोंको आरोही क्रममें बैठाकर नीचेका द्विस्वरक ग्राम बनाया —

(१) (२) (३) (४) (५) (६) (७) (८)
स ४ र ४ ग २ म ४ प ४ ध ४ न २ सं

भरतका अवरोही ग्राम भैरवी और काफीके बीचका है; क्योंकि उनका ध और र प्राचीन यूनानी डोरियनके ध और र से कुछ चढ़ा हुआ है। इसीलिए भरत-ग्रामका आरोही रूप एक तो अहोबलका काफी-शुद्ध हुआ और दूसरा हिन्दुस्तानी पद्धतिका बिलावल-शुद्ध। पर ध्यान देनेकी बात यह है कि भरत-ग्राम, अहोबल-ग्राम और हिन्दुस्तानी-ग्राम, ये तीनों द्वि-स्वरक हैं।

थोडे-थोड़े अन्तरके साथ बिलावलके कई रूप हो सकते हैं। इनमे सबसे सरल पायथागोरसका द्वि-स्वरक ग्राम है, जिसका रूप नीचे दिया जाता है—

(१) स र ग म प ध न सं

$१ \quad \frac{९}{८} \quad \frac{८१}{६४} \quad \frac{४}{३} \quad \frac{३}{२} \quad \frac{२७}{१६} \quad \frac{२४३}{१२८} \quad २$

$\frac{९}{८} \quad \frac{९}{८} \quad \frac{२५६}{२४३} \quad \frac{९}{८} \quad \frac{९}{८} \quad \frac{९}{८} \quad \frac{२५६}{२४३}$

इसमे गान्धार बहुत ही अनिष्ट है। पर हिन्दुस्तानी पद्धतिकी दृष्टिसे इसमें एक गुण है कि इसके पूर्वांग (स—म) और उत्तरांग (प—सं) में पूरा सारूप्य है। इस सारूप्यको हम 'यमकत्व' कहेंगे। 'यमक' का अर्थ होता है एक ही रूपके दो वस्तुओंका जोड़ा।

तमूरेकी संगतिमें ऊपरके अनिष्ट गान्धार और अनिष्ट धैवतको स्थान नहीं मिल सकता। इसलिए तमूरेका विलावल तो शुद्ध आवर्त्तक ही हो सकता है जिसे प्राकृतिक या वैज्ञानिकग्राम कहते हैं; जैसे—

(२)	स	र	ग	म	प	ध	न	स
	१	$\frac{९}{८}$	$\frac{५}{४}$	$\frac{४}{३}$	$\frac{३}{२}$	$\frac{५}{३}$	$\frac{१५}{८}$	२
अन्तराल	$\frac{९}{८}$	$\frac{१०}{९}$	$\frac{१६}{१५}$	$\frac{९}{८}$	$\frac{१०}{९}$	$\frac{९}{८}$	$\frac{१६}{१५}$	

पर तमूरेके बिलावलमें र—प संवाद नहीं रहता और इसलिए पूर्वांग और उत्तरांगका यमकत्व नष्ट हो जाता है। यह भारतीय परम्पराके प्रतिकूल है। यमकत्व बनाये रखनेके लिए र को थोड़ा उतारा जा सकता है। जैसे—

(३)	स	र	ग	म	प	ध	न	स
	१	$\frac{१०}{९}$	$\frac{५}{४}$	$\frac{४}{३}$	$\frac{३}{२}$	$\frac{५}{३}$	$\frac{१५}{८}$	२
अन्तराल	$\frac{१०}{९}$	$\frac{९}{८}$	$\frac{१६}{१५}$	$\frac{९}{८}$	$\frac{१०}{९}$	$\frac{९}{८}$	$\frac{१६}{१५}$	

इस प्रबन्धमें र-ध सवाद और ग्रामका यमकत्व स्थापित हो जाता है। पर र $\frac{१०}{९}$ को तमूरेका पञ्चम प्रस्फुटित न होने देगा। पञ्चमके साथ तो र $\frac{९}{८}$ ही आ सकता है। इसलिए धैवतको ही चढाना आवश्यक है, क्योंकि अनिष्ट होने पर भी र के सवादसे इसमें इष्टता आ जाती है। इस प्रकार नीचे दिया हुआ ग्राम ही शुद्ध बिलावल ग्राम माना जा सकता है —

(४)	स	र	ग	म	प	ध	न	सं
	१	$\frac{९}{८}$	$\frac{५}{४}$	$\frac{४}{३}$	$\frac{३}{२}$	$\frac{२७}{१६}$	$\frac{१५}{८}$	२
अन्तराल	$\frac{९}{८}$	$\frac{१०}{९}$	$\frac{१६}{१५}$	$\frac{९}{८}$	$\frac{९}{८}$	$\frac{१०}{९}$	$\frac{१६}{१५}$	

इसका यह अर्थ नहीं कि और तीन रूपोंके वैकल्पिक स्वर मान्य नहीं हैं। हिन्दुस्तानी रागोंमें भिन्न-भिन्न सवाद और सगतिकी आवश्यकताके अनुसार र $\frac{१०}{९}$ ग $\frac{८१}{६४}$ और ध $\frac{५}{३}$ का व्यापक रूपसे प्रयोग होता है।

१२२—यदि तमूरेके ही आधारपर चले तो हिन्दुस्तानी-ग्रामके पाँच विकृत स्वर भी निश्चित हो जाते हैं। कोमल गान्धार (ग् $\frac{६}{५}$) इष्टस्वरोंमे है जिसका अस्तित्व तमूरेकी संहतिमे निर्विवाद है। इसका स से सीधा संवाद है। कोमल गान्धार (ग्) का संवादी न् $\frac{९}{५}$ का भी मानना आवश्यक है। ग् का मध्यम सवादी कोमल धैवत (ध् $\frac{८}{५}$) है। इस ध् का पूर्वांग सवादी कोमल ऋषभ (र् $\frac{१६}{१५}$) है। कोमल ऋषभका मध्यम संवादी तीव्र मध्यम (म′) होता है जिसका मान $\frac{६४}{४५}$ है। इस प्रकार विकृत स्वरोंका मान क्रमश

(स)	र्	ग्	म′	ध्	न्
१	$\frac{१६}{१५}$	$\frac{६}{५}$	$\frac{६४}{४५}$	$\frac{८}{५}$	$\frac{९}{५}$

होता है। ये पाँचो स्वर स र म प और ध ($\frac{२७}{१६}$) को एक-एक अर्धस्वर ($\frac{१६}{१५}$) चढ़ाकर भी निकाले जा सकते हैं। पूर्व स्वरोंको चढ़ानेके बदले यदि उत्तर स्वरोंको एक-एक अर्धस्वर उतारा जाय तो दूसरे प्रकारके विकृत स्वर निकलेगे। जैसे, प—$\frac{१६}{१५}$→ म′ $\frac{४५}{३२}$। हिन्दुस्तानी पद्धतिमे इस म′ ($\frac{४५}{३२}$) का भी प्रयोग होता है क्योकि न ($\frac{१५}{८}$) इसका मध्यम संवादी है। जहाँ र् से संवादकी आकांक्षा रहती है वहाँ म′ $\frac{६४}{४५}$ का व्यवहार होता है और न ($\frac{१५}{८}$) के साथ म′ $\frac{४५}{३२}$ का।

शुद्ध और विकृत मिलाकर १२ स्वर सारिणी ५ में दिये गये हैं। वहाँ म′ का मान $\frac{४५}{३२}$ है। इसकी जगह म′ $\frac{६४}{४५}$ भी रखा जा सकता है। यह बताया जा चुका है कि १२ स्वरोंका ग्राम परम्परा प्राप्त और सार्वभौम है। हिन्दुस्तानी सगीतकी आधार-शिला भी ये ही बारह स्वर हैं।

हिन्दुस्तानी सगीतमे अब 'शुद्ध' और 'विकृत' विशेषणोंका व्यवहार होने लगा है, जहाँ 'विकृत' के दो भेद माने जाते हैं—एक कोमल और दूसरा तीव्र। पर प्रचारमें अब भी नीचे स्वरोंको 'कोमल' और ऊँचेको 'तीव्र' या 'कड़ी' कहते हैं। तारताकी दृष्टिसे यह संज्ञा अधिक उपयुक्त है।

१२३—आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीतके पण्डित भातखण्डेने अभिनव-रागमंजरीमें अहोबल-श्रीनिवासकी शैलीमें हिन्दुस्तानी संगीतके बारह स्वरोंका स्थान-निरूपण किया है। मंजरीके आधारपर स्वरोंकी गणना नीचेकी सारिणीमें दी जाती है (परि० २ ट) —

सारिणी १६

स्वर	तारकी लम्बाई (इ०)	अन्तराल	
		भिन्नाक	सेवर्ट
स	३६	१	०
र्	३४	१८/१७	२४·६
र	३२	९/८	५१·१
ग्	३०	६/५	७६·१
ग	२८ २/३	५४/४३	९८·६
म	२७	४/३	१२५
म′	२५ १/२	२४/१७	१४६·८
प	२४	३/२	१७६·१
ध्	२२ २/३	२७/१७	२०१·०
ध	२१ १/३	२७/१६	२२७·२
न्	२०	९/५	२५५·२
न	१६ ५/९	८१/४३	२७५·०
सं	१८	२	३०१·०

इस सारिणीमें र, ग्, म, प और न् तो अहोबलके स्वर हैं, जो सर्वमान्य हैं। पर र्, ग, म′, ध् और न नये हैं। सारिणी ५ के साथ तुलना करनेपर जान पड़ता है कि यहाँ ग और न लगभग २ सेवर्ट

चढ़े हुए हैं। पर हिन्दुस्तानी-संगीत-पद्धति (मराठी) में भातखण्डेने सच्चे गान्धार ($\frac{५}{४}$) और सच्चे निषाद ($\frac{१५}{८}$) को मान लिया है। र्‌, म′ और ध्‌ को इन्होंने द्विश्रुतिक माना है इसीलिए इन्हें चतुश्रुतिक र, प और ध के आधेपर बैठाया है। स्वर को दो लगभग बराबर भागोंमे बाँटनेकी यह प्रक्रिया ईरानी संगीत-पद्धतिमें भी प्रचलित थी। जिस अंतरालको दो सम-भागोंमें बाँटना हो उसके अंश और हर, दोनोंको दो से गुना करना चाहिए। फिर इस द्विगुणित अंश और हरको जोड़कर दो से भाग देना चाहिए। भाग देनेपर जो अंक निकले उसे अंशके नीचे रखनेपर मूल अंतरालका पूर्वार्ध और हरके ऊपर रखनेपर उत्तरार्ध निकल आता है। इन दो भागोंको परस्पर गुना करनेपर मूल अंतराल आ जाता है। जैसे, र के अंतराल $\frac{९}{८}$ को दो सम-भागोंमे बाँटना हो तो इस रीतिसे बाँटेंगे—

$$\frac{९}{८}=\frac{९}{८}\times\frac{२}{२}=\frac{१८}{१६}=\frac{१८}{१७}\times\frac{१७}{१६}।$$

यहाँ, $\frac{९}{८}$ दो लगभग समभागोंमें विभक्त हो गया जिनमें एक $\frac{१८}{१७}$ है और दूसरा $\frac{१७}{१६}$। सेवर्टमें इनका मान क्रमश· २५ और २६ है। दोनोंमें केवल १ सेवर्टका अंतर है। भातखण्डेने इसी प्रक्रियासे र्‌, म′ और ध्‌ का स्थान-निर्णय किया है। पर गान्धारको $\frac{५}{४}$ मान लेनेपर ग—म अंतराल ($\frac{१६}{१५}$) प्रधान हो जाता है और यही द्विश्रुतिक कहा जा सकता है। इसलिए स्वरोंको इसी मात्रामें घटा-बढ़ाकर विकृत करना उचित है। इस प्रक्रियाको हिन्दुस्तानी-संगीत पद्धतिमें पण्डित भातखण्डेने भी माना है। जो हो, यदि पण्डितजी अहोबलकी शैली छोड़कर तारको सरल अंशोंमें बाँटनेकी विधि ग्रहण करते तो कहीं अच्छा होता।

[ग] ठाट (थाट)

१२४—यह बताया जा चुका है कि उत्तरमे मध्यकालसे ही वर्गीकरणकी राग-रागनी पद्धति प्रचलित है। पहले इसके कितने ही मत थे। अब

हनुमत्-मत ही प्रचारमें है (अनु० ११६)। इस मतका वर्गीकरण दिया जा चुका है (अनु० ११६)। छ पुरुष राग, तीस रागनियाँ, ४८ पुत्र और ४८ पुत्रभार्य्याएँ मिलाकर कुल १३२ प्रचलित राग इस पद्धतिमें माने गये हैं। महम्मद रज़ाने सभी प्राचीन मतोंका खण्डन करके नई पद्धतिका निरूपण किया है। उन्होंने दीपकके अप्रचलित होनेसे इसकी जगह नट माना है, एक-एक रागकी छ-छ रागनियाँ मानी हैं। उनका विधान नीचे दिया जाता है —

(१) भैरव—(क) भैरवी (२) रामकली (३) गूजरी (४) खट (५) गान्धारी (६) आसावरी।

(२) मालकौस–(१) बागेश्वरी (२) तोड़ी (३) देशी (४) सूहा (५) सुघराई (६) मुलतानी।

(३) हिंडोल—(१) पूरिया (२) वसंत (३) ललित (४) पंचम (५) घनाश्री (६) मारवा।

(४) श्री—(१) गौरी (२) पूर्वी (३) गौरा (४) त्रिवण (५) मालश्री (६) जेतश्री।

(५) मेघ—(१) मधुमाध (२) गौड (३) शुद्ध सारग (४) बड़हंस (५) सामन्त (६) सोरठ।

(६) नट—(१) छायानट (२) हमीर (३) कल्याण (४) केदार (५) बिहागड़ा (६) यमन।

महम्मद रज़ाके इस वर्गीकरणके विषयमें भातखण्डे कहते हैं—'राग-रागनी-विभागकी पद्धतिके लिए उन्होंने (महम्मद रजा) इस महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तका स्पष्टरूपसे निरूपण किया है कि राग और उनकी रागनियोंके बीच कुछ साम्य या सारूप्य होना चाहिए। उनके वर्गीकरणमें इस सिद्धान्तका अनुसरण पाया जाता है, इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता।'

पर भातखण्डेको इस वर्गीकरणसे सन्तोष न हुआ इसलिए उन्होंने वेंकटमखीके ७२ मेलोंके आधारपर हिन्दुस्तानी संगीतको फिरसे नियम-बद्ध

किया। रागोंका वर्गीकरण अनेक प्रकारसे हो सकता है। इन वर्गीकरणोंमें परस्पर विरोध होना आवश्यक नहीं है। अपेक्षा सिर्फ इस बातकी है कि प्रत्येक वर्गीकरणका आधार एक सामान्य लक्षण हो। रागोंका समय, उनकी गति-प्रकृति, उनका रस-भाव, उनका स्वर-विन्यास आदि इनमेंसे प्रत्येक वर्गीकरणका आधार माना जा सकता है। भातखण्डेने इनमेंसे स्वर-विन्यासको ही ग्रहण किया।

'ठाट' या 'थाट' शब्दका प्रयोग उत्तरमें 'मेल' के ही अर्थमें होता आया है। यह सितार या इसराज जैसे बाजोंमें सुँदरियोंके किसी-विशेष क्रमका नाम है। इन बाजोंमें सुँदरियाँ सरकाई जा सकती हैं। यदि सुँदरियोंका प्रबन्ध ऐसा है कि उनपर बिलावल राग बजाया जा सकता है तो इस प्रबन्धको बिलावल 'ठाट' कहेंगे। अब यदि गान्धार और निषादको सरकाकर कोमल बना दें तो यह 'काफी ठाट' हो जायगा। इसी तरह सुँदरियोंको सरकाकर आसावरी, भैरवी आदिके ठाट तैयार किये जाते हैं। वीणामें सुन्दरियाँ स्थायी रूपसे बैठी होती हैं। इसीलिए वीणाके स्वरको 'अचल ठाट' कहते हैं। 'ठाट' या 'थाट' का यह लौकिक प्रयोग है। अब बिलावलकी सुँदरियोंपर जितने राग बजाये जा सकते हैं उन्हे बिलावल ठाटके राग कहेंगे। इसप्रकार 'ठाट' का व्यवहार मेलके अर्थमें होने लगा।

स्वर-प्रबन्धके अर्थमें ठाटका प्रयोग होते हुए भी उत्तरमें राग-रागनी विभागका ही प्रचार रहा। पण्डित भातखण्डेने पहले-पहल राग-रागनी-पद्धतिका निराकरणकर उसके स्थानमें 'दस ठाट' की पद्धतिका निरूपण किया है। वे कहते हैं कि 'हम ७२ ठाटोंमें से उन्हीं थाटोंको चुन ले जो उत्तर भारतके प्रचलित रागोंके वर्गीकरणके लिए आवश्यक हैं और फिर पूरी पद्धति तैयार करनेका प्रयत्न करें।' 'मैं ७२ मेलोंमें-से केवल १० अधिक प्रचलित मेलोंको लूंगा और उन्हींमें प्रचलित रागोंको विभक्त करूँगा।' इस प्रकार पण्डित भातखण्डेने देखा कि उत्तरके सारे प्रचलित रागोंका दस ठाटों या मेलोंमें ही समावेश हो जाता है। ये ठाट, स्वर-

संस्थान-समेत दिये जा चुके हैं (अनु० ५३)। यहाँ प्रसंगवश उनका स्वर-प्रबन्ध फिर दिया जाता है—

(१) बिलावल—स र ग म प ध न स।
(२) यमन— स र ग म' प ध न स।
(३) खमाज— स र ग म प ध न् सं।
(४) भैरवी — स र् ग् म प ध् न् सं।
(५) भैरव— स र् ग म प ध् न सं।
(६) पूर्वी— स र् ग म' प ध् न सं।
(७) मारवा— स र् ग म' प ध न स।
(८) काफी— स र ग् म प ध न् स।
(९) आसावरी–स र ग् म प ध् न् सं।
(१०) टोड़ी— स र् ग् म' प ध् न स।

दाक्षिणात्य मेलकर्त्ता पद्धतिमें इनके नाम क्रमश ये हैं—(परिशिष्ट१ख) (१) शंकराभरण (२) मेच कल्याण (३) हरिकाम्भोजी (४) टोड़ी (५) मायामालव गौड़ा (६) कामवर्धनी (७) गमनप्रिया (८) खरहर-प्रिया (९) नटभैरवी (१०) शुभ पन्तुवराड़ी।

१२५—इसमें कोई सन्देह नहीं कि उत्तरके प्रचलित राग उपर्युक्त दस मेलोंमे ही समाविष्ट हो जाते हैं। पर महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि इन दश मेलोंका ही प्रचार उत्तरमें क्यों रहा? दक्षिणमे इन दश मेलोंके अतिरिक्त अनेक मेल प्रचलित हैं, जो उत्तरमें ग्राह्य नहीं। दोनों पद्धतियोंमें इस विभेदका कोई मुख्य कारण होना चाहिए। पण्डित भातखण्डेने इस पर विचार नहीं किया है। इसीलिए यहाँपर इसकी विस्तृत विवेचना आवश्यक है। इससे हिन्दुस्तानी पद्धतिके तत्त्व और मौलिक सिद्धान्तका भी स्पष्टीकरण होगा। उत्तरीय और दाक्षिणात्य, दोनों ही पद्धतियोंमें पूरे सप्तकको १२ अर्धस्वरोंमें बाँटा गया है। इन १२ स्वरोंसे मेलकी रचनाके लिए कुछ नियम उत्तर और दक्षिणमें समान-

रूपसे माने जाते हैं। जैसे—(क) बारह स्वरोंमें-से सात स्वरोंको लेकर ही मेल या ठाटकी रचना होनी चाहिए (ख)। इन सात स्वरोंमें षड्ज, पञ्चम और शुद्ध मध्यम या तीव्र मध्यम अवश्य होना चाहिए। (ग) पूर्वांग और उत्तरांगके शेष चार-चार स्वरोंमें-से दो पूर्वांगमें और दो उत्तरांगमें होने चाहिए।

इन्हीं तीन नियमोंपर वेंकटमखीके ७२ मेलोंकी रचना हुई है (परिशिष्ट १ क)।

हिन्दुस्तानी पद्धतिके व्यवहारसे स्पष्ट है कि इसमें ऊपरके इन ३ नियमोंके अतिरिक्त नीचेके ३ नियम और माने जाते हैं जो उत्तरीय पद्धतिका वैशिष्ट्य प्रकट करते हैं.—

१—किसी स्वरके शुद्ध और विकृत भेदोंमें-से किसी एकका ही प्रयोग हो सकता है।

२—पूर्वांगके प्रत्येक स्वरका मध्यम या पञ्चम-संवादी स्वर उत्तरांगमें अवश्य होना चाहिए।

३—जिस ठाटमें तीव्र मध्यम हो उसमें शुद्ध निषादका होना आवश्यक है। साथ-ही-साथ जहाँ म′—न का युग्म हो वहाँ कोमल ऋषभ या शुद्ध गान्धार भी अवश्य हो।

हिन्दुस्तानी पद्धतिके इन तीनों नियमोंके औचित्य और इनकी वैज्ञानिकताका विचार नीचे किया जाता है।

१२६—(१) बारह स्वरोंकी पाटीमें र् र ग् ग, ये चार स्वर पूर्वांगमें हैं जिनमें-से नियम (ग) के अनुसार दो ही लिये जा सकते हैं। दाक्षिणात्य पद्धतिमें इन चारोंमें-से कोई भी दो ग्राह्य हैं; जैसे, 'र् र', 'र् ग्', 'र् ग', 'र ग्' 'र ग' और 'ग् ग'। पर हिन्दुस्तानी पद्धतिमें नियम (१) के अनुसार र् और र में-से एक और ग् और ग में से एकका ही प्रयोग हो सकता है। 'र् र' और 'ग् ग, प्रयोग वर्जित है। सिद्धान्तरूपमें दक्षिणमें भी यह नियम माना जाता है। पर वहाँ यह नियम केवल नाममें

लगता है, स्वरमें नहीं। जैसे, दक्षिणमें जब र् और र दोनोंका प्रयोग होगा तो र् को शुद्ध ऋषभ और र को शुद्ध गान्धार कहा जायगा। पर 'र ग्' के प्रयोगमें र को शुद्ध गान्धार न कहकर, चतुश्रुतिक ऋषभ कहेंगे और ग् को साधारण गान्धार। इसी प्रकार जब 'ग् ग' से मेल बनावेंगे तो ग् को साधारण गान्धारके वदले षट्श्रुतिक ऋषभ और ग को अन्तर गान्धार कहा जायगा। इसीलिए र और ग् में-से प्रत्येककी दो-दो संज्ञाएँ हैं। वैसे ही ध और न् के भी दो-दो नाम हैं। इन दो-दो संज्ञाओंके वैकल्पिक प्रयोगसे 'सरगम' के उच्चारणमें प्रत्येक मेलका पूर्वांग षड्ज, ऋषभ, गान्धार और मध्यमसे और उत्तरांग पंचम, धैवत, निषाद और तार षड्जसे पूरा हो जाता है।

नीचे, उदाहरण स्वरूप, कुछ दाक्षिणात्य मेलोंके पूर्वांग हिन्दुस्तानी स्वर-संकेत और दाक्षिणात्य स्वर-संज्ञाके साथ दिये जाते हैं—

	स	र्	र	ग्	ग	म
१—कनकांगी—	स	र्	र	×	×	म
	षड्ज,	शु॰ ऋ॰	शु गा॰	×	×	मध्यम
२—नटभैरवी—	स	×	र	ग्	×	म
	षड्ज,	×	च॰ श्रु॰ ऋ॰	सा॰ गा॰	×	मध्यम
३—यागप्रिय—	स	×	×	ग्	ग	म
	षड्ज	×	×	ष॰ श्रु॰ ऋ॰	अ॰गा॰	मध्यम

यहाँ एक ही र के शुद्ध गान्धार और चतुश्रुतिक ऋषभ और एक ही ग् के साधारण गान्धार और षट्श्रुतिक ऋषभ, ये दो-दो नाम दीख पड़ते हैं। इसी प्रकार उत्तरांगमें भी ध के शुद्ध निषाद और चतुश्रुतिक धैवत और न् के कैशिकी निषाद और षट्श्रुतिक धैवत, ये दो-दो नाम हैं।

कहीं चतु:श्रुतिक ऋषभ और चतुःश्रुतिक धैवतको ही पञ्चश्रुतिक ऋषभ और पञ्चश्रुतिक धैवत कहा गया है।

इन उदाहरणोंसे यह स्पष्ट है कि पूर्वांगमे ऋषभ और गान्धार नामक स्वरोंका होना आवश्यक है, इस नियमको पालन करनेके लिए जिस र को कनकागीमें शुद्ध गान्धार कहा है उसीको नटभैरवीमे चतुःश्रुतिक ऋषभ माना है। वैसे ही एक ही ग् नटभैरवीमे साधारण गान्धार और यागप्रियामे षट्श्रुति-ऋषभ है।

हिन्दुस्तानी पद्धतिमें केवल नामका परिवर्त्तन नहीं किया गया है। यहॉ इस नियमका सम्बन्ध अन्तरालसे है। अन्तरालके शब्दमे इस नियमको इस रूपमें रख सकते हैं कि जिन दो स्वरोंके बीचका अन्तराल एक अर्धस्वर अर्थात् १६/१५ या २८ सेवर्टसे कम हो उनमेसे एक ही का प्रयोग मेलमे हो सकता है। सारिणी ५ देखनेसे पता चलता है कि र-र् अन्तराल २३ सेवर्टका और ग्–ग १८ सेवर्टका है। अर्थात्—
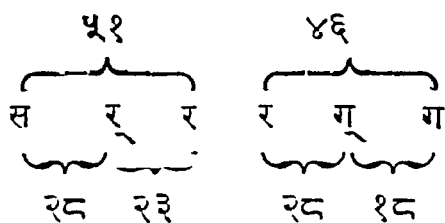
इसलिए हिन्दुस्तानी मेलमे स–र् और र–ग् का, तथा प–ध् और ध–न् का प्रयोग हो सकता है। पर र्–र, ग्–ग, ध्–ध और न्–न वर्जित हैं। केवल नाम बदल देनेसे ही अन्तरालका मान नहीं बदल जाता। अर्धस्वर या २८ सेवर्टसे छोटा अन्तराल संगीतोपयोगी नहीं है यह एक बड़ा ही व्यापक नियम है। हेल्महोज़ लिखते हैं—"यूरोपीय राष्ट्रोंने यूनानी प्रथाका अनुकरण करके अर्धस्वर १६/१५ को सीमा मान लिया है। ग् (६/५) [=३१६ सेंट] और ग (५/४) [=३८६ सेन्ट] तथा ध् (८/५) [=८१४ सेन्ट ध] और (५/३) [=८८४ सेंट] का अंतराल प्राकृतिक ग्राममें अपेक्षाकृत छोटा है क्योंकि यह २५/२४ [= ७० सेन्ट] है; इसीलिए हम लोग एक ही

ग्राम में ग् और ग तथा ध् और ध का साथ-साथ प्रयोग नहीं करते।"[1] हिन्दुस्तानी संगीतमें जहाँ ग् और ग तथा न् और न का प्रयोग होता भी है वहाँ ग और न का आरोहीमें और ग् और न् का अवरोहीमें–एक साथ नहीं।

इससे यह सिद्ध है कि हिन्दुस्तानी संगीतमें र् र सा ग् ग के साथ-साथ प्रयोगके वर्जित होनेका कारण केवल 'सरगम' में उच्चारणकी सुविधा नहीं है। ऐसा होता तो यहाँ भी दक्षिणकी तरह र को गान्धार और ग् को ऋषभ नाम देकर काम चला लिया जाता। हिन्दुस्तानी संगीत में स्वर-विज्ञान और कलाकी दृष्टिसे इस नियमका पालन होता है।

१२७—(२) पूर्वांगका पूरा सवाद उत्तरागसे हो, इस नियमकी परम्परा भरतकी पद्धति है। भरतकी ओड़व जातियोंमें, जहाँ दो स्वर वर्जित हुए हैं वहाँ एक स्वर पूर्वांगका है तो दूसरा उसका पचम-संवादी उत्तरागका है; जैसे, स प, र ध या ग न (अनु० ८८)। हिन्दुस्तानी सगीतमें भी ओड़वत्वमें भरतके नियमका यथासम्भव पालन होता है। हिन्दुस्तानी पद्धतिमें भरतके नियमके क्षेत्रको थोड़ा बढा दिया गया है। भरत दोनों अंगोंमें केवल पचम-संवाद मानते हैं। पर हिन्दुस्तानी पद्धतिमें पूर्वांगके स्वरोंका व्यष्टिरूपसे उत्तरागके स्वरोंके साथ पचम और मध्यम दोनों प्रकारका सवाद हो सकता है। अर्थात् ग्राम या मेलमें कोई भी ऐसा स्वर नहीं रह सकता जिसका मध्यम या पचम-संवादी कोई दूसरा स्वर मेलमें न हो।

पूर्वांग और उत्तरागके सवादसे ग्रामके दोनों अगोंमें अनायास साम्य हो जाता है। अर्थात् उत्तरागका स्वर-प्रबन्ध ठीक वैसा ही होता है जैसा पूर्वांगका। इस साम्यको 'यमकत्व' कहेंगे। जहाँ पूर्वांगके प्रत्येक स्वरका पंचम-संवादी स्वर उत्तरागमें रहता है, वहाँ उत्तरांग पूर्वांगकी पुनरुक्ति मात्र होता है। ऐसा साम्य बहुत ही सरल होता है इसलिए इसे सरल

1. Helmholtz–Sensation of tones—pp272.

यमकत्व कहा जायगा। यह सरल यमकत्व विलावल, भैरव, भैरवी और काफीमें पाया जाता है। जहाँ पूर्वांग और उत्तरागमें मध्यम संवाद हो या मध्यम और पञ्चम-संवादका मिश्रण हो वहाँ भी यमकत्व होता है अवश्य, पर इतना सरल नहीं। इनके उदाहरण आगे दिये जायँगे। यहाँ यह विचार करना है कि हिन्दुस्तानी पद्धतिमे पूर्वांग और उत्तरांगके सवादको या इन दोनों अंगोंके यमकत्वको क्यों महत्त्व दिया गया है।

यह पहले बताया जा चुका है कि ग्राम्य संगीतका आदिरूप एक ही चतु संघाततक सीमित था। बादको यह ओड़व हो गया। अन्तमें कहीं, ओड़वमे दो स्वर और जोड़कर और कहीं निम्न चतु संघातमे वैसा ही एक उच्च चतु संघात जोड़कर संस्कारी संगीतका ग्राम तैयार हुआ। इसलिए पूर्वांग और उत्तरागमें सम्बन्ध होना स्वाभाविक है। ग्राम्य संगीतसे संस्कारी संगीतका विकास होनेके कारण रागका रस-भाव यथार्थमें एक ही चतुःसंघातमें प्रस्फुटित होता है। यदि पूर्वांगकी और उत्तरागकी रचनाएँ भिन्न-भिन्न हों तो ग्रामके दोनों अंगोंमे दो भिन्न-भिन्न रसोंका परिपाक होगा जिसका फल रस-भंग ही मानना पड़ेगा। प्राचीन यूनानी, अरबी और फ़ारसी पद्धतियोंमे भी एक ही चतु·संघात, स से म तक की रचना भिन्न-भिन्न विधियोंसे होती थी। उच्च चतुःसंघात (प से सं तक) निम्न चतु संघातकी ही पुनरुक्ति होता था। जैसे, यदि निम्न चतु संघात द्विस्वरक है तो उच्च चतु संघात भी द्विस्वरक होगा। निम्न चतु संघात अर्धस्वरक हो तो उच्च चतु संघात भी वैसा ही होगा। निम्न चतु संघात श्रुतिमूलक है तो उच्च चतु संघात भी श्रुति मूलक ही होगा (अनु० ६७)। ग्रामके दोनों अङ्गों या चतु संघातोंका ऐसा यमकत्व स्वाभाविक है और एकरसताके लिए आवश्यक है। इसलिए यदि संगीतको रस-प्रधान बनाये रखना हो तो पूर्वांग और उत्तरागके संवाद या यमकत्वके इस नियमका पालन करना आवश्यक है। यदि भैरवके पूर्वांगमे भैरवीका उत्तराग जोड़ दें तो इसमें संदेह नहीं कि ये दोनों अङ्ग दो भिन्न-भिन्न भाव पैदा करेंगे; क्योंकि

भैरवका अङ्ग अर्धस्वरक है और भैरवीका अग द्विस्वरक। उत्तरके रसिकोंको यह मेल रागमाला या रागसागर-सा जान पड़ेगा। पर रागसागर एक कौतूहलका विषय है, रस-परिपाकका साधन नहीं। दक्षिणमें वकुलाभरण ऐसा ही मेल हैं जिसका पूर्वांग तो भैरव है और उत्तराग भैरवी।

१२८—(३) इस तीसरे नियमका आधार वैज्ञानिक तथ्य है। पहले यह बताया जा चुका है कि (अनु० ८५) न-$\frac{१५}{८}$ एक अनिष्ट स्वर है जिसका षड्जसे बहुत दूरका सम्बन्ध है। इसलिए ग्राममे इसका स्थान मुख्यत प्रवेशक स्वरके रूपमें है। इसी तरह म′ ($\frac{४५}{३२}$) भी पञ्चमका प्रवेशक स्वर है। भारतीय पद्धतिमे इनकी स्वतन्त्र स्थिति भी है। पर ये दुर्बल स्वर माने जाते हैं क्योंकि अनिष्ट होनेसे तमूरेके स्वरितके साथ ध्वनि इन स्वरोंपर अधिक समयतक नहीं ठहर सकती। ग्राममें वे ही स्वर वली माने जा सकते हैं जिनका स्वरितसे आवर्त्तक सम्बन्ध है अर्थात् जो इष्ट हैं। इसीलिए किसी भी रागमें म′ या न वादी नहीं माना गया है। इसलिए म′ और न का प्रयोग प्रवेशक स्वरके रूपमें तो सदा हो सकता है, परन्तु मेलमें स्वतन्त्र स्वरके रूपमे ये तभी आ सकते हैं जब ये दूसरे किसी वली स्वर पर खड़े हो। जैसे, यदि मेलमे ग $\frac{५}{४}$ हो तो इसका पञ्चम-सवादी न -$\frac{१५}{८}$ और न का मध्यम सवादी म′ ($\frac{४५}{३२}$), इन दोनों स्वरोंका अधिकार वढ जाता है। वैसे ही यदि मेलमें र् हो तो र् का मध्यम-सवादी म′ और म′ का मध्यम-सवादी न, ये दोनों स्वर सार्थक हो जाते हैं। कोमल ऋषभ भी, अनिष्ट होनेसे, अवरोहीमें षड्जका, 'न' की तरह ही प्रवेशक स्वर होता है। इसपर भी ध्वनिका ठहराव नहीं होता। फिर भी र् वादी माना गया है। पर र् का वादित्व भी दुर्बल है। र् की इस दुर्बलताके कारण ही, म′ केवल र् पर खड़ा नही हो सकता। जहाँ म′ को ग का आधार न होकर र् का आधार हो वहाँ र् के लिए भो ध् का आधार आवश्यक है।

इस वैज्ञानिक विवेचनासे 'यह सिद्ध है कि ग या र् के अभावमें म′ और न, इन दो दुर्बल स्वरोंका सवाद मान्य नहीं है। म′ और न मेलमे दूसरे

स्वरोंके संवादी होकर ही रह सकते हैं, स्वयं वादी होकर नहीं। यदि म॑—न का जोड़ा ठाटमे स्वतन्त्र आवे तो इनमेसे एकको वादी मानना पड़ेगा। यह वैज्ञानिक दृष्टिसे ग्राह्य नहीं है। इसलिए इन दो स्वरोंमेसे किसी एकका वादी, जैसे र् या ग का ठाटमें अस्तित्व आवश्यक है।

१२६—हिन्दुस्तानी पद्धतिके इन तीन नियमोंकी विवेचनाके बाद मेल-रचनामें इनका उपयोग करना आवश्यक है। मेल-रचनाके (क), (ख) और (ग) नियमोंके उपयोगसे वेंकटमखीने ७२ मेलकर्त्ताओंका निरूपण किया है जिन्हें परिशिष्ट १ क में कोष्टबद्ध दे दिया गया है। इनकी रचना-विधि भी बताई जा चुकी है (अनु० १०६)। अब इन ७२ मेलकर्त्ताओंमें यदि हिन्दुस्तानी पद्धतिके नियम (१) का उपयोग करे तो क्रमश 'र् र' और 'ग् ग' के प्रयोगके कारण परिशिष्ट १ क के चक्र १ और चक्र ६ पूरे-के-पूरे लुप्त हो जाते हैं। यह लोप केवल पूर्वांगके कारण हुआ। यदि उत्तरागका विचार करे तो शेष चार चक्रोंमे, 'ध ध्' और 'न् न' के प्रयोगके कारण, नीचे दिये हुए मेलोंका भी निराकरण हो जाता है·—

चक्र २—७ और ४३; १२ और ४८।
चक्र ३—१३ और ४६; १८ और ५४।
चक्र ४—१६ और ५५; २४ और ६०।
चक्र ५—२५ और ६१; ३० और ६६।

इस प्रकार, सब मिलाकर इन ४० मेलोंका हिन्दुस्तानी पद्धतिमे कोई स्थान नहीं है। रामस्वामीने इसी पहले नियमको मानकर शेष ३२ मेलोके आधारपर 'लघु मेलकर्त्ता' का निरूपण किया है। यह परिशिष्ट १ ख में कोष्टबद्ध दिया गया है।

अब इन शेष ३२ मेलोमे नियम (२) को लगाना है। परिशिष्ट १ (ख) के ऐसे मेलोका विवरण नीचे दिया जाता है जिनके कोई-न-कोई स्वर संवादहीन हैं—

सारिणी १७

अंक	मेल-क्रमाक	मेल-संज्ञा	संवादहीन स्वर
१	२	धेनुका	न
२	३	नाटकप्रिया	र्, ध
३	१६	षड्विधमार्गनी	ध
४	४	कोकिलप्रिया	र्, ग्, ध, न
५	२०	स्वर्णांगी	ग्, ध
६	५	वकुलाभरण	ग
७	२१	नामनरायणी	ग
८	७	चक्रवाक	र्
९	२३	रामप्रिया	न्
१०	८	सूर्यकान्त	र्
११	२५	षण्मुखप्रिया	म'
१२	१०	गिर्वाणी	न
१३	२७	हेमवती	म'
१४	१२	गौरीमनोहारी	ग्, न
१५	२८	धर्मवती	ग्
१६	१३	चारुकेशी	ग, ध्
१७	२६	ऋषभप्रिया	ग, म', ध्, न्
१८	१४	सरसागी	ध्
१९	३०	लतागी	ध्
२०	३१	वाचस्पति	म', न्

इस प्रकार ३२ मेलोंमेंसे हिन्दुस्तानी पद्धतिके नियम २ के अनुसार इन २० विसंवादी मेलोंको निकाल देनेपर १२ संवादी मेल शेष रह जाते हैं।

इन शेष १२ मेलोंमे (१) भावप्रिया और (२) सिंहेन्द्रमध्या, ये दो मेल हैं जिनके स्वर-संस्थान नीचे दिये जाते है.—

(१) भावप्रिया १७ (परिशिष्ट १ ख)—

स र्‌ ग्‌ म′ प ध्‌ न्‌ सं।

(२) सिंहेन्द्रमध्या २६ (परिशिष्ट १ ख)—

स र ग्‌ म′ प ध्‌ न सं।

भावप्रियामें स्वर-संवाद स–प, र्‌–म′, ग्‌–ध्‌, और ग्‌–न्‌ है। सिंहेन्द्रमध्यामे स–प, र–प, ग्‌–ध्‌ और म′–न का संवाद है।

पर हिन्दुस्तानी पद्धतिके तीसरे नियमके अनुसार म′ के साथ न का होना आवश्यक है। जो भावप्रियामें नहीं है। फिर जहाँ म′–न युग्म हो वहाॅ र्‌ या ग मेंसे एकका होना भी आवश्यक है। सिंहेन्द्र-मध्यामें म′–न युग्म तो है पर न तो 'र्‌' है और न 'ग'। इसलिए तीसरे नियमके अनुसार इन दोनो मेलोंका निराकरण हो जाता है।

इस प्रकार शेष १२ मेलोंमेंसे भावप्रिया और सिंहेन्द्रमध्याको निकाल देने पर १० ही मेल रह जाते हैं जो पूरी तरह संवादी कहे जा सकते हैं। ये १० मेल वे ही हैं जो पीछे दिये जा चुके हैं (अनु० १२४)। इन्हीं १० मेलोको भातखण्डेने, हिन्दुस्तानी रागोंके स्वर-विन्यासकी परीक्षा करके ग्रहण किया है। पर ऊपरके विवरणसे यह सिद्ध होता है कि विज्ञान और कलाके सिद्धान्तोपर बने हुए हिन्दुस्तानी पद्धतिके नियमोंकी दृष्टिसे यही १० मेल ग्रहण किये जा सकते हैं।

१३०—अब इन दस संवादी मेलोंके यमकत्वपर ध्यान देना आवश्यक है। संवादकी दृष्टिसे ये दस ठाट तीन भागोंमे विभक्त किये जा सकते

हैं—(१) पञ्चम-संवादी ठाट (२) मध्यम-सवादी ठाट और (३) पंचम-मध्यम या मिश्र-सवादी ठाट। पचम-संवादी ठाटोंमें पूर्वांगके प्रत्येक स्वरका उत्तरागके किसी स्वरके साथ सीधा पञ्चम-सवाद होता है। इस वर्गमें (१) विलावल (२) काफी (३) भैरव और (४) भैरवी हैं। मध्यम-सवादी-ठाटोंमें पूर्वांगके प्रत्येक स्वरका उत्तरागके स्वरके साथ मध्यम-सवाद होता है। इस वर्गमे (५) खम्माज और (६) आसावरी हैं। मिश्र-सवादी-ठाटोंमें पूर्वांगके किसी स्वरका तो उत्तरागके स्वरके साथ पञ्चम-सवाद होता है और किसीका मध्यम-सवाद। इस वर्गमें (७) टोड़ी (८) यमन (९) पूर्वी और (१०) मारवा हैं। इनमेंसे प्रत्येकका अग-विश्लेपण नीचे दिया जाता है जिससे इनका यमकत्व प्रत्यक्ष होगा—

१—पचम-सवादी— पूर्वांग उत्तराग

(१) विलावल—[1] स १ र १ ग ½ म १ प १ ध १ न ½ स
पू. उ.

(२) काफी— स १ र ½ ग् १ म १ प १ ध ½ न् १ सं
पू उ.

(३) भैरव— सं ½ र् १½ ग ½ म १ प ½ ध १½ न½ स
पू. उ.

(४) भैरवी— स ½ र् १ ग् १ म १ प ½ ध् १ न् १ सं

इनके दोनों अगोंके बीच एक स्वरका व्यवधान है इसलिए इन्हें वियुक्ताग (विश्लिष्टाग) मेल कहेंगे। दोनों अगोंके अलग हो जानेसे इनके यमकको भी 'भिन्न यमक' कहेंगे।

१—यहाँ १ अंक एक स्वरके अंतरालके लिए और ½ अर्धस्वरके अंतरालके लिए प्रयुक्त हुआ है।

२—मध्यम-संवादी—

पू. उ.

(५) खम्माज— स १ र १ ग ½ म १ प १ ध ½ न् सं

पू. उ.

(६) आसावरी— स १ र ½ ग् १ म १ प ½ ध् १ न् सं

इनके दोनों अङ्ग मध्यम पर आपसमे मिल गये हैं इसलिए इन्हें युक्ताग (शिलष्टाग) कहेंगे और इनके यमकको 'बिन्दु-यमक'।

३—मिश्र-संवादी—

पू. उ.

(७) टोड़ी--स र् ग् १½ म' ½ प ½ ध् १½ न ½ सं ½ रं्

पू. उ.

(८) यमन— स र १ ग १ म' ½ प १ ध १ न ½ स

पू. उ.

(९) पूर्वी— ऩ ½ स ½ र् १½ ग १ म' ½ प ½ ध् १½ न सं

प.

—१½—

(१०) मारवा— ऩ (स) र् १½ ग १ म' (प)।ध १ न

—१—

उ.

इन चार मेलोंका यमकत्व पञ्चम और मध्यम-संवादका मिश्र होनेसे सरल नही है। इनमें यमकका क्षेत्र खिसक गया है। इसलिए इस

यमकको 'अपसृत यमक' कहा जायगा। यह अपसारण म' वाले मेलोंमें ही दीख पड़ता है। पर अपसृत होनेपर भी टोड़ी और यमनमें बिन्दु-यमक, और पूर्वीमें भिन्न यमक दीख पड़ता है। यह तो स्पष्ट ही है कि जहाँ दोनों अंगोंमें पूर्ण पंचम-संवाद रहता है वहाँ वियुक्तांग भिन्न यमक होता है और जहाँ मध्यम-संवाद रहता है वहाँ युक्तांग बिन्दु-यमक। टोड़ीमें स—प और र्—ध् पंचक-संवादी है और ग्—ध्, म्—न मध्यम संवादी। इसलिए स—प और र्—ध् का उलटा प—सं और ध्—रं लेनेसे ग से ग तक पूर्ण-मध्यम-संवाद स्थापित हो जाता है और इस प्रकार यमक ग् पर खिसक जाता है। ऐसे ही यमनमें स को छोड़कर सं ले लेनेपर यमक र पर चला जाता है। पूर्वीमें म'—न ही एक मध्यम-संवादी है। इसलिए मध्य न के बदले मंद्र न लेनेसे ऩ—म' भी पंचम-संवादी हो जाता है और ऩ से न तक पूर्ण पंचम-संवाद स्थापित होता है। इस तरह टोड़ी और यमनमें तो बिन्दु-यमक और पूर्वीमें भिन्न यमक पाया जाता है। इस यमक भावकी सिद्धिके लिए ही पूर्वी रागके मुख्य तानोंमें 'ऩ, स र् ग' माना जाता है।

मारवाका यमक और ठाटोंकी तरह सरल नहीं है। इस मेलके संवादी होनेमें कोई सन्देह नहीं। इसमें स—प तो पंचम-संवादी है और र्—म', ग—ध और म'—न मध्यम संवादी हैं। म'—न का संवाद यहाँ सिंहेन्द्रमध्याकी तरह स्वतन्त्र नहीं है। क्योंकि निषाद गान्धारके आधारपर है। ग→न→म'→ र्, इस क्रमसे इसके दुर्बल स्वरोंकी बली स्वर गान्धारसे पुष्टि होती है। फिर भी इसके पूर्वांग और उत्तरांगमें यमकत्व स्पष्ट नहीं है। पर एक युक्तिसे इसमें यमककी सृष्टि होती है अर्थात् स और प को लोप कर दिया जाय और यमकका क्षेत्र मन्द्र न पर लाया जाय तो यमकत्व प्रस्फुटित हो जाता है। अब ऩ से म' तक पूर्वांग और ग से न तक उत्तरांगका अधिकार होगा। पर ये दोनों अंग एक दूसरेमें घुसे हुए हैं इसलिए इन्हें 'प्रविष्टांग' कहेंगे और दोनों अंगोंके यमकको 'वक्र यमक' कहेंगे। मारवाके ऊपर दिये हुए विश्लेषणमें यह वक्रयमक दिखाया गया है।

मारवा ठाटमें वक्रयमककी धारणा स्थूल दृष्टिसे कष्ट-कल्पना-सी जान पड़ती है। पर वात ऐसी नहीं है। यह धारणा व्यवहारसे पुष्ट होती है। यह एक महत्त्वकी वात है कि मारवा ठाटके मुख्य-मुख्य रागोंमें प वर्जित है; जैसे, मारवा, पूरिया, ललित, पंचम सोहनी आदिमें। कुछ अप्रसिद्ध रागोंमें प का प्रयोग होता है पर वह दुर्वल माना जाता है। इस ठाटके मुख्य राग पूरियाका आरोही देखनेसे पता चलता है कि यह मारवाके ऊपर वताये हुए वक्र यमकके अनुरूप ही होता है। जैसे—

ऩ र॒ ग म॑ ध न र॒ं सं

कभी 'ऩ र॒ स, ग' भी आता है। पूरिया, मारवा, ललित आदि रागोंमें 'ऩ र॒ स,' 'ऩ र॒ ग' और 'न र॒ं न ध न' मुख्य तान माने जाते हैं। 'हिन्दुस्तानी संगीत प्रवेशिका' के लेखक मुरारीप्रसादका कथन है—"आज लोग ऐसा कहते हैं कि मारवामें 'षड्ज' सुर एक दम नहीं है।"[१] जो हो षड्जके स्वरित होने से, उसे विल्कुल तो नहीं छोड़ा जा सकता पर उसकी अप्रधानता स्पष्ट है। इसका अंतरा भी प्राय. 'ग म॑ ध' टुकड़ेसे शुरू होता है जो 'वक्रयमक' का द्योतक है।[२] इन उदाहरणोंसे यह सिद्ध है कि मारवाके ऊपर दिये हुए अंग-विश्लेषण और वक्रयमकके निरूपणका आधार प्रचलित प्रयोग है। इसके साथ-ही-साथ यह भी सिद्ध होता है कि हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धतिमें दो अंगोंके यमककी अनिवार्यताको कितना महत्त्व दिया गया है। इस पद्धतिको केवल पूर्वांग और उत्तरांगके संवादसे ही संतोष नहीं होता। इसका ध्येय तो ग्राम या मेलके यमकत्वके आधारपर रागको प्रस्फुटित करना है। अंग-संवादकी आकांक्षा इसी यमकत्वके लिए है।

१—हिन्दुस्तानी संगीत प्रवेशिका—भाग २ पृ० ९८।

२—आधुनिक हिन्दुस्तानी पद्धतिमें स्वरित स की प्रधानता होने पर भी यह मारवा मेल भरतके स-प वर्जित ओड़व जाति का विलक्षण उदाहरण है।

संयुक्ताग और वियुक्तागमें केवल क्षेत्रका भेद है। यदि मेलको मध्य-सप्तकके दोनों ओर बढ़ाया जाय तो यह दीख पड़ेगा कि जहाँ मध्य-सप्तकमें वियुक्ताग है वहाँ इसके दोनों ओर तार और मन्द्रमें संयुक्ताग होगा और जहाँ मध्यमें युक्ताग है वहाँ तार और मन्द्रमें वियुक्ताग होगा। युक्ताग और वियुक्ताग एक-के-बाद-एक आते ही रहेंगे, चाहे मेलको जितना भी बढाया जाय; जैसे—

वियुक्ताग युक्ताग वियुक्ताग युक्ताग

१. स र ग म प ध न सं र गं म पं ध न सं रं ग मं
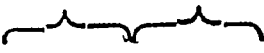
युक्ताग वियुक्ताग युक्ताग

२. स र ग् म प ध् न् सं रं गं् मं प ध् न् सं रं ग् मं

तात्पर्य यह कि किसी मेलमें एक बार यमक बन जानेपर यह कभी टूटता नहीं चाहे मेलका कितना ही विस्तार हो। हिन्दुस्तानी संगीतका एक चतु संघात ही या एक अग ही इकाई है, जो बार-बार दोहराया जाता है। इसी एक कड़ीसे ग्रामकी लंबी साँकल बनी है। दाक्षिणात्य पद्धतिकी इकाई या कड़ी स से सं तक पूरा सप्तक है। इसीलिए हिन्दुस्तानी पद्धतिमें सप्तकके भीतर भी यमक चाहिए जो दाक्षिणात्य पद्धतिके लिए आवश्यक नहीं है। इस आभ्यन्तरिक यमकके कारण ही राग-भाव और रसकी एकता बनी रहती है।

यहाँ यह बता देना भी आवश्यक है कि एक ठाटमें एक ही प्रकारका यमक होना आवश्यक नहीं है। किसी-किसी ठाटमें एकसे अधिक यमक भी हो सकते हैं। जैसे, अगर भैरवी ठाटको देखा जाय तो पता चलेगा कि इसके दोनों अंगोंमें एक तो शुद्ध पंचम-संवाद है; दूसरा मिश्र-संवाद है। अर्थात् स-म, ग्-ध्, म-न् और प-सं में तो मध्यम-सवाद है

और र्-ध् मे पंचम-संवाद। इस मिश्र-संवादके कारण भैरवी ठाटमे 'अपसृत यमक' भी होगा। जैसे—

भैरवी रागकी गतिसे पता चलता है कि इस अपसृत यमकका उपयोग इस राग के अंतरामे होता है।

ऊपरके विचारोंसे हिन्दुस्तानी सगीतमे 'यमक भाव' का अधिकार सिद्ध होता है। यह इस पद्धतिकी विशेषता है। इस यमकके सिद्धान्तपर प्रत्येक रागका विश्लेषण किया जाय तो रागोंकी प्रकृतिका पता लगाया जा सकता है। पर यह एक स्वतंत्र विषय है। यहाँ तो केवल सिद्धान्तका निरूपण करना ही लक्ष्य है।

१३१—प्राचीन कालसे ही रागोंके विभागको एक विशेष प्रथा प्रचलित है जिसके अनुसार राग तीन वर्गोंमे विभक्त किये जाते हैं—(१) शुद्ध, (२) छायालग, सालंक या सालग और (३) संकीर्ण या मिश्र। भरतके जाति-विभागमे भी इसका संकेत मिलता हैं। मातंग और शाङ्गदेवने भी इसकी चर्चा की है। शुद्ध वे राग समझे जाते हैं जो अपने शुद्ध रूपमे हों। छायालगमे दूसरे रागकी भी छाया होती है। संकीर्ण शुद्ध और छायालगका मेल है। प्राचीन रागोंका रूप अज्ञात होनेसे यह वर्गीकरण भी दुर्बोध है। पर इसका प्रसंग आधुनिक ग्रन्थोमे भी पाया जाता है। अतिया वेगम इसके विषयमे लिखती है[१]—'शुद्ध उन रागोंका नाम है जिनके स्वर अपनी मौलिक शुद्धतामे चले आ रहे हैं—समय या व्यक्तिके व्यभिचारसे जिनमें विकृति नही होने पाई है; जैसे, ६ राग (पुरुष राग) और कुछ मुख्य रागनियाँ (स्त्री राग)।

१—'The music of India' by Atia Begum Fyzee Rahamin.

सालक वे राग है जिनमें दूसरे रागोंकी छाया है। ऐसे राग वहुतसे हैं।

सकीर्ण वे राग हैं जो या तो दो शुद्ध रागों या पाँच या छ रागनियोंके मेलसे बने हों। इनकी संख्या बहुत है।

महासालंक वे राग हैं जो सालक और संकीर्णके मेलसे बने हों। इनकी संख्याका कोई अंत नहीं।" कुछ ग्रन्थोंमें 'महासालंक' की जगह 'महा संकीर्ण' आया है।

स्ट्रैंगवेज़का मत है कि जिन मेलोंके दोनों अगोंमें यमक होता है उन्हें शुद्ध कहा जाता है; जिनमे यमक नहीं होता ऐसे विषम मेलोंको 'सकीर्ण' या 'मिश्र' कहते हैं। 'छायालग उन मेलोके लिए आता है जिनमें तीव्र न को कोमल या कोमल न को तीव्र कर दिया जाता है। ऐसा जान पड़ता है कि अब हिन्दुस्तानमें छायालगका व्यवहार आकस्मिक न् और म' दोनोंके लिए होता है। इसके सरल उदाहरण हैं झिंझौटी (न्) और विहाग (म') इनमें न् और म' अधिक स्वर नहीं, वैकल्पिक हैं। यह नियम दूसरे स्वरोंमें भी लगाया जाता है; जैसे देसमे ग्।'

उनकी यह भी धारणा है कि 'ये तीनों भेद भरतको ज्ञात थे यद्यपि उन्होंने इनके नाम दूसरे ही दिये हैं। विषम चतु संघातोंके मिश्रको वे जाति-साधारण कहते हैं।'

स्ट्रैंग्वेज़की यही व्याख्या यथार्थ मालूम पड़ती है। जो हो, इस व्याख्याको यदि स्वीकार किया जाय तो वर्गीकरणके आधारपर उत्तरीय और दाक्षिणात्य पद्धतिका व्यवधान मिट जाता है और दोनोंमें एकता स्थापित हो जाती है। फिर इस वर्गीकरणका प्रसंग दोनों ही पद्धतियोंके आधुनिक ग्रन्थोंमें भी पाया जाता है।

स्ट्रैंग्वेजके मतानुसार सरल शब्दोंमें (१) यमक-मेलको शुद्ध,

(२) विषम मेलको संकीर्ण और (३) दोनों गाधार, दोनों निषाद आदिवाले मेलको छायालग कहेंगे।

इस परिभाषाके अनुसार वेंकटमखीके ७२ मेलोंका विभाग इस प्रकार होगा—

(१) शुद्ध—भातखण्डेके १० हिन्दुस्तानी मेल।

(२) संकीर्ण—रामस्वामीके ३२ मेलोंमेंसे शेष २२ मेल (परि० १ ख)।

(३) छायलग—वेंकटमखीके ७२ मेलोंमें से शेष ४० मेल (परि० १क)।

उत्तरीय और दाक्षिणात्य संगीतके इस सम्मिश्रणके उद्देश्यसे स्ट्रैंगवेज़की परिभाषाके अनुसार रागोंके शुद्ध, संकीर्ण और छायालग भेदको महत्त्व देना आवश्यक है।

[घ] वादी-संवादी

१३२—मेलगत यमकके साथ रागके वादी-संवादीका घनिष्ट संबन्ध है। भरतकी पद्धतिमें वादी-संवादी अनुवादी-विवादी, ये स्वरोंके पारस्परिक सम्बन्ध माने जाते थे। जातिके प्रधान या जीवस्वरको अंश कहा जाता था। अब वादी-संवादी आदि रागकी ही उपाधियाँ माने जाते हैं। रागका जो मुख्य या जीवस्वर होता है उसे अब अंश न कहकर वादी कहते हैं। इस वादीपर ही रागकी प्रकृति निर्भर है। दो राग एक ही ठाटके हों, दोनोंके स्वर समान हों, जाति (औड़व, षाड़व या सम्पूर्ण) एक हो; फिर भी वादी-भेदसे दोनों रागोंकी प्रकृतियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। जैसे, भूपाली और देशकारके स्वर-प्रबन्ध बिलकुल एकसे हैं। दोनो ही (म न वर्जित) औड़व जातिके हैं। दोनों ही का आरोही-अवरोही

——→

स र ग प ध सं है। पर भूपालीका वादी गान्धार है और

←——

देशकारका धैवत। इस वादी-भेदसे ही दोनोंकी प्रकृतिमें स्पष्ट अंतर दीख पड़ता है। इसी प्रकार पूरिया—मारवा, रेवा—विभास आदिमें जो

अतर है वह वादीके कारण ही है। वादीसे ही रागोंमे व्यक्तित्व आता है उसका रूप निखरता है। चतुर गवैया वादीको आलापचारीका केन्द्र बनाता है। इसीलिए आलापमे रागका सच्चा रूप खिलता है। रागके दोनों अंगोंमेंसे एक अगमें वादी स्वर निश्चित हो जानेपर दूसरे अगमे इस वादीका मध्यम या पञ्चम अनायास सवादी स्वर निश्चित हो जाता है। दोनों यमक-अगोंमेंसे एकका केन्द्र वादी स्वर और दूसरेका संवादीस्वर होता है। इस प्रकार वादी और सवादी सप्तकके दोनों अगोंको जोड़ते हैं। दोनों अगोंके यमकत्वके साथ-साथ दोनो केन्द्रोंका सवाद रागकी दृष्टता और एकरसताके लिए बड़ा महत्त्व रखता है। एक अंगके वादी स्वरसे जब गवैया दूसरे अगके सवादी स्वरपर जाता है तो रागकी प्रकृति ज्यो-की-त्यों बनी रहती; भावमें कोई बाधा नहीं पड़ती।

१३३—वादी और सवादीका पारस्परिक अन्तराल $\frac{३}{२}$ या $\frac{४}{३}$ होता है। इनके युग्म स-म, स-प; र-प, र-ध; ग-ध, ग-न; ग्-ध्, ग-न्; र्-ध्, हैं। सारिणी ५ को देखनेसे पता चलेगा कि इन युग्मोंमेंसे प्रत्येकका अन्तराल $\frac{४}{३}$ या $\frac{३}{२}$ है। मध्यम अंतराल तो पचमका ही पलटा है क्योंकि जहाँ र-प, ग-ध और ग्-ध् का अतराल $\frac{४}{३}$ है वहाँ प़-र, ध़-ग और ध़्-ग् का अतराल $\frac{३}{२}$ है। अर्थात् जहाँ दो स्वरोंमे मध्यम सवाद हो वहाँ उपरले स्वरको एक सप्तक उतार देनेसे पचम-सवाद हो जाता है और जहाँ पचम-सवाद हो वहाँ निचले स्वरको एक सप्तक चढा देनेपर मध्यम-संवाद हो जाता है।

यह बताया जा चुका है (अनु० ५५) कि $\frac{३}{२}$ या $\frac{४}{३}$ का अंतराल सबसे अधिक इष्ट होता है। इसीलिए इन अंतरालोंका पाश्चात्य सगीत-पद्धतिकी सहति-क्रियामे उपयोग होता है। पर ऐसे दो स्वरोंका सहतिमे जैसे साथ-साथ उच्चारण इष्ट होता है वैसे ही संक्रममें एक-के-बाद-एक उच्चारण भी इष्ट होता है। इसलिए सवादके नियमके अनुसार रागके वादी और सवादी स्वरोंके बीच सचार कलाकी दृष्टिसे जितना प्रिय है विज्ञानकी दृष्टिसे उतना ही पूर्ण है।

संवादके नियमका किसी-किसी रागमें व्यतिक्रम भी दीख पड़ता है; जैसे, मारवामे र्॒-ध संवाद और श्रीमे र्॒-प संवाद। ये दोनों ही अंतराल अनिष्ट हैं। यहाँ इन दो स्वरोंकी इष्टताके बदले इनकी गिनतीका विचार रखा गया है। उद्देश्य रागोंका भेद दिखाना है। जब पूरियामें ग-न संवाद है तो मारवामें र्॒-ध संवाद होनेपर ही यह पूरियासे भिन्न दिखाया जा सकता है। पर यह ध्यान देनेकी बात है कि प्रयोगमे इष्टताका संस्कार छूटने नहीं पाता। हिन्दुस्तानी-संगीत-पद्धति क्रमिक-पुस्तक-मालिकाकी तीसरी पुस्तकमें श्रीरागका आरोही 'स, र्॒ र्॒, स, र्॒, म॑ प, नि सा' और पकड़ 'स, र्॒ र्॒, स, प म॑ ग र्॒, ग र्॒, र्॒, स' दिया गया है। इनमे यह दीख पड़ता है कि र्॒ से म॑ पर और स से प पर प्लुत से पहुँचते हैं—र्॒-प प्लुतका प्रयोग नहीं है। वैसे ही मारवामें 'र्॒' के वादी होनेपर भी 'ग' की प्रधानता स्पष्ट है। इन उदाहरणोंसे यह सिद्ध है कि ऐसे अपवादोंसे हिन्दुस्तानी-संगीत-पद्धतिके संवाद-तत्त्वमें कोई व्याघात नहीं पड़ता।

१३४—हिन्दुस्तानी रागोंकी छान-बीन करनेपर पता चलता है कि वादीके रूपमे स, म और प का सबसे अधिक प्रयोग होता है। इनके बाद स्थान है शुद्ध गान्धार का। ग के बाद र और ध आते हैं। ग्॒, ध्॒ और र्॒ मे ध्॒ का प्रयोग सबसे अधिक होता है। पीछे दिये हुए (अनु० ५५) इष्ट स्वरोंको देखनेसे विदित होगा कि वादी स्वरोंमे इष्टता होना आवश्यक है। साथ-ही-साथ जिन स्वरोंमे जितनी अधिक इष्टता है वादी रूपमें उनका प्रयोग भी उतना ही अधिक होता है। तीव्र र इष्ट नहीं है। पर र की इष्टता तमूरेके पंचमपर निर्भर है। र के साथ प सवादी होता है। इसलिए बहुतसे रागोंमें जिसका र वादी है प की ही प्रधानता रहती है। केवल रातका राग होनेके कारण र को वादी मान लिया गया है। जिन रागोंमे र वादीके रूपमे पूरी तरह खिलता है जैसे जयजयवंती और दरबारीमे, उनमे मंद्र प के साथ र की

संगति वार-वार दिखाई जाती है। इन उदाहरणोंसे यह स्पष्ट है कि जहाँ र वादी होता है वहाँ यह षड्जका आधार छोड़कर मंद्र प पर अटकता है।

र्, ग् और ध् का वादित्व कुछ विलक्षण है। वादी स्वरोंका प्रस्फुटन मुख्यत दो क्रियाओंसे दिखाया जाता है। एक तो लीनकसे, अर्थात् वादी स्वरपर देरतक ध्वनिके ठहरावसे और दूसरी, वादी स्वरके वार-वार प्रयोगसे। **'प्रयोगे बहुलः स्वरः। वादी राजाऽत्र गीयते।'** र् और ध् में इस दूसरी क्रियाका प्रयोग होता है। र् अति अनिष्ट और ग्, ध् अल्प इष्ट स्वर हैं इसलिए ये लीनकमें स्वरितके साथ नहीं ठहर सकते। इन स्वरोंका गमकके साथ उच्चारण करके ध्वनि षड्ज और पंचमपर ही आकर ठहरती है। पर हिन्दुस्तानी संगीतके सामान्य व्यवहार और वैज्ञानिक विचारसे यह स्पष्ट है कि वादीका लीनकत्व प्रधान गुण है। इसलिए र्, ध् और ग् को गौणवादी मानना ही उचित है। म, प, ग आदिमें दोनों ही क्रियाएँ हो सकती हैं पर र्, ध् और ग् में एक ही क्रिया संभव है।

न और न् कभी वादी न होकर केवल संवादी होते हैं और म′ न तो वादी और न संवादी होता है। इसका कारण पहले वताया जा चुका है (अनु० १२८)। षड्जके संवंध से न ($\frac{१५}{८}$) अनिष्ट स्वर और म′ ($\frac{४५}{३२}$ या $\frac{६४}{४५}$) तो अति अनिष्ट है। फिर न का तार स से और म′ का प से अर्धस्वरका अंतराल है; इसलिए इनकी अनिष्टता अधिक वाधक हो जाती है। वैसे ही न् का तार स से एक स्वरका अंतराल होनेसे यह भी अनिष्ट है। इसलिए ये तीनों स्वर कभी भी वादी नहीं माने जाते। म′ तो ग्राम में सवसे अधिक अनिष्ट है इसलिए यह संवादी होनेका भी अधिकारी नहीं। सच तो यह है कि र् भी इसी कोटिके स्वरोंमें है। अति अनिष्ट स्वर होनेसे इसे भी वादी होनेका अधिकार नहीं है। अगर र् सच्चा वादी होता तो किसी-न-किसी राग में म′ ($\frac{४५}{३२}$) भी

संवादी अवश्य माना जाता। पर म' का कहीं संवादी न होना इस बातको सिद्ध करता है कि र् का वादित्व चाहे भ्रांत है या कल्पित।

ऊपर की विवेचनासे यह सिद्ध है कि स्वरोंका वादित्व उनकी इष्टतापर निर्भर है। इस दृष्टिसे स्वरोंका विभाग सारिणीमें दिया जाता है.—

सारिणी १८

स्वर	इष्टता	वादित्व	क्रिया
स, प, म	अति इष्ट	मुख्य वादी, संवादी	लीनक, बहुल
ग, ध	इष्ट		
र	पंचम-इष्ट		
ग्, ध्	अल्प-इष्ट	गौण वादी, संवादी	बहुल
न, न्	अनिष्ट	केवल संवादी	
र्	अति अनिष्ट	कल्पित वादी, संवादी	बहुल
म'	अति अति अनिष्ट	न वादी, न सवादी	

ऊपरके विचारसे यह विदित है कि जो ऐसा मानते हैं कि हिन्दुस्तानी संगीतके वादी-संवादी विचारका भरतके संवादसे कोई सम्बन्ध नहीं अर्थात् हिन्दुस्तानी-संगीतके वादी और संवादीमें चार या पाँच स्वरोंका अंतर होना ही यथेष्ट है, इनमे ठीक-ठीक ६ या १३ श्रुतियोंका अंतर होना आवश्यक नहीं, वे हिन्दुस्तानी-संगीतकी प्रकृतिको नहीं समझते। इस पद्धतिमे वादी-संवादीके निर्णयके लिए दो नियमोंका उपयोग आवश्यक है—(१) वादी स्वर षड्ज या

स्वरितके सम्बन्धसे इष्ट हों और (२) वादी और संवादी स्वरोंमें पंचम (३/२) या मध्यम (४/३) का सच्चा अंतराल हो। कुछ अपवादोंसे इन नियमोंका मूल्य नहीं घटता। इन नियमोंका आधार भरतकी परम्परा, रागोंका यमकत्व और एक-रसता तथा तमूरेकी सगति है। इसलिए इन्हें उपेक्षाकी दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। किसी रागके ठाटको पहले दो यमक अगोंमें बाँटना फिर एक अंगके किसी इष्ट स्वरको वादी निश्चित करना और तब दूसरे अंगमें वादीके पञ्चम (३/२) या मध्यम (४/३) स्वर को संवादी मानना—इसी प्रक्रियासे वादी-संवादी निर्धारित होता है।

१३५—गान्धार-सवाद—यह बताया जा चुका है कि ग ५/४ और ग़ (६/५) में भी इष्टता है। इसलिए पाश्चात्य संगीतमे स—प, स—म संवादकी तरह ही स—ग या स—ग़ संवाद भी माना जाता है। इसीसे सहतिके संघातोंमें गान्धारका भी समावेश होता है; जैसे 'स ग प' का गुरु-सघात और 'स ग़ प' का लघु संघात (अनु० ६२)। हिन्दुस्तानी-सगीतमें स—प, स—म सवादको कितना महत्त्व दिया गया है, इसकी चर्चा की जा चुकी है। पर इसमे गाधार-सवादका प्रयोग भी विशेषरूपसे होता है। बहुतेरे रागोंमे कुछ 'सगतियाँ' विशेष रुचिदायक मानी जाती हैं जो रागके परिचायक भी हैं। दो विशेष स्वरोंके एक-के-बाद-एक लगातार उच्चारणको 'सगति' कहते हैं। सगतिमें कम-से-कम एक स्वर का लघन होता है। इसलिए सगतिके दो स्वरोंमें कभी-कभी मध्यम (४/३) या पचम (३/२) का अतराल होता है; पर अधिक ग (५/४) या ग़ (६/५) का ही अतराल दीख पड़ता है। यह 'सगति' हिन्दुस्तानी संगीतकी विशेषताओंमेंसे एक है। यह कहा जाता है कि दाक्षिणात्य रागोंका विकास पग-पगके संचारसे होता है और उत्तरीय रागोंका विकास 'मंडूक-प्लुत' या लंघनसे। जहाँ भी प्लुत होता है वहाँ इष्ट अतरालोंका ही प्रयोग होता है। इसलिए हिन्दुस्तानी-संगीतकी 'संगति' मे गान्धार-संवादकी प्रधानता है। यह नीचेकी सारिणीमें दिये हुए कुछ उदाहरणोंसे स्पष्ट होगा।

सारिणी १६

राग	संगति	अंतराल
दरबारी	न्–प	$\frac{६}{५}$ (ग्)
श्यामकल्याण	म–र ($\frac{१०}{९}$)	$\frac{६}{५}$ (ग्)
मालश्री	ग–प	$\frac{६}{५}$ (ग्)
दुर्गा	ध–म, र–म	$\frac{५}{४}$ (ग), $\frac{६}{५}$ (ग्)
खंवावती	ध–म	$\frac{५}{४}$ (ग)
तिलंग	न्–प	$\frac{६}{५}$ (ग्)
रागेश्वरी	ध–म	$\frac{५}{४}$ (ग)
सोरठ	ध–म, म–र	$\frac{५}{४}$ (ग), $\frac{६}{५}$ (ग्)
जोगिया	ध्–म	$\frac{६}{५}$ (ग्)
धनाश्री	प–ग्	$\frac{५}{४}$ (ग)
हंसकिंकणी	प–ग	$\frac{६}{५}$ (ग्)

इस सारिणीमें मध्यम-संवादवाली या पंचम-संवादवाली स्वर-संगति नहीं दी गई है क्योंकि ऐसी संगतियोंकी इष्टता तो प्रत्यक्ष है। कुछ रागोंमें र-म या म-र संगतिका प्रयोग होता है। ऐसी संगतियोंमें ऋषभका मान $\frac{९}{८}$ न होकर $\frac{१०}{९}$ होना आवश्यक है; नहीं तो र–म प्युत अनिष्ट हो जायगा।

ऊपरके कुछ उदाहरणोंसे ही यह स्पष्ट है कि हिन्दुस्तानी रागोंकी मुख्य-मुख्य संगतियोंमें गांधार–संवादकी प्रधानता है।

१३६—विवादी—भरतकी पद्धतिमें जब दो स्वरोंके बीच दो श्रुति या अर्धस्वरका अंतर होता है तो वे परस्पर विवादी माने जाते हैं। हिन्दुस्तानी पद्धतिमें वादी-संवादीकी तरह ही विवादीका भी रागोंसे प्रयोग होता है। आधुनिक संगीतज्ञ प्राय: विवादीकी परिभाषा 'वर्ज्य स्वर' बताते हैं। इस

परिभाषाके अनुसार भरतके अर्धस्वरका बंधन नहीं रहता। जैसे, यमन ठाटके मालश्री रागमें र और ध वर्जित हैं जो क्रमश स और ग से और प और न से एक-एक स्वरके अंतरपर हैं।

पर 'वर्जित स्वर' से क्या तात्पर्य है? यदि १२ स्वरवाले अर्धस्वरक ग्रामको लें तो सम्पूर्ण रागोंमें भी ५ स्वर वर्जित मानने पड़ेंगे। षाड़व और ओड़वमें तो क्रमशः ६ और ७ वर्जित होंगे। यदि सात स्वरवाले ठाटको ले तो षाड़व और ओड़वमें क्रमश १ और २ स्वर वर्जित होंगे। सम्पूर्णमें कोई भी स्वर वर्जित न होगा। आधुनिक पद्धतिमें ठाटके प्रसगमे ही वर्जित स्वरका व्यवहार होता है। जब मालश्रीमे र और ध वर्जित कहा जाता है तो अभिप्राय यह होता है कि यमन ठाटके ७ स्वरोंमेंसे ये दो स्वर वर्जित हैं। यदि १२ स्वरोंका ध्यान होता तो र्, र, ग्, म, ध्, ध और न् ये सातो स्वर वर्जित समझे जाते। अब यदि 'विवादी' का अर्थ ठाटका 'वर्जित' स्वर माना जाय तो एक गड़बड़ी आ खड़ी होती है। कामोद यमन ठाटका सम्पूर्ण राग समझा जाता है। अर्थात् इसमें कोई स्वर वर्जित नहीं है। पर विधान यह है कि इस रागमें न् का धैवतके साथ 'विवादी' रूपमें प्रयोग होता है। यदि वर्जित और विवादीका अर्थ एक ही हो तो फिर यह न् विवादी कहाँसे आया? इसी तरह केदार ओड़व-षाड़व माना जाता है क्योंकि इसके आरोहमें र और ग वर्जित हैं और अवरोहमें ग दुर्बल या वर्जित है। पर इस रागमें भी विवादी रूपमें र या ग का प्रयोग न होकर धैवतके साथ न् का प्रयोग होता है। इन दृष्टान्तोंसे यह प्रकट होता है कि न तो लक्षणमें और न लक्ष्यमें 'विवादी' और 'वर्जित' पर्यायवाची शब्द हैं। ओड़व और षाड़व रागोंमें यदि वर्जित स्वरका प्रयोग हो तो राग भ्रष्ट हो जायगा; पर विवादी स्वरका थोड़ी मात्रामें कुशलतासे प्रयोग हो तो वह रक्तिदायक होता है। इस विचारसे 'वर्जित' स्वर ठाटके उस स्वरको कहेंगे जिनका रागमें कभी प्रयोग नहीं होता। अर्थात् जो उस ठाटका स्वर तो है जिससे राग निकला है

पर उस रागका स्वर नहीं है। 'विवादी' उसे कहेंगे जो रागके जनक ठाटके बाहरका स्वर है और जिसका अंतर रागके किसी बली स्वरसे अर्धस्वर या दो श्रुति है। 'वर्ज्यस्वर' असलमें 'मेलग्राह्य' पर 'रागवर्ज्य है और 'विवादीस्वर' 'मेलवर्ज्य' है। 'केदार' रागकी रचना जनकमेल यमनमें आरोहीमें र, ग और अवरोहीमें ग का लोप करके होती है। इसलिए ये वर्जित स्वर माने जायँगे। पर न्, जो जनकमेलके बाहरका स्वर है, विवादी माना जायगा। यह धैवतसे अर्धस्वरके अंतरपर है और इसका प्रयोग भी धैवतके साथ ही होता है। वर्जित स्वरका कभी प्रयोग नहीं होता। पर विवादीका द्विश्रुतिक स्वरके रूपमें कभी-कभी प्रयोग होता है। वर्जित स्वरका रागमें 'अभाव' है पर 'विवादी' का वादी और संवादीकी तरह ही रागमें भाव है।

नीचेकी सारिणीमें कुछ मुख्य-मुख्य रागोंके विवादी स्वर दिखाये जाते हैं—

सारिणी २०

राग	ठाट	विवादीस्वर	संगति	अंतराल
यमन	यमन	म	ग—म	$\frac{१६}{१५}$
हमीर केदार कामोद छायानट गौड़सारंग	यमन	न्	ध—न्	$\frac{१६}{१५}$
अल्हैया	विलावल	न्	ध—न्	$\frac{१६}{१५}$
देस	खम्माज	ग्	र—ग्	$\frac{१६}{१५}$

इस सारिणीमें म, न् और ग् विवादीके रूपमें आये हैं जिनका प्रयोग क्रमशः ग, ध और र के साथ ही होता है। ये प्रायः 'ग म ग', 'ध न् ध' 'र ग् र' तानके रूपमें ग म गके साथ आते हैं। इसीलिए इन विवादी स्वरोंका रागके लीनक स्वरोंके साथ ही प्रयोग होता है।

पर विवादीके प्रयोगमें भी संवादकी भावना लुप्त नहीं होती। म, न्‌ और ग्‌ अर्धस्वरक होनेसे क्रमश लीनक स्वर ग, ध और र के साथ तो विवादी हैं पर रागमें इनका संवादी स्वर भी अवश्य रहता है। यमनमें म का संवादी स, देसमें ग्‌ का संवादी न्‌ और अल्हैयामें न्‌ का सवादी म है। हमीर, केदार, कामोद, छायानट और गौड़-सारंग यमन ठाटके माने जाते हैं पर इनमें शुद्ध म की प्रधानता रहती है—म' का प्रयोग पचमके साथ प्रवेशकके रूपमें होता है। इसलिए इन रागोंमें भी विवादी न्‌ का संवादी शुद्ध म रागमें मौजूद है। पर यमनमें शुद्ध म के अभावसे न्‌ का प्रयोग विवादीके रूपमे नहीं होता।

'विवादी' की इस विवेचनासे यह सिद्ध है कि हिन्दुस्तानी संगीतमें वादी-सवादीकी तरह ही विवादीका भी सच्चे भरतके अर्थमें ही प्रयोग होता है। आधुनिक लक्षणकारोंने इसे 'वर्ज्य-स्वर' का पर्याय मानकर लक्ष्यकी परम्पराके साथ व्यर्थ ही अन्याय किया है। लक्ष्यमे रागके विवादी स्वरका अपने पड़ोसी किसी लीनक स्वरके साथ अर्धस्वर या दो श्रुतिका अतर होना आवश्यक है, साथ-ही-साथ उस विवादीका एक संवादी स्वर भी अवश्य होना चाहिए, नहीं तो वह रागमे खप नहीं सकता भरतके विवादीमें ये दोनों ही लक्षण पाये जाते हैं।

[च] श्रुति-प्रयोग

१३७—आधुनिक पाश्चात्य ग्रामकी तरह ही आधुनिक हिन्दुस्तानी ग्राम भी १२ राशियोंमें बँटा है। पर क्या ये १२ स्वर ध्रुव हैं या ये अपने स्थानसे विचलित भी होते हैं? यदि विचलित होते है तो किस अशमे? क्या भरतकी श्रुतियोंका प्रयोग अब भी प्रचलित है? या १२ स्वरोंके अतिरिक्त और स्वरोंका भी प्रयोग होता है? हिन्दुस्तानी रागोंकी सूक्ष्म रचना समझनेके लिए इन प्रश्नोंपर विचार करना आवश्यक है।

सात शुद्ध और पाँच विकृत—इन १२ स्वरोंको प्रधान मानकर भी हिन्दुस्तानी-सङ्गीत-पण्डित २२ श्रुतियोंकी प्रथा अभी तक चलाये जा रहे

हैं। श्रुतियोंके कारण एक-एक विकृत स्वरके कई-कई भेद हो जाते हैं। अहोबलकी पद्धतिमें र, ग, ध और न की विकृति उतार और चढ़ाव, दोनो ही दिशामे हुई है। इससे कई स्वरोंके दो-दो नाम पड़ गये हैं। आधुनिक हिन्दुस्तानी-पद्धतिमें र, ग, ध और न की विकृति केवल उतारकी ओर होती है और म की चढ़ावकी ओर। शुद्ध स्थानसे क्रमश एक-एक श्रुति उतारनेपर कोमल तीन प्रकारके होते हैं—कोमल, अतिकोमल और सहकार। वैसे-ही शुद्ध स्थानसे एक-एक श्रुति चढ़नेपर तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम होते हैं। पण्डित विष्णु दिगम्बरने 'सहकार' की जगह अति-अति कोमल माना है।

सारिणी २१

अंक	श्रुति	अहोबल	विष्णुदिगम्बर	असरेकर	असरेकर के राग
१	छन्दोवती	स	स	स	—
२	दयावती	पूर्व र	(अतिअ.को.र)	अतिकोमल र	भैरव
३	रंजनी	कोमल र	अतिकोमल र	कोमल र	भैरवी
४	रक्तिका	शुद्ध र (पूर्व ग)	कोमल र	शुद्ध र	विभास
५	रौद्री	कोमल ग (तीव्र र)	शुद्ध र	तीव्र र	यमनकल्या.
६	क्रोधा	शुद्ध ग (तीव्रतर र)	अतिकोमल ग	अतिकोमल ग	टोड़ी
७	वज्रिका	तीव्र ग	कोमल ग	कोमल ग	भैरवी
८	प्रसारिणी	तीव्रतर ग	शुद्ध ग	मध्य ग	मालकौस
९	प्रीति	तीव्रतम ग	×	तीव्र ग	यमनकल्या.
१०	मार्जनी	शुद्ध म (अ.तीव्रत.) ग	शुद्ध म	कोमल म	भैरवी
११	क्षिति	तीव्र म	तीव्र म	मध्य म	पूर्वी
१२	रक्ता	तीव्रतर म	तीव्रतर म	तीव्र म	यमनकल्या.
१३	सदीपनी	तीव्रतम म	तीव्रतम म	तीव्रतर म	पूरिया
१४	आलापिनी	शुद्ध प	शुद्ध प	शुद्ध प	—
१५	मदंती	पूर्व ध	×	अतिकोमल ध	भैरव
१६	रोहणी	कोमल ध	अतिकोमल ध	कोमल ध	भैरवी
१७	रम्या	शुद्ध ध (पूर्व न)	कोमल ध	शुद्ध ध	वि-भा.कौस
१८	उग्रा	कोमल न (तीव्र ध)	शुद्ध ध	तीव्र ध	यमनकल्या.
१९	क्षोभिणी	शुद्ध न (तीव्रतर ध)	अतिकोमल न	अतिकोमल न	गौड़ मलार
२०	तीव्रा	तीव्र न	कोमल न	कोमल न	भैरवी
२१	कुमुद्वती	तीव्रतर न	शुद्ध न	मध्य न	मालकौस
२२	मन्दा	तीव्रतम न	×	तीव्र न	यमनकल्या.

बाईस श्रुतियोंपर इन बाईस स्वरोंकी स्थापनासे ऐसा न समझना चाहिए कि ये ज्यों-की-त्यों भरत या शाङ्गदेवकी श्रुतियाँ हैं। यह बताया जा चुका है (अनु० १०१) कि ग्रामको २२ या २४ राशियोंमें विभक्त करनेकी अनेक विधियाँ हो सकती हैं; और प्रत्येक विधिसे भिन्न-भिन्न स्वर-क्रम तैयार होता है। चक्रिक प्रक्रियामें आरोही और अवरोही क्रमसे ग्राम २४ राशियोंमे विभक्त होता है और संक्रमिक प्रक्रियाके द्वारा २२ राशियोंमें। हिन्दुस्तानी-संगीतमें संक्रमिक प्रक्रियाका प्रयोग होता है। इसलिए २२ श्रुतियोंका मानना आवश्यक है। पर इन श्रुतियोंके मान भिन्न-भिन्न हो सकते हैं।

१३६—रागमें विकृतस्वरोंके अनेक भेदोंमेसे किसी एकका विकल्पसे प्रयोग होता है। जिन दो स्वरोंमें एक श्रुतिका अंतर हो, वे दोनों लगातार रागमें नहीं आते। पर गमकके रूपमें इनका प्रयोग हो सकता है। इस प्रकारका प्रयोग प्रायः सभी पूर्वी देशोंमे प्रचलित है। हेल्महोज़ने अपने एक मित्रका अनुभव बताया है कि मिश्रदेश (इजिप्ट) मे एक स्वरके चतुर्थांशका व्यवहार होता है। बहुतेरे तान एक श्रुतिके अंतरसे शुरू होकर शुद्ध स्वरपर ठहरते हैं। एलिस इसपर टिप्पणी लिखते हुए बताते हैं—"शायद यह क्रिया वैसी ही थी जैसी मैंने राजा रामपालसिंह (कालाकाँकर) को अपने सितारपर दिखाते हुए पाया। उन्होंने सुन्दरीपर तार दबाकर स्वर पैदा करनेमें सुन्दरीपर अंगुली खिसकाई और इस तरह तारको खींचकर और तारका खिंचाव बढ़ाकर स्वरको एक चौथाई ऊँचा कर दिया और तब तारको बिना छेड़े सीधाकर उसे अपने ठीक स्वरपर आनेको छोड़ दिया। तार जितनी दूर तक खींचा गया था उसे मैंने नाप लिया और तब फुर्सतमे मैंने अपने द्विभुजसे असली और चढ़ाये हुए स्वरोंकी आवृत्तियाँ नापीं जिनका अंतराल ४८ सेंट निकला।"[1] एक

1—Sensation of tones—Helmholtz (pp 265)

गुरुस्वर २०३·७ सेंट होता है इसलिए यह अंतराल लगभग एक स्वरका चौथाई हुआ। इस प्रकारकी क्रिया वीणा आदि तारके बाजोंमें प्राय देखनेमें आती है। पर यह निश्चय है कि जहाँ एक श्रुतिके अतरवाले स्वरका प्रयोग होता है वहाँ इसका मान निश्चित नहीं रह सकता।

१४०—दाक्षिणात्य पद्धतिके आधुनिक पण्डितोंने श्रुति-प्रयोगका विचार विस्तारके साथ किया है। यह तो सभी मानते हैं कि गमकमें श्रुतियोंका प्रयोग होता है। पर सुब्रह्मराय अय्यरका मत है कि दाक्षिणात्य गायकीमें 'राग-भाव' के लिए भिन्न-भिन्न श्रुतियोंपर स्थित स्वर काममें आते हैं। कोमल निषादवाले दो रागोंके भाव इसलिए भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं कि दोनोंके कोमल निषाद भिन्न-भिन्न श्रुतियोंपर हैं। अय्यरने वैज्ञानिक प्रयोग करके अपने विचार निश्चित किये हैं। उन्होंने सारिणी १४ में दिये हुए २२ संक्रमिक स्वरोंको माना है पर इनका कहना है कि "इसमें मुझे संदेह है कि प्रचलित संक्रम-सगीतमें स्वरितके जागरित रहनेपर ध्वनि कभी $\frac{२५६}{२४३}$, $\frac{३२}{२७}$, $\frac{८१}{६४}$, $\frac{२७}{२०}$, $\frac{४५}{३२}$, $\frac{६४}{४५}$, $\frac{१२८}{८१}$, $\frac{१६}{९}$, और $\frac{२४३}{१२८}$— इन जटिल भिन्नाकवाले स्वरोंपर सीधे पहुँचता है।"[1] इन्होंने दाक्षिणात्य रागोंका विचार करते हुए एक-एक रागके अनेक स्वर-संदर्भ बताये हैं। उदाहरणमें माया-मालव गौड़ा (भैरव) को लें। इसके तीन भिन्न-भिन्न स्वर-सस्थान हो सकते हैं; जैसे—

स्वर—	स	र्	ग	म	प	ध्	न	सं
मान—(१)	१	$\frac{१६}{१५}$	$\frac{५}{४}$	$\frac{४}{३}$	$\frac{३}{२}$	$\frac{८}{५}$	$\frac{१५}{८}$	२
		$\frac{७७}{६४}$ (र्–ग)				$\frac{७५}{६४}$ (ध्–न)		

1. The Grammar South of Indian Music (PP. 31)

(२) १   २५/२४   ५/४   ४/३   ३/२   २५/१६   १५/८
(२५/२४ – ५/४ : ६/५; २५/१६ – १५/८ : ६/५)

(३) १   १६/१५   ३२/२५   ४/३   ३/२   ८/५   ४८/२५   २
(१६/१५ – ३२/२५ : ६/५; ८/५ – ४८/२५ : ६/५)

इन प्रबन्धोंमेसे पहला १२ राशियोंवाले ग्रामके सामान्य स्वरोंसे बना है। पर इसमें र्–ग अन्तराल (७५/६४) अनिष्ट है। यह इष्ट अंतराल (६/५) से लगभग दो कोमा या १० सेवर्ट छोटा है। इसलिए र्–ग अन्तरालको इष्ट बनानेके लिए चाहे र् को १० सेवर्ट उतारना होगा या ग को इतना ही चढ़ाना होगा। दूसरे प्रबन्धमे र् को उतारकर और तीसरेमे ग को चढ़ाकर र्–ग अन्तराल ६/५ बनाया गया है। इससे दूसरे में र् २५/२४ और तीसरेमे ग ३२/२५ हो जाता है। सुब्रह्मण्य अय्यरके मतानुसार द्रुत संचारमे ध्वनि निश्चय ही १६/१५ से ४/३ पर जाती है और तब २५/२४ के अंतरालसे उतरकर फिर म पर चढ़ती है। 'इसलिए ग असलमें म ग (४/३, ३२/२५) है।' अर्थात् गमकमें तीसरे प्रबन्धके ग ३२/२५ का व्यवहार होता है। पर उनके विचारमे दूसरा प्रबन्ध ही उचित और प्रचलित जान पड़ता है जिसमे र् १६/१५ और ग ३२/२५ का गमकमे प्रयोग होता है।

इसी तरह उन्होंने अनेक रागोंके वैकल्पिक स्वर-प्रबन्धपर विचार किया है जिससे यह भी पता चलता है कि एक ही रागमे स्वरके भिन्न-भिन्न उपभेदोंका प्रयोग होता है। जैसे दाक्षिणात्य हिंडोल (मालकौस) में न् ९/५ के प्रधान होनेपर भी कभी-कभी न् १६/९ और न्७ ७/४ काममे लाये जाते हैं।

सुब्रह्मण्य अय्यरके मतानुसार कुछ स्वरोंपर ध्वनिका ठहराव होता है जो लीनक स्वर माने जाते हैं। ऐसे स्वर इष्ट होते हैं और सरल भिन्नांकोंमें प्रकट किये जाते हैं। उनके मतानुसार ऐसे लीनक स्वरके मान, संज्ञा और राग जिनमे वे आते हैं, नीचेकी सारिणीमें दिये जाते हैं—

सारिणी २२

स्वर मान	संज्ञा	राग
१	षड्ज	स्वरित
१०/९	त्रिश्रुति र	दरबार और मध्यमावती, जब ग वर्ज्य हो
९/८	चतु श्रुति र	खरहरप्रिया
(८/७)	.. ..	
७/६	मध्यम गान्धार	भैरवी, आनन्दभैरवी
६/५	साधारण गान्धार	रीतिगौड़ा
५/४	अन्तर्गत गान्धार	यदुकुलकाम्भोदी
(९/७)	.. ..	
४/३	शुद्ध मध्यम	
(११/८)	... .	
७/५	प्रति मध्यम	रामप्रिया
३/२	पंचम	
८/५	द्विश्रुति धैवत	परज
५/४	त्रिश्रुति धैवत	काम्भोदी
७/४	... ...	सुरति
९/५	कैशिकी निषाद	रीतिगौढ़ा
१५/८	काकली निषाद	शंकराभरण

इस सारिणीके ८/७, ९/७ और ११/८, इन तीन स्वरोंके विषयमें निश्चयके साथ नहीं कहा जा सकता कि इनका व्यवहार दाक्षिणात्य रागोंमे होता है या नहीं। पर सुब्रह्मण्य अय्यर ग ५/४ और म ४/३ के बीच एक लीनक गान्धार और इसी तरह न १५/८ और सं २ के बीच एक लीनक निषाद पाते हैं। उनका अनुमान है कि यह लीनक गान्धार ९/७ ही है।

१४१—दाक्षिणात्य संगीतके वैज्ञानिक समालोचक रामचन्द्रन ने भी कर्नाटकी रागोंका श्रुति-विश्लेषण किया है। उनके विचारमे भी श्रुतियोंका प्रयोग मुख्यत गमकमे ही होता है। ये कहते हैं कि—"रागके स्वरोंमे श्रुतियोंकी बहुलता रहती है। ......यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि प्रत्येक रागमे एक स्वर कई रूप ग्रहण करता है।......यह एक सामान्य प्रवृत्ति-सी है कि आरोहमें स्वरकी श्रुति चढ़ जाती और अवरोहमे उतर जाती है। ......किसी एक स्वरके प्रयोगमें गमकके कारण अनेक श्रुतियोंका ग्रहण होता है।[1]"

"शुद्ध मेल कनकागीको लें तो देखेंगे कि शुद्ध र के कम-से-कम दो मान होते हैं—एक १०/९ और दूसरा २५६/२४३। इसी तरह शुद्ध ध ८/५ और १२८/८१ का होता है[1]।"

इन्होंने एक प्रकारके 'स्वराभास' की भी चर्चा की है। जहाँ वीणा आदि तन्त्रोंमे म प म, न स न, ध न ध, स र स आदि द्रुत प्रयोग होता है वहाँ बीचवाले ऊँचे स्वरका पूरा उच्चारण नहीं होता—ध्वनि इसके पास पहुँचकर लौट आती है। इसलिए बीचवाले स्वरका आभासमात्र

---

1. The Ragas of Karnatic Music N. S. Ramchandran (pp. 49)

प्रतीत होता है। इन्होंने शंकराभरणमें स की आवृत्ति २५६ मानकर प्रयोग द्वारा निश्चित ऊँचे स्वरोंका मान बताया है; जैसे—

स र स, र ग र, ग म ग, म प म, प ध प
↓ ↓ ↓ ↓ ↓
२७६ ३०३ ३३७ ३७६ ४२५

ध न ध, न सं न
↓ ↓
४७४ ५०५

ऊपरके तानोंमें आनेवाले, बीचके स्वरोंका शुद्ध मान यह होना चाहिए —

र=२८८, ग=३२०, म=३४१, प=३८४, ध=४३२, न=४८०, सं=५१२।

अर्थात् इस क्रियाविशेषमें सभी स्वर उतर गये हैं—यहाँतक कि म, प और स भी च्युत हो गये हैं।

रामचन्द्रनने वैज्ञानिक उपकरणोंसे नापकर ऐसे अनेक स्वर निश्चित किये हैं जिनका व्यवहार, इनके मतानुसार दाक्षिणात्य-रागोंमे होता है। उन स्वरोंको भिन्नाकमें तारताके क्रमसे नीचे दिया जाता है —

१, २५/२४, २५६/२४३, १६/१५, २७/२५, २१८७/२०००, २५६/२२५, ६२५/५२६, १०/९, ९/८, ७२९/६४०, ७५/६४, ३२/२७, ६/५, १४४/१२५, २४३/२००, ५/४, ८१/६४, ३२०/२४३, २१८७/१६००, ४/३, २७/२०, ४०/२७, ४५/३२, ६४/४५, ३/२, ३६/२५, २५/१६, १२८/८१, ८/५, २४/१५, १२८/७५, ५/३, २७/१६, १६/९, ९/५, १५/८, २४३/१२८, ४८/२५, ५०/२७, २४३/१२८, २।

किन्तु, ऐसे जटिल स्वरोंकी खोज की जाय तो और भी अनेक निकल आएँगे। और ऐसी दशामें कोहलके इस मतको ही स्वीकार करना होगा कि —

"आनन्त्यं हि श्रुतीनां च सूचयन्ति विपश्चितः।
यथा ध्वनिविशेषाणाममानं गगनोदरे ॥"

जहाँतक गमकोंका सम्बन्ध है, श्रुतियोंका मान निश्चित नहीं रह सकता। और न उसका कोई वैज्ञानिक आधार बताया जा सकता है।

इसलिए उनकी गणना और माप भी व्यर्थ है। गमक मुख्यतः कलाका विषय है और इसलिए व्यक्तिगत अभ्यास और प्रयोगपर निर्भर है।

१४२—ऊपर दाक्षिणात्य-पद्धतिमें जैसे और जिन प्रयोगोंमें श्रुतियोंका निर्देश किया गया है हिन्दुस्तानी पद्धतिमें भी वैसे प्रयोगोंमें भिन्न-भिन्न अनिश्चित और अनिष्ट श्रुतियोंका प्रयोग होता है। इनके अतिरिक्त हिन्दुस्तानी-संगीतमें संवाद और इष्टताकी दृढ परम्पराके अनुसार ग्रामके १२ स्वरोंके अतिरिक्त कुछ ऐसे स्वरोंका प्रयोग होता है जिनके मान और स्थान निश्चित हैं। इस दृष्टिसे व्यावहारिक संगीतकी विवेचना की जाय तो नीचे दिये हुए कुछ ऐसे नियम निकलते हैं जो हिन्दुस्तानी रागोंके स्वर-विन्यास समझनेमें सहायक हो सकते हैं—

(१) गमक और प्रवेशक स्वर—हिन्दुस्तानी संगीतमें मींड़-सूत, गिटकिरी, मुरकी, कम्पन, आन्दोलन, कण आदि अनेक गमकोंका व्यवहार प्रचुरतासे होता है। चाहे ध्रुपद हो या ख़याल, टप्पा हो या ठुमरी, हर गायकीमें गमकोंकी प्रधानता और विचित्रता रहती है। इन गमकोंमें कभी-कभी एक श्रुतिके अंतरवाले स्वरोंका भी प्रयोग होता है। पर गमकमें आनेवाले विजातीय स्वरोंका मान निश्चित नहीं होता। जैसे, यदि ऋषभका उच्चारण मध्यमके कणके साथ हो तो, यह कहना कठिन है कि इस मध्यमविशेषका ठीक-ठीक मान क्या है।

इसी तरह प्रवेशक स्वरोंका मान भी प्रायः अनिश्चित ही रहता है। स का प्रवेशक ऩ, प का म', म का ग या अवरोहीमें स का ऱ सुविधाके अनुसार अनेक रूप लेता है।

(२) यह भी एक नियम-सा ही है कि आरोहीमें स्वरोंकी प्रवृत्ति ऊपर चढ़नेकी होती है और अवरोहीमें नीचे उतरनेकी। यह नियम स्वाभाविक है और इसलिए सभी पद्धतियोंमें पाया जाता है।

(३) जिन स्वरोंपर ध्वनिका ठहराव होता है ऐसे लीनक या धीर स्वरोंका उच्चारण हिन्दुस्तानी-संगीतमें स्वरोंके संवाद और तमूरेकी संगतिसे नियन्त्रित होता है। इस संवाद और संगतिके आधारपर निकले हुए स्वरोंका मान निश्चित होता है। इसलिए रागका धीर स्वर सदा तमूरेकी संगतिसे इष्ट होगा।

(४) वादी स्वर प्राय लीनक या धीर होते हैं अर्थात् उनपर ध्वनि कुछ देरतक ठहरती है। इसलिए वादीका इष्ट होना आवश्यक है। इसी प्रकार संवादी स्वरका वादीसे सच्चा मध्यम या पंचम-संवाद होना भी ज़रूरी है।

(५) प्लुताचारमें, जहाँ एक या एकसे अधिक स्वरोंका लंघन होता है, अंतिम स्वर सदा आरम्भके स्वरका पंचम-संवादी ($\frac{३}{२}$), मध्यम-संवादी ($\frac{४}{३}$) या गान्धार-संवादी ($\frac{५}{४}$ या $\frac{६}{५}$) होगा।

(६) पदाचारमें, जहाँ स्वरोंका लंघन नहीं होता अर्थात् प्रत्येक स्वरको छूकर ध्वनि ऊपर चढ़ती या नीचे उतरती है, प्राय एक स्वरका मान $\frac{१०}{९}$ न होकर $\frac{९}{८}$ होता है।

अब क्रमश नियम ३ से नियम ६ तकके उदाहरण दिये जाते हैं —

(३) यदि किसी रागमें गान्धार या धैवतपर ठहराव हो तो इनका मान $\frac{८१}{६४}$ और $\frac{२७}{१६}$ न होकर क्रमश $\frac{५}{४}$ और $\frac{५}{३}$ होगा क्योंकि ये स्वर तमूरेके स्वरितकी दृष्टिसे इष्ट हैं।

(४) गान्धार और धैवत वादी हों तो इनका मान $\frac{५}{४}$ और $\frac{५}{३}$ होगा; और इनके संवादी—

($\frac{५}{४}$) ——→ $\frac{५}{३}$ (ध) या $\frac{१५}{८}$ (न) और

($\frac{५}{३}$) ——→ $\frac{५}{४}$ (ग) या $\frac{१०}{९}$ (र) होंगे।

तमूरेके पंचमके आधारपर यदि र $\frac{९}{८}$ वादी हो तो इसका संवादी प $\frac{३}{२}$ या ध $\frac{२७}{१६}$ होगा।

इसी प्रकार यदि वादी कोमल गान्धार $\frac{६}{५}$ हो तो इसका संवादी ध् $\frac{८}{५}$ या न् $\frac{९}{५}$ होगा।

सभी इष्ट वादियों और उनके संवादियोंका मान नीचेकी सारिणीमें दिया जाता है —

सारिणी २३

वादी	संवादी	
	मध्यम ($\frac{४}{३}$)	पंचम $\frac{३}{२}$
स १	म $\frac{४}{३}$	प $\frac{३}{२}$
र $\frac{९}{८}$	प $\frac{३}{२}$	ध $\frac{२७}{१६}$
ग् $\frac{६}{५}$	ध् $\frac{८}{५}$	न् $\frac{९}{५}$
ग $\frac{५}{४}$	ध $\frac{५}{३}$	न $\frac{१५}{८}$
म $\frac{४}{३}$	न् $\frac{१६}{९}$ या स १	सं २
प $\frac{३}{२}$	र $\frac{९}{८}$	स १
ध $\frac{५}{३}$	ग $\frac{५}{४}$	र $\frac{१०}{९}$

(५) प्लुताचारमें अनेक विलक्षण स्वरोंकी निष्पत्ति हो सकती है। नीचेकी सारिणियोंमें इष्ट स्वरोंके आधारसे भिन्न-भिन्न प्लुताचारके द्वारा निकले हुए स्वर ही दिखाये गये हैं। इनमें पहली सारिणी आरोही-क्रमकी और दूसरी अवरोहीक्रमकी है।

सारिणी २४

	प्लुत (आरोही)			
आधार स्वर	ग् ६/५	ग ५/४	म ४/३	प ३/२
स १	ग् ६/५	ग ५/४	म ४/३	प ३/२
र ९/८	म + २७/२०	म' ४५/३२	प ३/२	ध २७/१६
ग् ६/५	म' ३६/२५	प ३/२	ध् ८/५	न् ९/५
ग ५/४	प ३/२	ध् २५/१६	ध ५/३	न १५/८
म ४/३	ध् ८/५	ध ५/३	न् १६/९	स २
प ३/२	न् ९/५	न १५/८	सं २	— —
ध ५/३	स २	— —	— —	— —

सारिणी २५

	प्लुत (अवरोही)			
आधार स्वर	ग् $\frac{६}{५}$	ग $\frac{५}{४}$	म $\frac{४}{३}$	प $\frac{३}{२}$
ग $\frac{५}{४}$	र् $\frac{२५}{२४}$	—	—	—
म $\frac{४}{३}$	र $\frac{१०}{९}$	र् $\frac{१६}{१५}$	—	—
प $\frac{३}{२}$	ग $\frac{५}{४}$	ग् $\frac{६}{५}$	र $\frac{९}{८}$	—
ध $\frac{५}{३}$	म' $\frac{२५}{१८}$	म $\frac{४}{३}$	ग $\frac{५}{४}$	र $\frac{१०}{९}$

(६) पदाचारकी रीतिसे यदि स से ग पर जाएँ तो तान 'स र ग' होगा। इस दशामें प्राय गान्धारका मान $\frac{५}{४}$ न होकर $\frac{८१}{६४}$ होगा; जैसे—

स $\frac{९}{८}$ र $\frac{९}{८}$ ग

१ $\frac{९}{८}$ $\frac{८१}{६४}$

इसी तरह प—ध मे ध $\frac{२७}{१६}$, 'प ध न' मे न $\frac{२४३}{१२८}$ और ग—म' में म' $\frac{४५}{३२}$ होगा। पर इन क्रियाओंमें ग, ध, न या म' पर स्वरोंका ठहराव न होना चाहिए।

१४३—ऊपर दिये हुए नियमोंके उपयोगसे हिन्दुस्तानी रागोंके स्वर-निर्णयमें बहुत कुछ मदद मिल सकती है। इन नियमोंका आधार

संवाद है जो हिन्दुस्तानी-संगीतका प्राण है। संवाद स्वभाव-प्रेरित होने से वैज्ञानिक नियमोंसे बँधा है और सामान्य गणितसे निश्चित किया जा सकता है। किस रागमें कौन-कौन स्वर लगने चाहिए, इस विषयमें बहुधा गुणियोंमें मत-भेद हो जाया करता है। पर ऊपरके नियमोंसे, जिनमें उत्तरीय पद्धतिके किसी भी आचार्यको कोई आपत्ति नहीं हो सकती, यह मतभेद बहुत कुछ दूर किया जा सकता है। इस विषयमें इतना ही आवश्यक है कि राग-लक्षण और रागकी प्रकृति स्पष्ट हो और इस सम्बन्धमें कोई मतभेद न हो। यदि राग-लक्षणमें मतैक्य न हुआ, तो स्वर-निर्णयमें भी भेद हो जायगा।

उदाहरण-स्वरूप कुछ मुख्य रागोंपर नीचे विचार किया जाता है—

(१) मालकौस—इस रागका वादी मध्यम है। स से ध्वनि म पर जाती है। ग् मुख्यत म के साथ आता है। म से ध् और न् पर प्लुत होता है। पंचम और ऋषभ वर्जित हैं।

नियम ५ के अनुसार प्लुताचारमें ध् ८/५ और न् १६/९ होना चाहिए। अवरोही प्लुतमें ध् ८/५ से कोमल गान्धार ग् ६/५ और न् १६/९ से ग् ३२/२७ मिलता है। जैसे—

म ४/३ —(+४/३)→ न् १६/९ —(−३/२)→ ग् ३२/२७

म ४/३ —(+६/५)→ ध् ८/५ —(−४/३)→ ग् ६/५
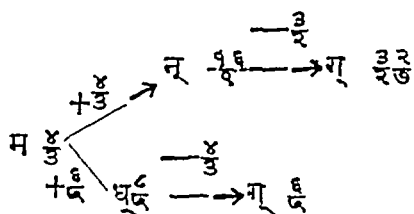
मालकौसके इस स्वर-निदानसे जान पड़ता है कि इसमें दो प्रकारके कोमल गान्धारका प्रयोग होता है—(१) ग् ३२/२७ और (२) ग् ६/५। पहला दूसरेसे एक कोमा (८१/८०) उतरा हुआ है। अवरोहीमें ग् ३२/२७ का प्रयोग होता है। अनिष्ट अन्तराल होनेपर भी इससे स्वरित स पर

जानेमें कोई बाधा नहीं होती। फिर पदाचारसे नियम (६) के अनुसार म—ग् में एक गुरुस्वरका अंतर होना चाहिए, जिससे ग् $\frac{३२}{२७}$ की ही निष्पत्ति होती है। इस गान्धारके अनिष्ट होनेसे ही यह स्वर मालकौसमें लीनक नहीं होता।

आरोहीमें और विशेषरूपसे म ग् म तानमें ग् $\frac{६}{५}$ का प्रयोग होता है। ऐसे प्रयोगमें स्वरका एक कोमा चढ़ जाना स्वाभाविक है।

(२) मुलतानी-टोड़ी—मुलतानीका वादी पंचम और संवादी षड्ज माना जाता है। आरोहमें र् और ध् वर्जित हैं इसलिए ध्वनि प्लुताचारसे स से ग् पर और प से न पर जाती है। अवरोहमें पदाचारका प्रयोग होता है। पर प—ग् प्लुत अवरोहमें भी पाया जाता है। इसलिए इस रागका स्वर-निर्णय ५ वे और ६ ठें नियमके अनुसार हो सकता है। जैसे —

(प्लुताचार) स १ —$+\frac{६}{५}$→ ग् $\frac{६}{५}$ —$+\frac{५}{४}$→ प $\frac{३}{२}$ —$+\frac{५}{४}$→ न $\frac{१५}{८}$

(पदाचार) ग् $\frac{६}{५}$ —$-\frac{९}{८}$→ र् $\frac{१६}{१५}$

(संवाद) ग् $\frac{६}{५}$ —$+\frac{४}{३}$→ ध् $\frac{८}{५}$

र् $\frac{१६}{१५}$ —$+\frac{३}{२}$→ ध् $\frac{८}{५}$

र् $\frac{१६}{१५}$ —$+\frac{४}{३}$→ म' $\frac{६४}{४५}$
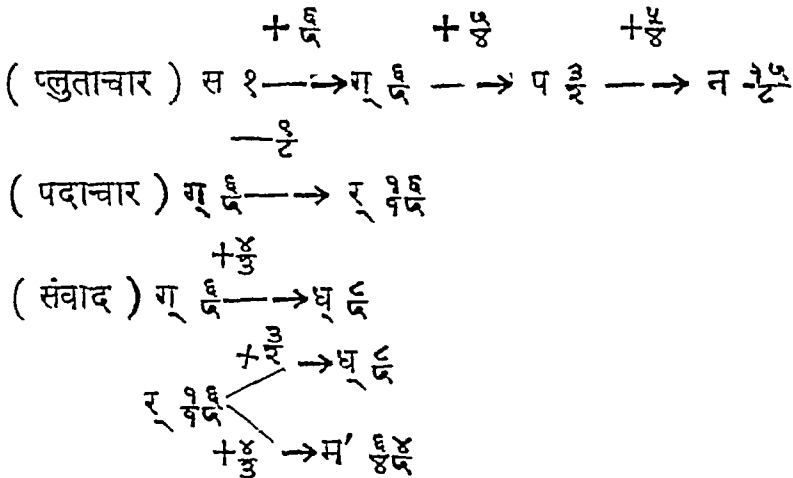
इस रागमें तीव्र मध्यमका प्रयोग कई रीतियोंसे होता है। यह कभी प्रवेशक स्वर और कभी स्वतन्त्र स्वरके रूपमें आता है। इसलिए रीतिभेदसे इसके मानमें भी भेद हो जाता है। प्रवेशक स्वरके रूपमें म' $\frac{६४}{४५}$ का प्रयोग होता है। प से म' पर उतरनेमें अर्धस्वरका अन्तराल

आवश्यक है, इसलिए यहाँ म′ ४५/३२ आता है। प ग॒ म′ ग॒ र॒ स तानमें या ग॒ म′ तानमें म′ का मान ३६/२५ होता है।

टोड़ीमें मुलतानीके ही स्वर लगते हैं। पर इसका वादी स्वर कोमल गान्धार हैं। वादी होनेसे, नियम ४ के अनुसार इसे इष्ट होना चाहिए। यह बताया जा चुका है कि ग॒ ६/५ पूरी तरह इष्ट नहीं है (अनु. ५५)। फिर यह माना जाता है कि टोड़ीका कोमल गान्धार मुलतानीके कोमल गान्धारसे कुछ उतरा हुआ लगता है। ग॒ ६/५ से एक कोमा उतरा हुआ ग॒ ३२/२७ है। पर यह तो अतिअनिष्ट है जिसपर तमूरेकी संगतिमें स्वर कभी ठहर ही नहीं सकता। टोड़ीमें गान्धारपर ध्वनि जितनी देरतक और जिस रीतिसे ठहरती है, उससे यह सिद्ध है कि टोड़ीका गान्धार बहुत ही इष्ट है। ग॒ ६/५ से उतरा हुआ पर पूरी तरह इष्ट सासिक गान्धार होता है जिसक मान ७/६ है। तमूरेके स्वरोंमें सासिक निषाद (नृ^{७} ७/४) पाया जाता है (अनु० ११६) जिसका ग॒^{७} ७/६ से पचम संवाद है। तमूरेके आशिकोंमे सप्तम आशिक भी बली होता है। इसलिए तमूरेके साथ ग॒^{७} ७/६ का पूरा मेल है और इसीलिए इसपर ध्वनि देरतक ठहर सकती है। ग॒ ६/५ और ग॒^{७} ७/६ में १२ सेवर्टका अंतर है जहाँ ग॒ ६/५ और ग॒ ३२/२७ मे केवल ५ सेवर्टका है। १२ सेवर्टका अंतर अर्धस्वर (२८ सेवर्ट) के लगभग आधा है। इसीसे मुलतानी और टोड़ीके गान्धारोंका अतर इतना स्पष्ट है कि प्रत्येक प्रवीण गायक इसका अनुभव करता है।

टोड़ीके शेष स्वर सामान्य ग्रामके स्वर हैं या वे भी सासिक जातिके ही हैं, यह कहना कठिन है। हो सकता है कि प्लुतमें सासिक म′^{७} ७/५ और सासिक ध॒^{७} १४/९ का प्रयोग होता हो। पर यदि सामान्य स्वरोंका व्यवहार होता है तो उनका आधार ग॒ नहीं, पचम है।

(३)पूरिया-मारवा—पूरियाका वादी गान्धार है और इसमें पंचम वर्जित है। गान्धार वादी होनेसे इसका इष्ट अर्थात् ग ५/४ होना आवश्यक है। ग–म′ पदाचारमें ९/८ का अंतर और म′–ध प्लुतमें ६/५ का अंतर होना

चाहिए। फिर ग—न का पंचम-संवाद और म′—र् का अवरोही प्लुत ($\frac{४}{३}$) भी निश्चित है। इस विवरणके अनुसार पूरियाका स्वर-विन्यास इस प्रकार होगा —

ग $\frac{५}{४}$ —($+\frac{९}{८}$)→ म′ $\frac{४५}{३२}$ —($+\frac{६}{५}$)→ ध $\frac{२७}{१६}$

म′ $\frac{४५}{३२}$ —($-\frac{४}{३}$)→ र् $\frac{१३५}{१२८}$

ग $\frac{५}{४}$ —($+\frac{३}{२}$)→ न $\frac{१५}{८}$
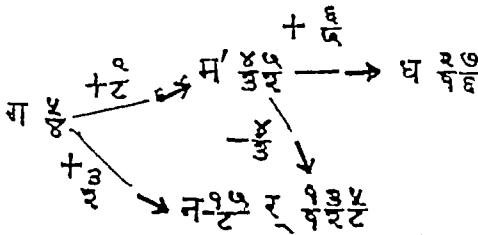
इस स्वर-निदानमें र् को छोड़ और सभी स्वर परिचित और प्रचलित हैं। $\frac{१३५}{१२८}$ का मान सेवर्टमें २३ है अर्थात् र् $\frac{१६}{१५}$ (२८ से०) से यह एक कोमा उतरा हुआ है। अवरोहमें इसके प्रयोगमें कोई बाधा नहीं पड़ती क्योंकि यह षड्जके प्रवेशकके रूपमें आता है। आरोहमें बाधा अवश्य पड़ती है क्योंकि यह अर्धस्वरसे छोटा है। पर पूरियामें बहुधा षड्जका लंघन करके 'ऩ र्' या 'न र्ं' का प्रयोग होता है; और ऐसे प्रयोगमें र् $\frac{१६}{१५}$ लिया जाय तो यह अन्तराल गुरुस्वरसे एक कोमा बढ़ जायगा जो अनुचित है। पर र् $\frac{१३५}{१२८}$ को लिया जाय तो इन दो स्वरोंका अन्तराल एक गुरुस्वर ($\frac{९}{८}$) हो सकता है। जैसे —
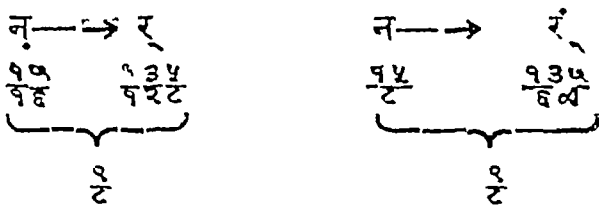
इससे यह जान पड़ता है कि पूरियामें र् $\frac{१३५}{१२८}$ का ही प्रयोग होता है।

आरोहमें म′—ध प्लुतसे ध $\frac{२७}{१६}$ निकलता है। पर अवरोहमें 'न ध ग' या 'म′ ध ग' तानोंमें इष्ट धैवत $\frac{५}{३}$ का प्रयोग होता है; क्योंकि अवरोही प्लुत ध—ग का इष्ट होना आवश्यक है; जैसे —

ध $\frac{५}{३}$ —($-\frac{४}{३}$)→ ग $\frac{५}{४}$
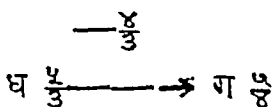
इसके अतिरिक्त अवरोहमे या स्पर्शमें रागके मुख्य धैवत २७/१६ का एक कोमा उतर जाना स्वाभाविक है।

इसी तरह ग—र॒ अवरोहमें र॒ का मान २५/२४ होना चाहिए जो र॒ १३५/१२८ से भी एक कोमा उतरा हुआ है। जैसे—

—६/५
ग ५/४ —→ र॒ २५/२४

मारवाका वादी स्वर कोमल ऋषभ काल्पनिक-सा प्रतीत होता है। पर धैवतका संवादी होना मान्य है। इसमें गान्धारकी भी प्रधानता मानी जाती है। इस हिसाबसे मारवामें इष्ट धैवत ५/३ का ही व्यवहार विशेष होना चाहिए। गान्धारका मान भी ५/४ ही होना उचित है। ध ५/३ की सगतिसे म′ २५/१८ और र॒ २५/२४ का प्रयोग होगा। जैसे —

—६/५ —४/३
ध ५/३ —→ म′ २५/१८ —→ र॒ २५/२४

म′—ग संगतिमें गान्धार १००/८१ आता है या ग ५/४ अपनी प्रधानता बनाये रखता है, यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता।

१४४—ऊपर दिये हुए कुछ उदाहरणोंसे स्पष्ट है कि हिन्दुस्तानी संगीतके व्यावहारिक नियमोंसे एक-एक स्वरके अनेक-अनेक भेद निकलते हैं जो भिन्न-भिन्न श्रुतियोंपर स्थित हैं। ये उपस्वर कहीं तो आकस्मिक होते हैं और कहीं प्रमुख। यों तो स्थूल विचार और व्यवहारमें इन उपस्वरों या श्रुतियोंकी उपेक्षा की जा सकती है। पर सूक्ष्म विचार और शुद्ध व्यवहारमें इनपर ध्यान रखना आवश्यक है। यह समझ बैठना कि हिन्दुस्तानी संगीतके सारे राग बारह निश्चित स्वरोंसे ही पैदा होते हैं, सवथा अनुचित है। हिन्दुस्तानी-संगीतमे, ऊपर दिये हुए ६ नियमोंके अनुसार ऐसे अनेक स्वरोंका उपयोग होता है जो इन बारह निश्चित स्वरोंके अतिरिक्त हैं; इस प्रकार इन स्वरोंकी बारह मुख्य श्रुतियोंके अतिरिक्त और भी श्रुतियाँ काममें आती हैं। पर इन श्रुतियोंका भरतकी बाईस श्रुतियोंसे कोई नित्य सम्बन्ध

स्थापित नहीं किया जा सकता। यों तो भरतकी श्रुतियाँ भी तीन प्रकारकी बताई गई हैं—एक कोमा (५ सेवर्ट), दूसरा लघु अर्धस्वर (१८ सेवर्ट) और तीसरा लीमा (२३ सेवर्ट) (अनु० १००)। पर स्वरोंके उतार-चढावमें इनका स्वच्छन्द प्रयोग होता है। इनके अतिरिक्त सात्विक-संवादकी श्रुतियाँ, जिसका उदाहरण टोड़ी रागकी विवेचनामें दिया गया है, भरतके श्रुति-प्रबन्धमें नहीं पाई जातीं। ऐसी और भी विलक्षण श्रुतियाँ हो सकती हैं जो संवादके नियमोंसे निकलें पर जिनका अस्तित्व भरतकी पद्धतिमें न पाई जाय। तात्पर्य यह कि हिन्दुस्तानी-संगीतकी अनेक विरल श्रुतियाँ भौतिक नियमोंसे निकलती हैं; पर इससे यह परिणाम नहीं निकाला जा सकता कि इन श्रुतियोंके निरूपणसे भरतकी २२ श्रुतियोंवाली पद्धतिकी पुष्टि होती है।

१७--हिन्दुस्तानी-संगीतकी वैज्ञानिकता और परम्परा

१४५—हिन्दुस्तानी-संगीतकी विशेषताएँ पिछले अध्यायोंमें जगह-जगह बताई गई हैं। यहाँ उन्हींकी चर्चा एक साथ संक्षेपमें की जाती है जिससे हिन्दुस्तानी-संगीतकी वैज्ञानिकता और परम्परापर कुछ प्रकाश पड़ेगा।

उत्तर और दक्षिण, दोनों ही क्षेत्रोंमें संगीत-सम्बन्धी कुछ धारणाएँ समानरूपसे प्रचलित हैं। उनमेंसे एक तो यह है कि दाक्षिणात्य-संगीत-पद्धति हिन्दुस्तानी-संगीत-पद्धतिकी अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक है; दूसरी यह कि दाक्षिणात्य-पद्धति शुद्ध भरत-परम्पराका अनुकरण करती है और उत्तरीय पद्धतिपर विदेशियोंका प्रभाव पड़नेसे यह प्राचीन हिन्दू-परम्परासे अलग हो गई है। ये दोनों धारणाएँ हिन्दुस्तानी संगीतके तत्त्व और इसकी विशेषताओंके अज्ञानके कारण पैदा हुई हैं।

शायद दाक्षिणात्य पद्धतिको वैज्ञानिक इसलिए कहा जाता है कि उसका वर्गीकरण नियमित है। इसमें संन्देह नहीं कि हिन्दुस्तानी-सङ्गीतका वर्गीकरण उतना नियमित नहीं है। पर केवल वर्गीकरणका नियमित होना ही वैज्ञानिकताका द्योतक नहीं है। वेंकटमखीका मेलकर्त्ता निरूपण गणितसाध्य है। पर संगीतकी विवेचनामे गणितकी उतनी महत्ता नहीं है जितनी ध्वनि-विज्ञानकी। इसलिए किसी भी संगीत-पद्धतिकी वैज्ञानिकता ध्वनि-विज्ञानके नियमोंके आधारपर ही आँकी जा सकती है। ध्वनि-विज्ञानकी दृष्टिसे दाक्षिणात्य-पद्धतिपर विचार करनेपर उसकी वैज्ञानिकतामें त्रुटियाँ ही अधिक दीख पड़ती हैं। दाक्षिणात्य शुद्ध-ग्राम (कनकागी) किसी भी वैज्ञानिक पद्धतिमें स्वीकृत नहीं है। यह अर्धस्वरक ग्राम है जिसमें दो अर्धस्वर लगातार आते हैं (अनु० १२०)। दो लगातार अर्धस्वरकी इस अव्यावहारिकताके कारण ही पुरन्दरदासने मायामालवगौड़ा (भैरव) को शुद्ध-ग्राम माननेका प्रस्ताव किया था (अनु० १२०)। पर

यह भी अर्धस्वरक ग्राम ही है। शुद्ध वैज्ञानिक ग्राम बिलावलमेल माना जाता है, जिसके प्रत्येक स्वर स्वरित (षड्ज) के सम्बन्धसे इष्ट हैं। बिलावलमेल सरल, इष्ट और स्वभावसिद्ध है (अनु० १२०)। दक्षिणमें भी शकराभरण (बिलावल) का ही व्यवहारमे अधिक प्रचार है। शंकराभरण की यह प्रधानता इस बातकी मूक स्वीकृति है कि दाक्षिणात्य शुद्ध-ग्राम (कनकागी) अवैज्ञानिक है।

स्वरोंकी इष्टता और संवादकी व्याख्या और इनकी औचित्य-सिद्धिमे हेल्महोज़ने महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तोंका निरूपण किया है। इन सिद्धान्तोंके कारण ही संगीत ध्वनि-विज्ञानकी परिधिके भीतर आ गया है। पर दाक्षिणात्य पद्धतिमे इष्टता और संवादकी सिद्धान्तत· उपेक्षा की गई है। वेंकटमखीने ७२ मेलकर्त्ताओंकी पद्धतिका निरूपण केवल सिद्धान्तमे ही किया। ऐसा न समझना चाहिए कि उन्होंने प्रचलित रागोंका वर्गीकरण ७२ मेलोंमें किया है। ये सभी मेल दक्षिणमें प्रचलित नहीं हैं; फिर भी ऐसे बहुतसे मेल और राग प्रचलित हैं जिनके स्वर अनिष्ट हैं और जिनका स्वर-संस्थान विसंवादी है (अनु० १२६)। विसंवादी और अनिष्ट मेलोंके निरूपणका परिणाम और प्रमाण यह है कि दाक्षिणात्य पद्धतिमें अर्धस्वरसे भी छोटे अंतरालका विधान पाया जाता है (अनु० १२०, १२६)।

हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धतिमें बिलावल ठाटको शुद्ध माने जानेसे इसकी वैज्ञानिकता प्रमाणित होती है। फिर इसमे इष्टता और संवादको बड़ी प्रधानता दी गई है। रागका प्रसार, वादी और सवादीको ही केन्द्र मानकर होता है। पंचम-प्लुत, मध्यम-प्लुत और गान्धार-प्लुत का व्यवहार बहुत अधिक होता है और इनमें इष्ट अंतरालोंका ही प्रयोग होता है (अनु० १४२)। मेलमें कोई भी ऐसा स्वर ग्रहण नहीं किया जा सकता जिसका पञ्चम-संवादी या मध्यम-सवादी भी उस मेलमें मौजूद न हो (अनु० १२२)। यहाँ तक कि विवादी स्वर (नॣ, गॣ, म) का प्रयोग भी किसी रागमें तभी

हो सकता है जब इसका संवादी स्वर रागमें मौजूद हो (अनु० १३६)। स्वर-संवादसे ही मेलके पूर्वांग और उत्तरांगका यमकभाव प्रस्फुटित होता है जो हिन्दुस्तानी पद्धतिमें अनिवार्य-सा जान पड़ता है (अनु०१३०)। यमकभावकी प्रधानता मारवा ठाटकी विवेचनासे पूरी तरह सिद्ध हो जाती है (अनु०१३०)। इसी सवाद और यमकभावकी निष्पत्तिके लिए हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धतिमें ७२ मेलोंमे से १० को छोड़, शेष, सभी मेलोंका निराकरण किया गया है (अनु० १२९)। भातखण्डेके दशमेल-निरूपणसे यह नया भ्रम फैल गया है कि दाक्षिणात्य-रागोंका क्षेत्र बड़ा ही विशाल है और हिन्दुस्तानी रागोंका क्षेत्र १० मेलों तक ही संकुचित है। तत्त्व यह है कि विज्ञान और कलाकी प्रेरणासे हिन्दुस्तानी संगीतमें पूरी तरह संवादी १० मेलोंके अतिरिक्त और किसी भी मेलको स्थान नहीं है। विज्ञानके सर्व-स्वीकृत नियमों और कलाके सर्व-प्रिय सौष्ठवका परित्याग करके संगीतके क्षेत्रको विस्तृत करनेकी आकांक्षा हिन्दुस्तानी सगीत-पद्धतिमें नहीं पाई जाती।

संवादकी भाँति ही अर्धस्वर अंतरालवाले दो स्वरोंका परस्पर 'विवाद' भी हिन्दुस्तानी सगीत-पद्धतिमें माना जाता है, जो वैज्ञानिक नियमसे बँधा है।

यहाँ इतना समझ लेना आवश्यक है कि कलाके क्षेत्रमे विज्ञानका अधिकार गौण है। विज्ञान कलाके विधिनिषेधोंकी केवल भौतिक दशापर प्रकाश डालता है। यह कलाकारका अनुभव है कि किन्हीं दो स्वरोंकी संगति अप्रिय होती है और किन्हीं दो स्वरोंकी प्रिय। जैसे स–प सगति तो प्रिय होती है और जिन दो स्वरोंका अंतराल अर्धस्वर (१६/१५) होता है उनकी संगति सबसे अधिक अप्रिय होती है। हेल्महोजने बताया है कि जिन दो स्वरोंकी संगति अप्रिय होती है उनमें डोलकी मात्रा अधिक होती है। लगभग ३३ डोल प्रति सेकेण्ड सबसे अधिक अप्रियता पैदा करती है (अनु० ५६)। मध्य सप्तकमें यह दशा लगभग अर्धस्वरके अंतरालवाले स्वरोंमें ही पाई जाती है। पर दो स्वरोंका डोल क्यों अप्रिय

होता है, यह विज्ञानका तथ्य नहीं, यह तो कलाकी अनुभूति है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कोई भी संगीत-पद्धति सच्चे अर्थमे वैज्ञानिक नहीं होती। इसमे वैज्ञानिकता इतनी ही हो सकती है कि इसके कलात्मक तथ्यों और अनुभूतियोंकी भौतिक भित्ति वैज्ञानिक नियमोसे समझा जा सके। इस अर्थमें हिन्दुस्तानी-सगीत-पद्धतिकी वैज्ञानिकता पूरी तरह सिद्ध होती है। भरतने दो श्रुति (अर्धस्वर) अंतरवाले स्वरोंको परस्पर विवादी माना है। हिन्दुस्तानी संगीतमें भी अर्धस्वरका अंतराल-विवादी माना जाता है (अनु० १३६)। हेल्महोज़ने डोलकी धारणासे इस 'विवाद'की भौतिक दशाको व्यक्त और स्पष्ट किया है। रागकी एक-रसताके लिए पूर्वांग और उत्तरांगका यमकभाव होना आवश्यक है। इस यमक भावकी सृष्टि तभी हो सकती है जब पूर्वांगके प्रत्येक स्वरका पंचम-या मध्यम-संवादी स्वर उत्तरांगमे हो। दो स्वरोंमें पंचम-या मध्यम-संवाद तभी हो सकता है जब इनकी आवृत्तियोंका अनुपात $\frac{3}{2}$ या $\frac{4}{3}$ हो। इस प्रकार हिन्दुस्तानी संगीतके कलात्मक तथ्य वैज्ञानिक नियमोंसे अभिव्यक्त होते हैं।

अब रही परम्पराकी बात! यह बताया जा चुका है कि शार्ङ्गदेवका शुद्ध ग्राम और भरतका शुद्ध ग्राम एक नहीं हैं (अनु० ६३, १०८)। दक्षिणका शुद्ध ग्राम शार्ङ्गदेवके शुद्धग्रामका अनुकरण करता है (अनु० १०८)। उत्तरका शुद्धग्राम भरतके शुद्धग्रामसे निकला है (अनु० ११५)। उत्तरीय मध्ययुगीय अहोबलका ग्राम काफी मेल है जो अवरोही भरतग्रामका शुद्ध आरोहीरूप है (अनु० ११३)। यदि भरतग्रामकी श्रुतियोंको भी आरोहीक्रममे स्थापित करें तो वह आधुनिक शुद्धग्राम (बिलावल मेल) बन जाता है (अनु० ११५)। यह प्रत्यक्ष है कि भरतग्राम काफी और बिलावलकी तरह ही द्विस्वरक है। दक्षिणके अर्धस्वरक ग्रामका सम्बन्ध इससे नहीं जोड़ा जा सकता। ग्रामकी तरह ही संवाद की प्रधानता हिन्दुतानी संगीतमें भरत-पद्धतिसे आई है। भरतके ग्राममें हिन्दुस्तानी

पद्धतिकी तरह ही यमकभाव दीख पड़ता है। इस ग्राम—यमकत्वको भरतने इतना महत्त्व दिया है कि ओड़वमें वे ही दो स्वर वर्जित हुए हैं जिनका परस्पर पञ्चम-संवाद हे (अनु० ८८)। हिन्दुस्तानी संगीतमे भी यह नियम माना जाता है। अंतर इतना ही है कि भरतने ऐसी जगहोंपर पंचम-संवादको ही प्रशस्त माना है। पर हिन्दुस्तानी संगीतमें पचम और मध्यम—दोनों ही संवाद ग्राह्य हैं। इसी तरह हिन्दुस्तानी सगीतमें विवादीका प्रयोग शुद्ध भरतके मन्तव्यके अनुसार होता है। न्, ग् और म का प्रयोग विवादीरूपमें क्रमश ध, र और ग के साथ होता है जिनसे उनका अतर अर्धस्वर (दो श्रुतियाँ) है (अनु० १३६)। फिर यदि भरतकी मूर्छनाको देखें तो इसमें कोई संदेह नहीं रहता कि आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीतके तन्त्रोंका स्वर-प्रबन्ध भरतके मूर्छना—प्रबन्धका अनुकरण मात्र है। हिन्दुस्तानी तंत्रोंमें बाजका तार मध्यममें मिला होता है। इसीसे भरतने मध्यमको 'अविलोपी' कहा है (अनु० ८७)।

हिन्दुस्तानी-संगीत पद्धतिमें विदेशी अंश बहुत अल्प दीख पड़ता है। यों तो भरतका अवरोही स्वर-प्रबन्ध, मूर्छना-प्रबन्ध, मध्यमकी प्रधानता, न्यास स्वरके गुणधर्म आदि अनेक बातें, प्राचीन यूनानी पद्धतिसे इतनी मिलती हैं कि भरत-पद्धतिपर यूनानी प्रभावका पड़ना आसानीसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता (अनु० ८६, ८७, ८८)। कुछ विद्वानोंका मत है कि भरत—नाट्यशास्त्रपर यूनानी नाट्य-शास्त्रका बहुत कुछ प्रभाव है। भरतने अपने नाट्यशास्त्रमें ही प्रसंगवश संगीतका निरूपण किया है। इस सगीत-पद्धतिकी प्राचीन यूनानी-पद्धतिके साथ स्पष्ट समतासे नाट्यशास्त्रपर यूनानीप्रभावके सिद्धान्तकी पुष्टि होती है। पर यह यूनानी प्रभाव तो भरतकी परम्परासे भारतवर्षकी सभी पद्धतियोंमें पाया जाता है। विचार यह करना है कि हिन्दुस्तानी सगीतपर मुसलमानोंके ससर्गसे ईरानी या अरबी पद्धति का कितना प्रभाव पड़ा है। हिन्दुस्तानी संगीतके आदि मुसलमान,आचार्य्य अमीर ख़ुसरू हुए हैं। कहा जाता है कि उन्होंने कई ईरानी धुनोंका भारतीय सगीतमें

समावेश किया। पर उनकी संगीत-पद्धति सागोपाग भारतीय थी, इसमें कोई संदेह नहीं। उन्होंने स्वयं इस बातकी घोषणा की है (अनु० ७७)। यह भी कहा जाता है कि उन्होंने सितार और तबलेका ईजाद किया। पर सितार और तबला अतिप्राचीन वीणा और मृदंगके क्रमश. संक्षिप्त रूप हैं; ये कोई विदेशी बाजे नहीं हैं। उत्तरके दूसरे प्रसिद्ध आचार्य तानसेन माने जाते हैं। वे पहले हिन्दू थे और वृन्दावनके स्वामी हरिदासके शिष्य थे। तानसेनके साथ-ही अकबरके दरबारमें प्रसिद्ध वीनकार मिसरी सिंह थे जो तानसेनकी कन्यासे विवाह करनेके बाद मुसलमान हो गये थे। ये मिसरी सिंह सरस्वती वीणामें इतने प्रवीण थे कि तानसेन भी इनसे हार मानते थे। इन्हींके वशमें मुहम्मदशाह (१७२० ई०) के समयमें नियामतखाँ हुए जो सदारंगके नामसे आज भी प्रसिद्ध हैं। ये ख़याल-पद्धतिके प्रमुख प्रवर्त्तक समझे जाते हैं। इन्होंने सैकड़ों ख़यालके गाने बनाये जिनमे राधाकृष्णकी लीलाओंका वर्णन है। पर ये स्वयं प्रवीण वीनकार थे। इनका एक ख़याल प्रसिद्ध है जिसमे उन्होंने कहा है कि '**आदि महादेव बीन बजाये पाए नयामत खाँ।**' इन्हींके वंशज आधुनिक समयके प्रसिद्ध वीनकार रामपुर दरबारके वज़ीर खॉ हुए हैं। इसी दरबारके वीनकार सादिक़अली खाँ अपनेको स्वामी हरिदासका वंशज बतलाते हैं। तानसेनके बड़े बेटे विलास खाँसे प्रसिद्ध रबाबियोंका घराना चला है और उनके दूसरे बेटे सुरतसेनसे सितारियोंका। यह सेनिया घरानाके नामसे प्रसिद्ध है।[1]

इस प्रकार यह देखा जाता है कि हिन्दुस्तानी-संगीतके सभी प्रसिद्ध घरानोंकी वंशावली और गुरु-परम्परा हिन्दू-नायकों और संगीत गुरुओंसे ही चली है।

---

१. 'Tantra' in Indian Music—G.P. Dwivedi. The Sunday Leader October 21 and November 4. 1945.

यह सिद्ध है कि शाङ्गदेव आदि द्वारा वर्णित प्राचीन प्रवन्ध—गायन और ध्रुवपदसे ही हिन्दुस्तानी-संगीतकी ध्रुपद-शैलीका विकास हुआ है। इस ध्रुपद की चार अन्त शैलियाँ 'वानी' के नामसे प्रसिद्ध हैं। इन वानियोंके नाम (१) नौहार (२) गौरहार (३) खण्डार और (४) डागुर हैं। गौरहार वानी तानसेनकी कही जाती है। खण्डार वानी वहुत ही प्राचीन है जो हिन्दूकालसे ही चली आती है। डागुर वानी स्वामी हरिदासकी है। इसी वानीसे ख़यालकी शैली निकली है। आरम्भमें ख़यालकी शैली ध्रुपदसे इतनी मिलती-जुलती थी कि इसे लोग 'लॅंगड़ा ध्रुपद' कहते थे।[1] आगे चलकर विलम्बित ख़यालसे छोटा ख़याल और फिर इससे टप्पा और ठुमरीका विकास हुआ। अव ये सभी शैलियाँ साथ-साथ प्रचलित हैं। हिन्दुस्तानी-संगीतकी इन भिन्न-भिन्न शैलियोंके विकास-क्रमसे यह स्पष्ट है कि इनका स्रोत प्राचीन प्रवन्ध-शैलीसे ही अनवरत चला आ रहा है।

हिन्दुस्तानी-संगीतपर अनेक मुसलमान संगीत-पण्डितोंने उर्दूमें पुस्तकें लिखी हैं; जैसे, नगमाते आसफी (रज़ा खाँ), सरमाय इशरत (सादिकअली ख़ाँ), मुआरिफुल नग़मात (राजा नवावअली खाँ), मादमुलमूसीकी (मुंशी वाजिदअली), ग़ुञ्चये राग आदि। पर इन सभी पुस्तकोंमें श्रुति, ग्राम, मूर्छना आदिका विचार प्राचीन पद्धतिकी परिपाटीपर ही किया गया है। इनमें कहीं भी ईरानी या अरवी संगीत-पद्धतिकी छाया नहीं दीख पडती।

यह ऐतिहासिक घटनाओंका परिणाम है कि हिन्दुस्तानी-संगीतके प्रधान उन्नायक और विधायक अधिकतर मुसलमान ही रहे हैं। पर उन्हें वैजूवावरे, गोपाल नायक और स्वामी हरिदासकी परम्पराका गौरव रहा है। वे सदा संगीत-रत्नाकरकी ही दुहाई देते रहे हैं। जहाँतक संगीतका

---

१. हिन्दुस्तानी-संगीत-प्रवेशिका (दूसरा भाग)—श्री मुरारी प्रसाद।

सम्बन्ध है, उनकी आत्मा पूरी तरह भारतीय रही है। उनकी विलक्षण प्रतिभासे हिन्दुस्तानी-संगीतके गान और तन्त्रके व्यवहारमें आश्चर्यजनक उन्नति और विकास हुआ है। पर इस विकासकी प्रेरणा उन्हें भारतीय पद्धतिसे ही मिली है, किसी विदेशी पद्धतिसे नहीं। इसलिए केवल मुसलमानोंका संसर्ग देखकर ही हिन्दुस्तानी-संगीतपर विदेशी प्रभावकी कल्पना कर लेना बहुत बड़ा भ्रम है।

इन सारी विवेचनाओंका यह उद्देश्य नहीं है कि दाक्षिणात्य-पद्धतिको हिन्दुस्तानी-पद्धतिकी अपेक्षा हीन सिद्ध किया जाय। दाक्षिणात्य-पद्धतिका प्रसंग इसलिए उठाया गया है कि बहुधा इसकी तुलना हिन्दुस्तानी-पद्धतिसे की जाती है। यों तो सभी पद्धतियोंकी अपनी-अपनी विशेषता होती है और प्रत्येक पद्धतिके माननेवालोंकी रुचि उसी पद्धतिके अनुरूप बन जाती है। हिन्दुस्तानी-पद्धतिकी विशेषताओंसे यह सिद्ध होता है कि इस पद्धतिमें वैज्ञानिकताका अंश यथेष्ट है और इसकी परम्परा शुद्ध भारतीय है।

उदाहरण [ग्रन्थ]

१. Tyndall—Sound.

२. Richardson—Sound.

३. Barton—Sound.

४. A. B. Wood—A Text-book of Sound.

५. A. Wood—Sound waves and their uses.

६. Miller—Musical Sound.

७. Helmholtz—Sensation of Tones. (Translation by Ellis).

८. Jeans—Science and Music.

९. M. H. Statham—What is Music ?

१०. Sedly Taylor—Sound and Music.

११. Pictro Blaseina—The Science of Music.

१२. Ranade—Hindusthani Music.

१३. Raman—Musik instrumante und Ihre klange (Hand Buch Der Thysik pp. 361).

१४. Darwin—Descent of man.

१५ James Jeans—Science and Music.

१६. Fox Strangways—Music of Hindustan.

१७ Alain Danie'lou—Introduction to the Study of Musical Scales.

१८ M. S. Ramswami—Ed. स्वरमेल-कलानिधि by रामामात्य (Introduction).

१६. T. R. Srinivas Ayyangar—Ed. संग्रहचूड़ामणि by गोविन्द (Introduction).
२०. C. Subrahmanya Ayyar—The Grammar of South Indian (Karnatic) Music.
२१. N. S. Ramchandran—The Ragas of Karnatic Music.
२२. Bhavarnav A. Pingle—Indian Music.
२३. Atiya Begum Fyzee Rahmin—The Music of India.
२४. भरत—नाट्यशास्त्र ।
२५. शार्ङ्गदेव—संगीत-रत्नाकर ।
२६. रामामात्य—स्वरमेल-कलानिधि ।
२७. सोमनाथ—रागविबोध ।
२८. दामोदर—संगीत-दर्पण ।
२६. अहोबल—संगीत-पारिजात ।
३०. श्रीनिवास—रागतत्त्व-विबोध ।
३१. चतुर पण्डित (वि० ना० भातखण्डे)—लक्ष्य-संगीत ।
३२. मुरारी प्रसाद—हिन्दुस्तानी-संगीत-प्रवेशिका ।
३३. वि० ना० भातखण्डे—हिन्दुस्तानी-संगीत-पद्धति भाग १–४ (मराठी) ।
३४. भा० सी० सुकथनकर—हिन्दुस्तानी-संगीत-पद्धति (क्रमिक पुस्तकमालिका भाग १–६) ।

उदाहरण [लेख]

१. R. N. Ghosh—Musical Drums. Phys. Rev. Oct. 1922.

२. R. N. Ghosh—Indian Drums. Phil. mag. Feb. 1923.

३. K. C. Kar—Dynamical Theory of the Bridge of Certain Class of Stringed Instruments. Phy. Rev. 1923.

४. D. G. Gunnaiya and G. Subramanya—Vibration of String under Intermittent Impulses. Phy. Rev. 1925.

५. G. P. Dwivedi—Tantra in Indian Music. The Sunday Leader—
Oct. 21, 1945.
Nov. 4, 1945.
Dec. 16, 1945.
March 10, 1946

६. V. N. Bhatkhande—A short Historical Survey of the Music of Upper India. (A speech at the First All India Music Conference, 1916).

परिशिष्ट १

[क] ७२ बृहन्मेलकर्त्ता (वेंकटमखी)

नीचे ६ चक्रोंमें वेंकटमखीके ७२ मेलकर्त्ता दिये जाते हैं। इनके नाम महावैद्यनाथ शिवनके 'मेल-रागमालिका' के अनुसार हैं। सारिणीके बीचमें स्वरप्रबन्ध, हिन्दुस्तानी स्वर-संज्ञामें दिये गये हैं जिनके बायें शुद्ध-मध्यमवाले पूर्वमेलके और दायें तीव्र-मध्यमवाले उत्तरमेलके नाम हैं।

क्रमांक	पूर्वमेल 'म'	स्वर-प्रबन्ध	उत्तरमेल 'म′'	क्रमांक
		चक्र १		
१	कनकागी	स र् र म (म′) प ध् ध सं	सालग	३७
२	रत्नागी	स र् र म (म′) प ध् न् स	जलार्णव	३८
३	गानमूर्त्ति	स र् र म (म′) प ध् न सं	झलवराडी	३९
४	वनस्पति	स र् र म (म′) प ध न् सं	नवनीतम्	४०
५	मानवती	स र् र म (म′) प ध न सं	पावनी	४१
६	तानरूपि	स र् र म (म′) प न् न सं	रघुप्रिया	४२
		चक्र २		
७	सेनावती	स र् ग् म (म′) प ध् ध स	गावाम्बोधि	४३
८	हनुमट्टोड़ी	स र् ग् म (म′) प ध् न् सं	भवप्रिया	४४
९	धेनुक	स र् ग् म (म′) प ध् न स	शुभपन्तुवराड़ी	४५
१०	नाटकप्रिया	स र् ग् म (म′) प ध न् सं	षड्विधमार्गिणी	४६
११	कोकिलप्रिया	स र् ग् म (म′) प ध न सं	सुवर्णांगी	४७
१२	रूपावती	स र् ग् म (म′) प न् न सं	दिव्यमणी	४८

चक्र ३

क्रमांक	पूर्वमेल 'म'	स्वर-प्रबन्ध	उत्तरमेल 'म′'	क्रमांक
१३	गायकप्रिया	स र् ग म (म′) प ध् ध सं	धवताम्बरी	४९
१४	वकुलाभरण	स र् ग म (म′) प ध् न् स	नामनारायणी	५०
१५	मायामालवगौड़ा	स र् ग म (म′) प ध् न सं	कामवर्धनी	५१
१६	चक्रवाक	स र् ग म (म′) प ध न् सं	रामप्रिया	५२
१७	सूर्यकान्त	स र् ग म (म′) प ध न सं	गमनश्रम	५३
१८	हाटकाम्बरी	स र् ग म (म′) प न् न सं	विश्वम्भरी	५४
		चक्र ४		
१९	झंकारध्वनि	स र ग् म (म′) प ध् ध स	श्यामलाङ्गी	५५
२०	नटभैरवी	स र ग् म (म′) प ध् न् स	षण्मुखप्रिया	५६
२१	कीरवाणी	स र ग् म (म′) प ध् न स	सिंहेन्द्रमध्यम	५७
२२	खरहरप्रिया	स र ग् म (म′) प ध न् स	हेमवती	५८
२३	गौरीमनोहारी	स र ग् म (म′) प ध न स	धर्मवती	५९
२४	वरुणप्रिया	स र ग् म (म′) प न् न सं	नीतिमती	६०

चक्र ५

क्रमांक	पूर्वमेल 'म'	स्वर-प्रबन्ध	उत्तरमेल 'म′'	क्रमांक
२५	माररञ्जनी	स र ग म (म′) प ध् ध सं	कान्तामणि	६१
२६	चारुकेशी	स र ग म (म′) प ध् न् सं	ऋषभप्रिया	६२
२७	सरसांगी	स र ग म (म′) प ध् न सं	लताङ्गी	६३
२८	हरिकाम्बोदि (हरिकाम्भोजि)	स र ग म (म′) प ध न् सं	वाचस्पति	६४
२९	धीरशंकराभरण	स र ग म (म′) प ध न सं	मेचकल्याणी	६५
३०	नागानन्दिनी	स र ग म (म′) प न् न सं	चित्राम्बरी	६६

चक्र ६

क्रमांक	पूर्वमेल 'म'	स्वर-प्रबन्ध	उत्तरमेल 'म′'	क्रमांक
३१	यागप्रिया	स ग् ग म (म′) प ध् ध सं	सुचरित्र	६७
३२	रागवर्धनी	स ग् ग म (म′) प ध् न् सं	ज्योतिस्स्वरूपिणी	६८
३३	गांगेयभूषणी	स ग् ग म (म′) प ध् न सं	धातुवर्धनी	६९
३४	वागधीश्वरी	स ग् ग म (म′) प ध न् सं	नासिकाभूषणी	७०
३५	शूलिनी	स ग् ग म (म′) प ध न सं	कोसल	७१
३६	चलनाट	स ग् ग म (म′) प न् न सं	रसिकप्रिया	७२

[ख] लघु मेलकर्त्ता (रामस्वामी)

क्रमांक	पूर्वमेल 'म'	स्वर-प्रबन्ध	उत्तरमेल 'म''	क्रमांक
१	टोड़ी	स र् ग् म (म') प ध् न् स	भावप्रिया	१७
२	धेनुका	स र् ग् म (म') प ध् न सं	शुभपन्तुवराड़ी	१८
३	नाटकप्रिया	स र् ग् म (म') प ध न् सं	षड्विधमार्गनी	१९
४	कोकिलप्रिया	स र् ग् म (म') प ध न सं	स्वर्णाङ्गी	२०
५	वकुलाभरण	स र् ग म (म') प ध् न् सं	नामनारायणी	२१
६	मायामालवगौड़ा	स र् ग म (म') प ध् न सं	कामवर्धनी	२२
७	चक्रवाक	स र् ग म (म') प ध न् सं	रामप्रिया	२३
८	सूर्यकान्त	स र् ग म (म') प ध न सं	गमनप्रिया	२४
९	नटभैरवी	स र ग् म (म') प ध् न् सं	षण्मुखप्रिया	२५
१०	गिर्वाणी	स र ग् म (म') प ध न सं	सिंहेन्द्रमध्या	२६
११	खरहरप्रिया	स र ग् म (म') प ध न् सं	हेमवती	२७
१२	गौरीमनोहारी	स र ग् म (म') प ध न स	धर्मवती	२८
१३	चारुकेशी	स र ग म (म') प ध् न् स	ऋषभप्रिया	२९
१४	सरसांगी	स र ग म (म') प ध् न सं	लतांगी	३०
१५	हरिकाम्भोजी	स र ग म (म') प ध न् सं	वाचस्पति	३१
१६	शंकराभरण	स र ग म (म') प ध न सं	मेचकल्याणी	३२

परिशिष्ट २

(क) शिक्षा—

षड्जं वदति मयूरो गावो रम्भन्ति चर्षभम् ।
अजा वदति गान्धारं क्रौञ्चो वदति मध्यमम् ॥
पुष्पसाधारणे काले कोकिलो वदति पञ्चमम् ।
अश्वस्तु धैवतं वक्ति निषादं वक्ति कुञ्जरः ॥

नारदी शिक्षा ॥

षड्जो वेदे शिखण्डी स्यादृषभः स्यादजामुखे ।
गावो रम्भन्ति गान्धारं क्रौन्चाश्चैव तु मध्यमम् ॥
कोकिलः पञ्चमो ज्ञेयो निषादं तु वदेद्गजः ।
अश्वश्च धैवतो ज्ञेयो स्वराः सप्तविधा मताः ॥

याज्ञवल्क शिक्षा ॥

(ख) भरत—

(१) षड्जश्च ऋषभश्चैव गान्धारो मध्यमस्तथा ।
पञ्चमो धैवतश्चैव सप्तमश्च निषादवान् ॥
चतुर्विधत्वमेतेषां विज्ञेयं श्रुतियोगतः ।
वादी चैवाथ संवादी ह्यनुवादी विवाद्यपि ॥

(२) संवादो मध्यमग्रामे पञ्चमस्यर्षभस्य च ।
षड्जग्रामे च षड्जस्य संवादः पञ्चमस्य च ॥

(३) अन्तरस्वरसंयोगो नित्यमारोहि संश्रयः ।
कार्यस्त्वल्पो विशेषेण नावरोहि कदाचन ॥

(४)···द्वे वीणे तुल्यप्रमाणतन्त्र्युपपादनदण्डमूर्छिते षड्जग्रामाश्रिते कार्ये । तयोरन्यतरां मध्यग्रामिकीं कुर्यात् । पञ्चमस्यापकर्षे तामेव पञ्चमस्य श्रुत्युत्कर्षवशात् षड्जग्रामिकीं

कुर्यात्। एवं श्रुतिरपकृष्टा भवति। पुनरपि तदेवापकर्षात् गान्धारनिषादावपि इतरस्यां धैवतर्षभौ प्रविशतः श्रुत्यधिकत्वात्। पुनस्तदेवापकर्षाद्धैवतर्षभावितरस्यां पञ्चमषड्जौ प्रविशतः श्रुत्यधिकत्वात्। तद्वत्पुनरपकृष्टायां तस्यां पञ्चममध्यमषड्जा इतरस्यां मध्यमनिषादगान्धारवन्तः प्रवेक्ष्यन्ति चतुःश्रुत्यधिकत्वात्। एवमनेन श्रुतिदर्शनविधानेन द्वैग्रामिक्यो द्वाविंशाः श्रुतयःप्रत्यवगन्तव्याः।

(भरतनाट्यशास्त्र-अष्टाविंशोऽध्यायः।)

(५) द्विकत्रिकचतुष्कास्तु ज्ञेया वंशगताः स्वराः।
कम्पिताश्चार्धमुक्ताश्च व्यक्तमुक्तास्तथैव च॥

× × ×

स्वराणां च श्रुतिकृतं तच्च मे सन्निबोधत।
व्यक्तमुक्ताङ्गुलिस्तत्र स्वरो ज्ञेयश्चतु.श्रुतिः॥
कम्पमानाङ्गुलिश्चैव त्रिश्रुतिश्च स्वरो भवेत्।
द्विकोऽर्धाङ्गुलिमुक्तस्तु एवं श्रुत्याश्रिता· स्वराः॥

(भ०ना०—त्रिंशोऽध्यायः।)

(ग) शार्ङ्गदेव—

(१) गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं सङ्गीतमुच्यते।
मार्गो देशीति तद्द्वेधा तत्र मार्गः स उच्यते॥
यो मार्गितो विरिञ्च्याद्यैः प्रयुक्तो भरतादिभिः।
देवस्य पुरतः शम्भोर्नियताभ्युदयप्रद.॥
देशे देशे जनानां यद्रुच्या हृदयरञ्जकम्।
गानं च वादनं नृत्यं तद्देशीत्यभिधीयते॥

(२) नादोऽतिसूक्ष्मः सूक्ष्मश्च पुष्टोऽपुष्टश्च कृत्रिमः।
इति पञ्चविधां धत्ते पञ्चस्थाने स्थितः क्रमात्॥

(३) व्यवहारे त्वसौ त्रेधा हृदि मन्द्रोऽभिधीयते।
कण्ठे मध्यो मूर्ध्नि तारो द्विगुणश्चोत्तरोत्तरः॥

(४) रिमयोः श्रुतिमेकैकां गान्धारश्चेत्समाश्रितः ।
पश्रुतिं धो निषादस्तु धश्रुतिं सश्रुतिं श्रितः ॥

(५) अधस्तनैर्निषादाद्यैः षडन्या मूर्छनाः क्रमात् ।
मध्यमध्यममारभ्य सौवीरी मूर्छना भवेत् ॥
षडन्यास्तदधोऽधस्थस्वरानारभ्य तु क्रमात् ।
षड्जस्थानस्थितैर्न्याद्यैः रजन्याद्याः परे विदुः

(६) श्रुत्यन्तरभावी यः स्निग्धोऽनुरणनात्मकः ।
स्वतः रञ्जयति श्रोतृचित्तं स स्वर उच्यते ॥

(७) मयूरचातकच्छागक्रौञ्चकोकिलदर्दुराः ।
गजश्च सप्तषड्जादीन् क्रमादुच्चारयन्त्यमी ॥

(८) व्यक्तहे कुर्महे तासां वीणाद्वन्द्वे निदर्शनम् ।
द्वे वीणे सदृशे कार्ये यथा नादो समो भवेत् ॥
तयोर्द्वाविंशतिस्तन्त्र्यः प्रत्येकं तासु चादिमाः ।
कार्या मन्द्रतमध्वाना द्वितीयोच्चध्वनिर्मनाक् ॥
स्यान्निरंतरता श्रुत्योर्मध्ये ध्वन्यन्तरा श्रुतेः ।
(सङ्गीतरत्नाकर-अध्याय १, प्रकरण २–४)

(घ) रामामात्य—

(१) देशीरागाश्च सकलाः षड्जग्रामसमुद्भवाः ।
ग्रहांशन्यासमन्द्रादि षाडवौडवपूर्वकाः ॥

(२) अन्तरस्य च काकिल्या ग्राह्यः प्रतिनिधिक्रमात् ।
च्युतमध्यमगान्धारश्च्युतषड्जनिषादकः ॥

(३) स्वयंभुवः स्वरा ह्येते न स्वबुद्ध्या प्रकल्पिताः ॥४४॥
तस्मात्प्रमाणयुक्तत्वं कर्त्तुं मार्गो निरूप्यते ।
श्रुतयो द्वादशाष्टौ वा ययोरन्तरगोचराः ॥४५॥

मिथः संवादिनौ तौ तु स्वरौ सर्वत्र योजयेत् ।
एवं रत्नाकरप्रोक्तो मार्गोऽयं सम्प्रदर्शितः ॥४६॥
स्वरप्रमाणतां कर्त्तुं मार्गान्तरमथोच्यते ।
चतुर्थतन्त्र्या संभूतः शुद्धोऽयं मन्द्रपञ्चमः ॥४७॥
द्वितीयायां सारिकायां स्वयंभूरिति कथ्यते ।
तस्माद्द्वितीयसार्यां ये जाताः सर्वेऽपि ते स्वराः ॥४८॥
स्वयंभुवः प्रमाणास्याः कर्त्तुं शक्या न चान्यथा ।
द्वितीयसार्यां जातस्य तन्त्र्या चापि द्वितीयया ॥४९॥
अनुमन्द्रस्य शुद्धस्य निषादस्य प्रमाणतः ।
चतुर्थसार्यां सजाते तन्त्र्या चापि तुरीयया ॥५०॥
मन्द्रे शुद्धनिषादाख्ये सप्रमाणे कृते सति ।
चतुर्थसार्यां संजाताः स्वराः सर्वे स्वयंभुवः ॥५१॥
प्रमाणयुक्ताः केनापि न शक्याः कर्त्तुमन्यथा ।
तुरीयसार्यां तन्त्र्या तु संजातस्य द्वितीयया ॥५२॥
च्युतषड्जनिषादस्य चानुमन्द्रप्रमाणतः ।
षष्ठसार्यां तन्त्रिकया चतुर्थ्यां जनिते स्वरे ॥५३॥
च्युतषड्जनिषादाख्ये मन्द्रे मानयुते कृते ।
षष्ठसार्यां समुत्पन्नाः स्वराः सर्वे स्वयंभुवः ॥५४॥
प्रमाणयुक्ताः शक्यन्ते नान्यथा कर्तुमञ्जसा ।
पञ्चम्यां सारिकायां तु षड्जमध्यमसम्भवात् ॥५५॥
तज्जानां प्रभवाश्च (?) ते सर्वे स्युः स्वयंभुवः ।
पञ्चम्यां सारिकायां तु तन्त्र्या जातस्य तुर्यया ॥५६॥
मन्द्रस्य कैशिकाख्यस्य निषादस्य प्रमाणतः ।
तृतीयायां सारिकायां जाते तन्त्र्या द्वितीयया ॥५७॥
अनुमन्द्रे कैशिकाख्ये निषादे मानसंयुते ।
कृते सति तदुद्भूताः स्वराः सर्वे स्वयंभुवः ॥५८॥

तृतीयायां सारिकायां संजातस्य तुरीयया ।
तन्त्र्या मन्द्रस्य शुद्धस्य धैवतस्य प्रमाणतः ॥५९॥
आद्या सार्या समुद्भूते तन्त्र्या चापि द्वितीयया ।
अनुमन्द्राभिधे शुद्धे धैवते मानयोगिनि ॥६०॥
कृते सति समुत्पन्नाः सर्वे प्रामाणिकाः स्वराः ।
अयं प्रकारः सारीषु षट्सूत्पन्नस्वरावलेः ॥६१॥
प्रमाणनिर्णयकृते रामामात्येन दर्शितः ।

(स्वरमेलकलानिधि, ३य प्रकरण)

(च) सोमनाथ—

द्वादशविकृतान्पूर्वे वदन्ति तत्र तु पृथक् पृथग्ध्वनितः ।
सप्तैव स्युर्भिन्ना न पञ्च यदिमे समध्वनयः ॥२५॥
स्वान्त्यश्रुतावुपान्त्यश्रुतौ च सति पञ्चमे क्रमात् सः स्यात् ।
किन्तु विकारो देश्यां न पञ्चमे तदिह सः प्रथमः ॥२६॥

(रागविबोध अध्याय १)

(छ) वेंकटमखी—

(१) षड्जस्वरस्य पुरतश्चत्वारः क्रमशः स्वराः ।
ऋषभाख्यानकाः केचिद्गांधाराख्यानकाश्च ते ॥ २ ॥
तत्राद्यो नैव गान्धारश्चतुर्थो ऋषभो न हि ।
ऋषभावपि गान्धारौ द्वितीयकतृतीयकौ ॥ ३ ॥
तृतीयं वा चतुर्थं व्यपेक्ष्य स्याद्द्वितीयकः ।
ऋषभाख्यः स एव स्याद्गान्धारोऽपेक्ष्य चादिमम् ॥४॥
तृतीयो ऋषभाख्यानश्चतुर्थापेक्षया भवेत् ।
स हि व्यपेक्ष्य गान्धारः प्रथमं वा द्वितीयकम् ॥ ५ ॥
एवं च सति निष्पन्नं द्वितीयकतृतीययोः ।
गान्धारत्वं च ऋषभत्वं भूयमित्येव निर्णयः ॥ ६ ॥

तस्मान्दाद्यद्वितीयौ च तृतीयश्चर्षभा मताः ।
तेष्वाद्यो गौडऋषभः श्रीरागऋषभः परः ॥ ७ ॥
तृतीयो नाटऋषभ इति लक्ष्यविदां मतम् ।
आद्यः शुद्धर्षभः पञ्चश्रुतिकर्षभसंज्ञकः ॥ ८ ॥

द्वितीयश्च तृतीयः षट्श्रुतिकर्षभ उच्यते ।
लक्षणज्ञैर्मयोक्तास्ते त्रयो ररिरुसंज्ञकाः ॥ ९ ॥
द्वितीयश्च तृतीयश्च चतुर्थश्च त्रयः स्वराः ।
सामान्यतः स्युर्गान्धारास्तेष्वाद्यो लक्ष्यवेदिभिः ॥१०॥

प्रोक्तो मुखारिगान्धारो द्वितीयो भैरवीयुतः ।
गान्धारोऽथ तृतीयस्तु गौड़गान्धार उच्यते ॥११॥
लक्षणज्ञैस्तु तेष्वाद्यः शुद्धगान्धार उच्यते ।
साधारणाख्यगान्धारो द्वितीयः परिकीर्तितः ॥१२॥
तृतीयोऽन्तरगान्धार इत्यहं तु वदामि तान् ।
क्रमाद्गगिगुनाम्नस्त्रीन् मेलप्रस्तारसिद्धये ॥१३॥

एवं च षड्जात् पुरतो निवसत्सु चतुर्ष्वपि ।
स्वरेषु प्रथमादित्रितयं ऋषभनामकम् ॥१४॥
गान्धाराख्यं द्वितीयादित्रयमित्येव निर्णयः ।
चतुर्ष्वेतेषु जातस्य ररिर्वाख्यानशालिनः ॥१५॥

गान्धारत्रितयस्यापि पूर्वाङ्गाख्या मया कृता ॥१६॥

(२) नियमेनैव संग्राह्यः षड्जस्तत्पुरतः क्रमात् ।
विद्यमानेषु चतुर्षु स्वरेष्वन्यतरावुभौ ॥४६॥

तत्रर्षभः पूर्वभवो गान्धारस्त्वनुजो भवेत् ।
द्वयोर्मध्यमयोरेकः संग्राह्यो मध्यमो भवेत् ॥४७॥
नियमेन हि संग्राह्यः पञ्चमस्तत्पुरः स्थिताः ।
स्वराः क्रमेण चत्वारस्तेषु चान्यतरावुभौ ॥४८॥

संग्राह्यः पूर्वजातोऽत्र धैवतः परिकीर्तितः।
पश्चाद्भवो निषादः स्यादिति सप्त स्वराश्च ये ॥४९॥
तेषां च मेलनं मेलो गीतवद्भिः प्रकीर्तितः।
भेदा द्विसप्ततिस्तस्य भवन्त्यस्माभिरीरितः ॥५०॥
येनोपायेन मेलास्ते द्विसप्ततिरिति स्फुटाः।
तमुपायं प्रवक्ष्यामि लक्ष्यज्ञसुखबुद्धये ॥५१॥
रगौ रगी रगू चैव रिगी रिगू रुगू तथा।
षड्भेदा इति पूर्वाङ्गे द्रष्टव्या गीतकोविदैः ॥५२॥
धनौ धनी धनू चैव धिनो धिनू धुनू तथा।
उत्तराङ्गेऽपि षड्भेदा द्रष्टव्या गीतकोविदैः ॥५३॥
पूर्वाङ्गगतषड्भेदाः षड्जाद्याः स्युः पृथक् पृथक्।
उत्तराङ्गस्थषड्भेदाः पञ्चमाद्याः पृथक् पृथक् ॥५४॥
आद्यः पूर्वाङ्गगो भेद उत्तराङ्गस्थितैः क्रमात्।
योज्यते यदि षड्भेदैः षण्मेलाः संभवन्त्यतः ॥५५॥
पूर्वाङ्गस्य द्वितीयोऽपि भेदस्तेनैव वर्त्मना।
संयोज्यते यदि तदा षण्मेलाः संभवन्त्यतः ॥५६॥
एवं तृतीयो भेदोऽपि षण्मेलोत्पादको भवेत्।
चतुर्थोऽपि तथैव स्यात्पञ्चमोऽप्येवमेव हि ॥५७॥
एवं षष्ठोऽपि विज्ञेयः षण्मेलोत्पत्तिकारणम्।
अतः पूर्वाङ्गभेदानां षण्णामपि पृथक् पृथक् ॥५८॥
उत्तराङ्गस्थितैः षड्भिर्भेदैः संयोजने कृते।
षट्षण्मेलप्रकारेण मेलाः षट्त्रिंशदागताः ॥५९॥
षट्त्रिंशन्मेलकेष्वेषु प्रतिमेलं च मध्यमः।
मसंज्ञो यदि मध्ये स्यात् पूर्वमेलाभिधास्तदा ॥६०॥
एतेष्वेव तु षट्त्रिंशन्मेलेषु प्रतिमेलकम्।
मसंज्ञमध्यमस्थाने मिसंज्ञो यदि मध्यमः ॥६१॥

निवेश्यते तदा तेषां भवेदुत्तरमेलता ।
इत्यस्माभिः समुन्नीता जाता मेलद्विसप्ततिः ॥९२॥

(३) प्रसिद्धाः पुनरेतेषु मेलाः कतिचिदेव हि ।
दृश्यन्ते न तु सर्वेऽपि तेन तत्कल्पनं वृथा ॥८१॥
कल्पनागौरवन्यायादिति चेदिदमुच्यते ।
अनन्ताः खलु देशास्तद्देशस्था अपि मानवाः ॥८२॥
तेषु संगीतिकैरुच्चावचसंगीतकोविदैः ।
ये कल्पयिष्यमाणाश्च कल्प्यमानाश्च कल्पिताः ॥८३॥
अस्मदादिभिरज्ञाता ये च शास्त्रैकगोचराः ।
ये च देशीयरागास्तद्रागसामान्यमेलकाः ॥८४॥
ये न पन्तुवराड्याख्यकल्याणिप्रमुखा अपि ।
नाना देशीयरागास्तद्रागसामान्यमेलकान् ॥८५॥
संग्रहीतुं समुन्नीता एते मेला द्विसप्तिभिः ।
ततश्चैतेषु वैयर्थ्यशङ्का किं कारणं भवेत् ॥८६॥

(चतुर्दण्डी-प्रकाशिका—प्रकरण ४)

(४) परमो गुरुरस्माकं तानप्पाचार्यशेखरः ।
सर्वेषामपि रागाणामेतल्लक्ष्मानुसारतः ।
ठायान्प्रकल्पयामास लक्ष्यमस्य तदेव सः ॥७॥

(चतु०—प्र० ७)

(५) भासते श्रुतिरित्यादि स्वरालीत्रिपुटादिषु ।
अहमेव श्रुतीर्वेदेत्याह गोपालनायकः ।
अद्यप्रभृति ताः सर्वे श्रुतीर्जानन्तु पण्डिताः ॥५७॥

(चतु०—प्र० २)

गीतप्रबन्धयोरेवं भेदो यदि न कल्प्यते ।
कुतः सिद्ध्येच्चतुर्दण्डी कुतो गोपालनायकः ॥५॥

(चतु०—प्र० ९)

(ज) अहोबल —

ध्वन्यवच्छिन्नवीणायां मध्ये तारकसः स्थितः ।
उभयोर्षड्जयोर्मध्ये मध्यमं स्वरमाचरेत् ॥
त्रिभागात्मकवीणायां पञ्चमः स्यात्तदाग्रिमे ।
षड्जपञ्चमयोर्मध्ये गान्धारस्य स्थितिर्भवेत् ॥
सपयोः पूर्वभागे च स्थापनीयोऽथ रिस्वरः ।
सपयोर्मध्यदेशे तु धैवतं स्वरमाचरेत् ॥
तत्रांशद्वयसंत्यागान्निषादस्य स्थितिर्भवेत् ॥

(सङ्गीत-पारिजात)

(झ) श्रीनिवास —

भागत्रयोदिते मध्ये मेरौ ऋषभसंज्ञितात् ।
भागद्वयोत्तरं मेरोः कुर्यात् कोमल रि स्वरम् ॥
मेरुधैवतयोर्मध्ये तीव्रगान्धारमाचरेत् ।
भागत्रयविशिष्टेऽस्मिन् तीव्रगान्धारषड्जयोः॥
पूर्वभागोत्तरं मध्ये मं तीव्रतरमाचरेत् ।
भागत्रयान्विते मध्ये पञ्चमोत्तरषड्जयोः ॥
कोमलधैवतः स्थाप्यः पूर्वभागे विवेकिभिः ॥
तथैव धसयोर्मध्ये भागत्रयसमन्विते ।
पूर्वभागद्वयादूर्ध्वं निषादं तीव्रमाचरेत् ॥

(रागतत्त्व-विबोध)

(ट) भातखण्डे —

पूर्वान्त्ययोश्च मेर्वोश्च मध्ये तारकसः स्थितः ।
तदर्धे त्वतितारस्य सस्वरस्य स्थितिर्भवेत् ॥
मध्यस्थानादिमषड्जमारभ्यातारषड्जगम् ।
सूत्रं कुर्यात्तदर्धे तु स्वरं मध्यममाचरेत् ॥

भागत्रयसमायुक्तं तत्सूत्रं कारितं भवेत् ।
पूर्वभागद्वयादग्रे स्थापनीयोऽथ पञ्चमः ॥
षड्जपञ्चमगं सूत्रमंशत्रयसमन्वितम् ।
तत्रांशद्वयसंत्यागात् पूर्वभागे तु रिर्भवेत् ॥
पञ्चमोत्तरषड्जाख्यमध्ये धैवतमाचरेत् ।
यथा शुद्धर्षभस्यासौ प्रस्फुटः पञ्चमो भवेत् ॥
मेरुधैवतयोर्मध्ये तीव्रगान्धारमाचरेत् ।
तत्संवादिनिषादाख्यं षड्जधैवतयोः क्षिपेत् ॥
मध्ये षड्जर्षभकयोः संस्थितः कोमलर्षभः ।
षड्जपञ्चमभावेन तत्संवादी धकोमलः ॥
षड्जपञ्चमयोर्मध्ये गान्धारः कोमलो भवेत् ।
मध्यपञ्चमयोर्मध्ये तीव्रमध्यममाचरेत् ॥
सपयोर्मध्यभागे स्याद्भागत्रयसमन्विते ।
पूर्वभागद्वयादग्रे निषादः कोमलो भवेत् ॥

(अभिनव-रागमंजरी)

परिशिष्ट ३

इजिप्ट (मिश्र) के आधुनिक स्वर और मेल ।

नीचे दी हुई सारिणीके स्वर-मान मोख़्तार और मोशवफा द्वारा वैज्ञानिक विधिसे निर्धारित किये गये हैं ।[1]

क्रमांक	स्वर-संज्ञा (मिश्र)	अतराल दशमलव	अतराल सेवर्ट	आवर्त्तकस्वर (सेवर्ट)		स्वर-संज्ञा हिन्दुस्तानी
१	रास्त	१	०	०	स	स
२	शाहनबाज़	१·०५७	२४·१			र्
३	दोका	१·१२३	५०·३	५१	र	र
४	कुर्द	१·२००	७६·२			ग्
५	सीका	१·२२८	८६·२	९७	ग	ग्
६	नीमबुसालीक	१·२७४	१०५·२			ग' (१२०)
७	गिरका	१·३३०	१२३·६	१२५	म	म
८	हजाज़ या साहा	१·४१७	१५१·३			म'(१५३)
९	नवा	१·४९८	१७५·६	१७६	प	प
१०	हिसार	१·५९०	२०१·४			ध्
११	हुसैनी	१·६८५	२२६·६	२२२	ध	ध'(२२७)
१२	अगनू	१·७७९	२५०·२			न्
१३	ईकार	१·८३१	२६२·७			न्
१४	नीम माहुर	१·८८०	२७४·२	२७३	न	न
१[illegible]	गवाब्र एत रास्त	२·०००	३०१·०	३०१·०	स	सं

[1] —Motes in Modern Egyptian Music—M. Mokhtar and M. Moshawafa. Nature September 25, 1937.

इन १४ स्वरों में से ४ मेल तैयार होते हैं; जैसे.—

(१) १, ३, ५, ७, ९, ११, १३ ।
(२) ३, ४, ८, ९, ११, १३, १̇ ।
(३) ३, ५, ७, ८, ११, १२, १ ।
(४) १, ३, ४, ७, ९, १०, १४ ।

परिशिष्ट ४

अरबी-फ़ारसी स्वर ग्राम और मेल। ❀

१—नीचे अरबी-फारसी स्वर-ग्रामके १७ स्वर दिये जाते हैं जो अब्दुल क़ादिर (१४ वीं सदी) के निर्धारित किये हुए हैं। ये फ़राबी (मृत्यु ९५० ई०) और मुहम्मद शीराज़ी (मृत्यु १३१५ ई०) के बताये हुए स्वरोंसे मिलते हैं। इन स्वरोंकी संज्ञाएँ हिन्दुस्तानी रखी गई हैं। स्वरोंके नीचे क्रमश. सेवर्ट और भिन्नमे मान दिये गये हैं।

१— स —	(२) र् —	(३) र१ ⌣	(४) र —
०, १	२३, २५६/२४३	४६, ६५५३६/५९०४९	५१, ९/८
५— ग् —	(६) ग१ ⌣	(७) ग —	(८) म —
७४, ३२/२७	९७, ८१९२/६५६१	१०२, ८१/६४	१२५, ४/३
९— प् (म′)—	(१०) प१ (म″)⌣	(११) प —	(१२) ध् —
१४८, १०२४/७२९	१७१, २६२१४४/१७७१४७	१७६, ३/२	१९९, १२८/८१
१३— ध१ ⌣	(१४) ध —	(१५) न्——	(१६) न१—
२२२, ३२७६८/१९६८३	२२७, २७/१६	२५०, १६/९	२७३, ४०९६/२१८७
१७— सं१ ⌣	(१८) सं।		
२९६, १०४८५७६/५३१४४१	३०१, २		

संकेतः—

(१) दो स्वरोंके बीच '—' का अर्थ है 'लीमा' (२३ सेवर्ट) का अन्तराल।

❀ Sensation of Tones—Helmholtz. Trans. Ellis.

२—दो स्वरोंके बीच '‿' का अर्थ है कोमा (५ सेवर्ट) का अन्तराल। ठीक-ठीक यह पायथागोरसका कोमा है जो कोमा डायसिस (५ सेवर्ट) से कुछ बड़ा है।

३—जिन स्वरोंकी दाहिनी ओर नीचे '१' अंक लगा है वे सच्चे आवर्तक स्वर हैं। ये पायथागोरसी स्वरोंसे ५ सेवर्ट उतरे हुए होते हैं, जो यहाँ शुद्ध माने गये हैं। असलमें '१' चिह्न-वाले स्वर आवर्तक मानसे भी एक-एक स्खिस्मा (लगभग ५ से॰ या ८८७।८८६) उतरे हुए हैं पर यहाँपर इसे छोड़ दिया गया है।

२—इन १७ स्वरोंसे १२ मुक़ामात या मेल तैयार होते हैं जिनमेंसे ८ तो सात स्वरवाले हैं और ४ आठ स्वरवाले। नीचे इन १२ मेलोंकी सारिणी दी जाती है जिसमें स्वरोंका मान दिया गया है। अंतिम खानेमें गान-समय भी बताया गया है।

मोक़ामात

क्रमांक	मेल के नाम	स्वर-प्रबन्ध									गान समय
१	ईशाक़	स	र	ग	म	प	ध	न्		स	सूर्यास्तके लगभग
२	नवा	स	र	ग्	म	प	ध्	न्		सं	आधीरात
३	बूसलीक	स	र्	ग्	म	प्	ध्	न्		सं	दोपहर बाद (दिन)
४	रास्त	स	र$_1$	ग$_1$	म	प	ध$_1$	न्		सं	दोपहर
५	हुसैनी	स	र$_1$	ग्	म	प$_1$	ध्	न्		स	सूर्योदयके ३घंटे बाद
६	हजाज़	स	र$_1$	ग्	म	प$_1$	ध$_1$	न्		सं	इस्फहानीके बाद
७	रहावी	स	र$_1$	ग$_1$	म	प$_1$	ध्	न्		सं	सूर्योदय तक
८	ज़ंगूला	स	र	ग$_1$	म	प$_1$	ध$_1$	न्		सं	सूर्योदयके ३घंटे बाद
९	इराक़	स	र$_1$	ग$_1$	म	प	ध$_1$	न्	स$_1$	सं	दोपहरतक
१०	इस्फ़हानी	स	र	ग$_1$	म	प$_1$	ध$_1$	न्	स$_1$	सं	नवाके बाद
११	बुज़र्ग	स	र	ग$_1$	म	प$_1$	प	ध	न$_1$	सं	ज़ंगूलाके बाद
१२	कूजक	स	र$_1$	ग्	म	प$_1$	ध्	ध$_1$	न$_1$	स	सूर्यास्तसे ३घंटे पहले

अनुक्रमणिका

अ

आ

उ

ऐतिहासिक

खण्डहरोंका वैभव	श्री मुनि कान्तिसागर	६)
खोजकी पगडण्डियाँ	श्री मुनि कान्तिसागर	४)
चौलुक्य कुमारपाल	श्री लक्ष्मीशंकर व्यास एम.ए.	४)
कालिदासका भारत [१]	श्री भगवतशरण उपाध्याय	४)
हिन्दी जैन साहित्यका सं० इतिहास	श्री कामताप्रसाद जैन	२॥=)

संस्मरण—रेखाचित्र

हमारे आराध्य	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
संस्मरण	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
रेखाचित्र	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	४)
जैन जागरणके अग्रदूत	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५)

ज्योतिष

भारतीय ज्योतिष	श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६)
केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि	श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	४)
करलक्खण	प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी	॥।)

विविध

द्विवेदी पत्रावली	श्री बैजनाथसिंह विनोद	२॥)
ज़िन्दगी मुसकराई	श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	४)
रजतरश्मि [एकांकी नाटक]	डा० रामकुमार वर्मा	२॥)
ध्वनि और संगीत	प्रो० ललितकिशोरसिंह	४)
हिन्दू विवाहमें कन्यादानका स्थान	श्री सम्पूर्णानन्दजी	१)
ज्ञानगंगा [सूक्तियाँ]	श्री नारायणप्रसाद जैन	६)